आचार्य शारदाचरण दीक्षित व्यक्तित्व एवं कृतित्व

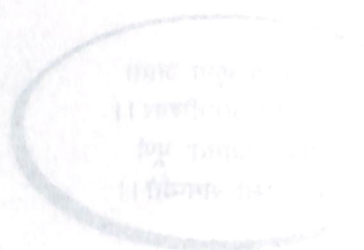


डॉ. जगदीश प्रसाद शर्मा



ऊँ

भवदीय कृपा जाता
हे ईश! जगदीश्वर।।
प्रबन्धोऽयमतः पूर्णः
पादयोस्ते समर्प्यते।।



समर्पणम्

शिक्षा जगत्यां समवाप्य कीर्तिम् ।
पदं च प्राचार्य वरस्य प्राप्य।।
स्वज्ञान ज्योतिः प्रसरेण धन्यं,
बनवारिलालं पितरं नमामि।।

यत्पादपद्म प्रसादेन प्राप्तं विद्यामृतं शुभम्।
श्रद्धयार्पयामि शोधरत्नं प्रीयन्तां पितृदेवताः।।

कविगणपति आचार्य शारदाचरण दीक्षित
व्यक्तित्व एवं कृतित्व

प्रकाशक :
लक्ष्मी प्रकाशन
रूक्मिणी विहार, मथुरा
दूरभाषी: 9358705666
Email: jpsharma0169@rediffmail.com

मुद्रक :
मयूर एन्टरप्राईजस
नई दिल्ली–110018.

नान्दीवाक्

प्रो0 नित्यानन्द पाण्डेय
डीन शिक्षा शास्त्र विभाग
असम विश्वविद्यालय, सिलचर, असम

डॉ0 जगदीश प्रसाद शर्मा आचार्य एम.ए.,एम.एड़ द्वारा कविगणपति आचार्य शारदाचरणदीक्षित व्यक्तित्व एवं कृतित्व का आद्योपान्त मनोयोग पूर्वक अध्ययन एवं परीक्षण किया। मैं डॉ0 जे0पी0 शर्मा को अध्यवसायी–अध्येता एवं मनस्वी शोधार्थी के रूप में ही जानता हूँ। यशस्वी विद्वान् डा0 बनवारी लाल शर्मा प्राचार्य जैसे पिता के संस्कारों में अपनी प्रातिभ योग्यता एवं चिन्तन प्रधान वृत्ति से उनके वैदुष्य को सफलता मिलेगी।

सौभाग्य से आज विश्व के सभी भागों में संस्कृत के माध्यम से ही भारतीय संस्कृति, धर्म, दर्शन एवं वेदों के प्रति निरन्तर उत्साह बढ़ रहा है। भारतीय विश्वविद्यालयों में अभी तक प्राचीन कवियों के अध्ययन तक ही शोधकार्य की इतिश्री मानी जाती है। डॉ0 जगदीश ने अत्याधिक परिश्रम पूर्वक इस अर्गला को तोड़कर सर्वथा प्रचार–प्रसार से दूर रहने वाले परन्तु संस्कृत के प्रचार–प्रसार–लेखन–सम्पादन एवं उन्नयन में सर्वात्मना आहुति वने आचार्य शारदाचरण दीक्षित पर शोधकार्य कर नवीन दिशा एवं दृष्टि का समुद्घाटन किया है।

मैं इस महत्वपूर्ण शोधकार्य की प्रस्तुति एवं प्रकाशन के लिए डॉ0 जगदीश प्रसाद शर्मा को हार्दिक धन्यवाद के साथ बधाई एवं आशीष प्रेषित करता हूँ। यह प्रबन्ध सहृदय श्लाद्य्य है। डॉ0 शर्मा का व्यक्तित्व बहुमुखी है। वह एक कुशल प्राध्यापक भी हैं। मित्र वत्सल लोकनायक भी हैं। वह एक सहृदय कवि लेखक भी हैं बहुश्रुत शास्त्रज्ञ एवं गहन समीक्षक भी हैं।

मैं डॉ0 जे0पी0 शर्मा के इस गहन सारस्वत श्रम का भूरिशः अभिनन्दन करते हुए उनके उत्तरोत्तर यशस्वी होने की कामना करता हूँ।

भवदीय

डॉ0 नित्यानन्द पाण्डेय
असम विश्वविद्यालय
सिलचर, असम

गंगा दशहरा जून 2013

पुरोवाक्

जयन्ति ते सुकृतिनः रससिद्धाः कवीश्वराः।
नास्ति येषां यशः काये जरामरणजं भयम्।।

संस्कृत मेरे परिवार की परम्परया उपास्य भाषा रही है। वस्तुतः संस्कृत केवल भाषा न होकर विपुल ज्ञान विज्ञान की स्त्रोतस्विनी है। संस्कृत के गाम्भीर्य का अवगम मुझे श्री सांगवेद महाविद्यालय नरवर नरौरा (बुलन्दशहर) के विद्वान आचार्यों के श्रीचरणों में बैठकर हुआ। पूर्व माध्यमिक शिक्षा के उपरान्त मेरा प्रवेश उक्त संस्कृत विद्यालय में प्रथमा कक्षा में हुआ। मुझे संस्कृत से प्रारम्भ से ही अनुराग रहा है। संस्कृत की कुल परम्परा और मेरी संस्कृत अभिरूचि को देखते हुए मेरे पूज्य पितामह स्व. देवीराम शर्मा के निर्देश पर मेरा प्रवेश सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय से सम्बद्ध विद्यालय में हुआ।

विद्वान आचार्यों के चरणों में बैठकर मुझे साहित्य, व्याकरण एवं न्याय साहित्य पढ़ने का सुअवसर मिला। इस संस्कृत विद्यालय के तत्कालीन प्राचार्य डॉ. तेजपाल शर्मा (सम्प्रति प्रोफेसर, जगन्नाथ संस्कृत विश्वविद्यालय पुरी), न्यायाचार्य स्व. बाँकेलाल द्विवेदी, व्याकरणाचार्य श्री श्याम सुन्दर ब्रह्मचारी जी, वेदान्ताचार्य ब्रह्मचारी राम चैतन्य मिश्र, (मेरे पूज्य पिता श्री के दीक्षागुरु) दर्शन प्राध्यापक डॉ. यमुनाराम त्रिपाठी आदि गुरुजनों के प्रति नतमस्तक होकर कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ जिन्होंने मुझे संस्कृत के अ, ई, उ, ण् से लेकर हल् तक का परिज्ञान कराया।

स्नातकीय कक्षाओं में पढ़ने का सुयोग मुझे सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय में मिला। यहाँ यह उल्लेख करना मैं अपना सौभाग्य मानता हूँ कि विश्वविद्यालय के कुलपति प्रो. वि. वेंकटाचलम का पुत्रवत् स्नेह मुझ अकिंचन को प्राप्त हुआ। विश्व विद्यालय के व्याकरण विभागाध्यक्ष एवं छात्र कल्याण संकायाध्यक्ष प्रो. रामयत्न शुक्ल, डॉ. मनुदेव भट्टाचार्य, डॉ. आद्याप्रसाद मिश्र, डॉ. राममनोहर जी, डॉ. कैलाशपति त्रिपाठी, साहित्य विभागाध्यक्ष, एवं गुरुवर डॉ. पारसनाथ द्विवेदी आदि विद्वानों की मैं वंदना करता हूँ जिनके चरणों में बैठकर काशी के इस पवित्र विशाल विद्यामन्दिर में शास्त्री की उपाधि प्राप्त की।

अपने काशी अध्ययन काल में मुझे अपने पूज्य पिताश्री के सतीर्थ्य विद्वान डॉ. चन्द्रभानु शर्मा, रीडर संस्कृत विद्याधर्मविज्ञान संकाय-काशी हिन्दू

विश्वविद्यालय की छत्रछाया की सुखद अनुभूति हुई। मैं इनके प्रति भी विनयावनत हूँ।

दुर्भाग्य से मुझे उदर रोगों के कारण अपना काशीवास छोड़ना पड़ा। स्नातकोत्तर शिक्षा वृन्दावनधाम के सुविख्यात प्राच्यदर्शन महाविद्यालय में प्रारम्भ की। इस विद्यामंदिर में अन्तर्राष्ट्रीय संस्कृत विद्वान् संस्कृत विभागाध्यक्ष डॉ. वासुदेव कृष्ण चतुर्वेदी- डी. लिट् की अहैतुकी कृपा एवं सहज स्नेह पाकर मैं आत्मविस्मृत सा हो गया। मेरे पूज्य पिताश्री ने अपना शोधकार्य श्रद्धेय डॉ. चतुर्वेदीजी के निर्देशन में ही पूरा किया है। अतः पूज्य चतुर्वेदी जी मुझे पौत्र की तरह मानते चीनते है। अपने प्रवेश आवेदन पत्र में भी पूज्य चतुर्वेदी जी की अपना संरक्षक पूर्व में ही घोषित कर चुका था, अतः मेरे सम्पूर्ण योगक्षेम का दायित्व मेरे बिना निवेदन किये ही प्रातः स्मरणीय चतुर्वेदीजी की निर्वहन करते हैं, उनकी कृपा के आगे मैं केवल नतमस्तक हो सकता हूँ। आभार प्रदर्शन एवं कृतज्ञता ज्ञापन का सामर्थ्य वाणी एवं लेखनी दोनों में से किसी को प्राप्त नहीं है।

संस्कृत शिक्षा की ओर उन्मुख होने का अवसर बड़े भाग्य से मिलता है, मैं अपने पूज्य पितामह आयुर्वेदाचार्य गोलोकवासी देवीराम शर्मा की वन्दना करता हूँ, जिन्होंने मुझे संस्कृत विद्यालय में भेजने का निर्देश पूज्य पिताश्री को दिया।

मैं अपने पूज्य पिताश्री डॉ. बनवारी लाल शर्मा साहित्य, व्याकरण, न्यायाचार्य, डी. लिट् का भी आभार व्यक्त करता हूँ जिन्होंने मुझे संस्कृत पढ़ाने के लिए सर्वविध सुविधाएँ दी।

विषयानुक्रमणिका

अध्याय — पृष्ठ सं॰

चतुर्थ अध्याय
आचार्य शारदाचरण दीक्षित की प्रमुख कृतियाँ

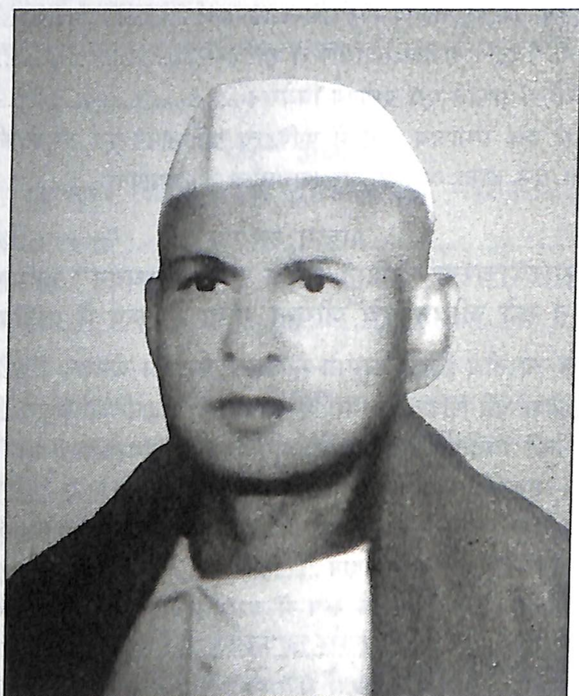
पंचम अध्याय
आचार्यप्रवर के ग्रन्थ

षष्ठम अध्याय
प्रकीर्ण खण्डकाव्य एवं अन्य रचनाएँ कांग्रेसवैभवम्

सप्तम अध्याय
आचार्य शारदाचरण दीक्षित का गद्यसाहित्य

अष्टम् अध्याय

"आचार्य शारदाचरण दीक्षित "एक समग्र अध्ययन" वर्तमान युग में संस्कृत को जीवन एवं जीवन्त भाषा के रूप में प्रतिष्ठित करना।



प्रथम अध्याय
प्रस्तुत शोध प्रबंध की आवश्यकता एवं अनुसंधान के स्रोतों का विवेचन

"प्रयोजन मनुद्दिश्य न मन्दोऽपि प्रवर्तते" की सूक्ति से सभी सुपरिचित ही है। सूक्ति से अनभिज्ञ सामान्य ग्राम्यजन भी इतना अवश्य जानते है कि किसी भी कार्य में प्रवृत्ति एक निश्चित लक्ष्य को लेकर होती है। बिना उद्देश्य के तो मन्द आदमी भी किसी कार्य में प्रवृत्त नहीं होता।

संस्कृत भाषा के उद्भट विद्वान यशस्वी कवि कवि गणपति आचार्य शारदाचरण जैसे तुंग शिखर वाले व्यक्तित्व पर अनुसंधान कार्य करना बड़ा जटिल और दुरूह कार्य है। यों तो बींसवी शताब्दी में संस्कृत भाषा के ग्रन्थागार में काव्य रचना से श्रीवृद्धि करने वाले अनेककवि अनेक कवि हुये हैं किन्तु आचार्य शारदाचरण दीक्षित जी की काव्यकला की समकक्षता का दूसरा कवि कोई है ही नहीं।

"मेघे माघे गतंवयः रचित रार्धम्" के कथन से गौरवान्वित मेघदूत खण्ड काव्य के प्रणेता महाकवि कालिदास की बराबरी करने वाले, कालिदास रचित मेघदूत की ही सरणी पर "मेघदूतोत्तरार्धम्" की रचना करने वाले एवं महाकवि कालिदास से अवशिष्ट कार्य को पूर्णता प्रदान करने वाले कवि गणपति आचार्य शारदाचरण दीक्षित पर अनुसंधान कार्य करना शिशु क्रीड़ा नहीं है।

आचार्य शारदाचरण जी दीक्षित एक ऐसे व्यक्तित्व हैं जिन्हें शब्दों में नही बांधा जा सकता है। उनके कृतित्व की अर्थव्यापकता, भिन्नार्थता एवं भावप्रवणता दुखगाह एवं दूरगामिनी है। वर्णविन्यास का ऐसा क्रीड़ा कौतुक तो स्वयं महाकवि कालिदास भी नहीं जुटा पाये।

यद्यपि आचार्य जी के काव्य वैभव को कवि कुलगुरू कालिदास उत्कृष्ट बताना धृष्टता ही कही जायेगी, किन्तु इतना कहने में कोई संकोच नहीं है कि दीक्षित जी की कृतियां परितुलन की दृष्टि से कालिदास से कम भी नहीं है। उनकी अकेली एक रचना "मेघ दूतोत्तरार्थम" ही शोध प्रबंध की दृष्टि से अनुसंधान के लिये पर्याप्त है। आचार्य शारदाचरण जी की कृतियाँ "गांधी चरितम्", कांग्रेसवैभवम्, इन्दिरोपाख्यानम्, अमरशतकम्, अनुसंधान की दृष्टि से संस्कृत छात्रों के समक्ष आज भी चुनौती बनकर खड़ी है। यह आगरा मंडल और विशेषकर आगरा महानगर का सौभाग्य ही कहा जायेगा जहाँ की मांटी ने शारदा जी जैसे संस्कृत के विद्वान कालजयी कवि को जन्म दिया, पाला, पोषा, बड़ा किया। उनकी कृतियों का एकैकशः अनुसन्धान होना ही चाहिये।

यद्यपि दीक्षित जी की रचनायें अत्यन्त दुरुह हैं। उनके काव्य में भारवि का अर्थ

गौरव, कालिदास की उपमाएं एवं दण्डी का पदलालित्य उपलब्ध है। यदि उन्हें अपरमाघ कहा जाय तो अतिशयोक्ति न होगी।

ऐसे मनीषी कवि की कृतियों पर तो एक दशक पहले ही अनुसंधान कार्य हो जाना चाहिये था। अनुसंधान की यह सामिग्री अनुसंधित्सुओं की दृष्टि से कैसे ओझल होती रही यह आश्चर्य की बात है।

प्रस्तुत शोध प्रबंध के द्वारा कविकृत रचनाओं की व्याख्या या टीका करने का कोई बड़ा दावा तो नहीं किया जा सकता किन्तु इतना अवश्य है कि अनुसंधान का यह कार्य आचार्य शारदा जी पर और आगे अनुसंधान करने के लिये एक मील का पत्थर सिद्ध होगा।

इस शोध प्रबंध में दीक्षित जी की रचनाओं के एकत्रीकरण संकलन एवं वस्तुपरक ज्ञान का प्रयास किया जायेगा। अतः इस शोध प्रबंध की उपयोगिता संस्कृत प्रेमियों के लिये निश्चय ही सुखावह होगी ऐसा मेरा विश्वास है।

अनुसंधान के स्रोतों का विवेचन :–

अनुसंधान कार्य के प्रमुख स्रोत हस्तलिखित पांडुलिपियां ही है। उपलब्ध हस्तलिखित पांडुलिपियां निम्नलिखित हैं–

1. मेघदूतोत्तरार्धम 2. पाकचरितम् 3. अमरशतकम् 4. कांग्रेस वैभवम् 5. गांधि चरितम् 6. भारतीयचरितम्

मुद्रित रचनाः– 1. मेघदूतोत्तरार्धम्[1] । 2. अमरशतकम्[2] ।

दीक्षित जी की हस्तलिखित डायरी में उपलब्ध सामग्री –

1. धन्वन्तरिस्तुति। 2. वैदिकेभ्योऽभ्यर्थनम् 3. गुरूचर्चा 4. विद्ववत् परिषद् सम्बन्धी पथ
5. आयुर्वेद महत्व 6. शास्त्रार्थ चर्चा।

ज्योतिष विषयक लघु कलेवरीय प्रकाशन :–

1. चैत्रमलमासीय नववर्षारम्भ तथा नवरात्रारम्भ निर्णय।[3]
2. मकरसंक्रान्ति पुण्य पार्वणः।[4]

गाण्डीवम्[5] में प्रकाशित सामग्री

1. स्वास्थ्यम् (निबंध)[6]
2. शारदाचरणदीक्षित अभिनन्दनम् अभिनन्दन पत्र[7]

---

1. प्रकाशक व मुद्रक एवं सम्पादक : आचार्य शारदाचरण दीक्षित आस्थानीयन्त्रालये मोतीकटरा आगरा सन् 1965
2. अमर शतकम्
3. प्रकाशक : श्री भारत आयरन फाउण्ड्री बर्फखाना, मोतीकटरा आगरा सं0 2021
4. प्रकाशक : श्री शंकर लाल गुप्त मोती कटरा आगरा
   मुद्रक : कुशल प्रिटिंग प्रेस मोती कटरा आगरा दिनांक 05.01.63
5. सं. प्रकाशक : पं. रामबालक शास्त्री नई बस्ती रामापुरा वाराणसी
6. गाण्डीवम् : 20 अप्रैल 75
7. गाण्डीवम् : 20 अगस्त 1971 प्रस्तुति अखिल भारतीय संस्कृत परिषद, लखनऊ।

3. विद्यापीठपरिच्छदप्रत्ययानाम् प्रत्यय त्वम्।[1]

4. बंगस्वातन्त्रये इन्दिरोपाख्यानम्।[2]

5. गर्भाधानमीमांसा निबंध[3]

6. निष्कामकर्माचरणफलम्[4]

7. रामानुजादि वैष्णव सम्प्रदाय सिद्धान्त समीक्षा।[5]

8. कविसम्राट उपाधि प्राप्ति।[6] 9. कालः[7]

हस्तलिखित संस्कृत निबंध :–

1. श्री भगवत्याः सुरभारत्याः प्रचारः कथं स्यात्।

2. देवभाषातत्वं वैदिक विभुत्वम् च। 3. सन्ध्योपासनम् 4. स्त्रीणां कीदृशी शिक्षा अपेक्ष्यते। 5. संस्कृत भाषा 6. मानव जीवनं धर्मश्च 7. कालिदासस्य जन्मभू 8. आलस्यं हि मनुष्याणां शरीरस्थो हि महान् रिपुः

संस्कृत त्रैमासिक पत्रिका अजस्रा में प्रकाशित निबंध

विजितं भिक्षुणा[8]

आचार्य शारदाचरण दीक्षितः एक उदार व्यक्तित्व :– कविगणपति, तर्कमीमांसक, प्रभृति अनेक उपाधियों से विभूषित आचार्य शारदाचरण दीक्षित का नाम एक ऐसे व्यक्तित्व का परिचय कराता है, जो आनख–शिख सुरभारती संस्कृत के लिये सर्वात्मना समर्पित रहे। संस्कृत प्रचार प्रसारण के व्रती आचार्य शारदाचरण दीक्षित ने संस्कृत कवित्व को अपना मिशन बनाया न कि व्यवसाय।

लम्बा, छरहरा शरीर, वर्तुल एवं देदीप्यमान मुखमंडल, दुग्धवल दाडिमायमान दन्तपंक्ति, उजली धुली सफेद धोती, उस पर ढीला कुर्ता, उन्नत बाल पर सिन्दूर का गोल शाक्त तिलक, पैरों में आगरा की ही बनी चप्पलें तो मूर्धा पर अविरल एवं अस्तव्यस्त कच कलाप। न तो बहुत पुष्ट किन्तु कृशता की परिभाषा से दूर स्कन्धों पर दोलायमान सुव्यवस्थित भगवा उत्तरीय, कभी ईषत् तो कभी अवसरानुकूल उन्मुक्त हास्य। यही है आचार्य जी के समवयस्क वयस्य जनों द्वारा वर्णित व्यक्तित्व का रेखांकन।

परदुःखकातरता आचार्य जी का उदात्त गुण था। अपनी इस मनोवृत्ति का उपयोग आचार्य शारदाचरण जी ने आयुर्वेद ज्ञान से जीवन पर्यन्त किया। असाध्य

---

1. लालबहादुर शास्त्री विद्यापीठ के कुलपति को प्रेषितपत्र 19–26 मई 1960
2. 15 अगस्त 1974
3. 25 मई 1975
4. 14 अप्रैल 1974
5. 26 जनवरी 1971
6. काशी संस्कृत प्रचारिणी सभा द्वारा 15 अगस्त 1975
7. 10 जुलाई 1975
8. अजस्त्रा जनवरी 1978 : अखिल भारतीय सं0 परिषद हजरत गंज, लखनऊ।

रोगों का उपचार करके उन्होंने अपरिमित यश प्राप्त किया था। रोगोपशमन के उपरान्त ही रोगी की अतिशय अभ्यर्थना पर केवल तावन्मात्र मूल्य लेते जिससे प्रदत्त औषधियों का लागत मूल्य भी प्रायः पूरा न हो पाता। मध्य रात्रि में भी रूग्ण की आर्तपुकार पर उनके औषधालय का द्वार खुलने में देर न लगती थी। जैसा कि प्रतिवेशीजनों ने बताया रोगी रोता आता था और हंसता घर जाता था।

आचार्य शारदाचरण जी दीक्षित यात्रा व्यसनी थे। कभी उपचार के लिये तो कभी शास्त्रार्थ सभाओं, विद्ववत गोष्ठियों एवं पण्डित मण्डलियों में प्रायः आना जाना लगा रहता था। रेल की साधारण श्रेणी में यात्रा करते थे। अभिमान, छल, प्रपंच, मोह, आसक्ति, उन्हें छूने में डरते थे। क्रोध उनके पास तक कभी आया ही नहीं। ईर्ष्या उनकी छाया तक का स्पर्श न कर सकी थी। अशुचिता उन्हें पसन्द नहीं थी। अनादिशक्ति, माँ दुर्गा के अनन्य उपासक। सर्वधर्मसमभाव के प्रवल पक्षधर। सहिष्णुता की प्रतिमूर्ति, निर्धनों भिखमंगों, नेत्रान्धों, कुष्ठरोगियों, वृद्धों, असहायों के प्रति परमदयालु, ऐसे व्यक्तित्व के धनी थे हमारे पूज्य आचार्य शारदाचरण जी दीक्षित।

परउपकार आचार्य शारदाचरण दीक्षित का वंशानुगत गुण था। कविवर के अनुज आयुर्वेदाचार्य पं0 अम्बिकाचरण दीक्षित के शब्दों में –

शारदा भय्या ने सैकड़ों अनाथों को उनके पालन पोषण, शिक्षा–दीक्षा, विवाह, नौकरी आदि की सुविधायें निर्लिप्त भाव से प्रदान की थीं। आगरा के अनाथ शिशु सदन के बच्चों के बीच वे महीने में एक बार जरूर जाते थे। सबको फल अपने हाथ से वितरित करते, किसी को अपने हाथ से खिलाते। उन्हें अपना दत्तक पुत्र कहते थे। नारी संरक्षण गृह समिति के अनेक वर्षो तक सदस्य रहे। कभी किसी का घर बसता तो पिता की भूमिका करके स्वयं कन्यादान करते थे। नारी संरक्षण गृह की अनेक गृहस्थिनी युवतियां आचार्य शारदा भय्या को अपना पिता मानती थी।

आचार्य शारदाचरण दीक्षित जी प्रतिवर्ष 30–40 संस्कृत छात्रों को भोजन, वस्त्र एवं आवास की सुविधा प्रदान करके अपने को कृतकृत्य समझते थे। उनका यह व्रत अविच्छिन्न रूप से जीवन भर चलता रहा। प्रसन्नता की बात है आचार्य जी के सुयोग्य पुत्र श्री नवीन दीक्षित एवं श्री गिरीश दीक्षित "शारदा संस्कृत संस्थान" नामक (पंजीकृत) सोसायटी के माध्यम से उस व्रत को आज भी जीवन्त रखे हुये हैं। आचार्य दीक्षित जी को संस्कृत विद्या के प्रचार प्रसार का सहज व्यसन था। अनेक अध्ययनार्थी उनके आवास पर प्रायः आते ही रहते थे, तथा गूढस्थलों का समाधान पाते थे।

संस्कृत जिज्ञासुओं एवं अनुसंधित्सुओं के लिये उनके द्वार कभी अनावृत नहीं होते थे। उनके मोती कटरा स्थित घर पर असंख्य पुस्तकों का विशाल संकलन था। एक लघु पुस्तकालय का स्वरूप लिये यह कक्ष संस्कृत के अध्येताओं के लिये उपयुक्त स्थान था। आगरा नगर की प्रसिद्ध संस्कृत संस्था विद्याधर्मवार्धिनी संस्कृत पाठशाला के वे आजीवन प्रबन्धकर्ता रहे। पाठशाला के छात्रों के सर्वविध सौविध्य के लिये वे सदा तत्पर रहते थे। निःशुल्क अध्यापन अनेक वर्षो तक करके आपने इस पाठशाला

को जीवन दिया था। आचार्य जी की प्रत्येक श्वांस, प्रश्वांस संस्कृतमय ही थी। वे अपने सम्पर्क में आने वाले लोगों से संस्कृत का प्रयोग करते थे। घर में संस्कृत भाषा के प्रयोग का वायुमंडल रहता था। छोटे छोटे बालक भी अत्र आगच्छ जलमानय आदि वाक्यों को समझते व तदनुकूल आचरण करते थे।

साहित्यिक, सांस्कृतिक चिकित्सकीय परम्पराओं का अद्भुत मिश्रण :–

कविगणपति आचार्य शारदाचरण दीक्षित के व्यक्तित्व में साहित्यिक, सांस्कृतिक एवं चिकित्सकीय परम्पराओं की त्रिवेणी प्रवाहित होती थी। तीनों परम्पराओं किंवा धाराओं का यह संगम आचार्य जी को तीर्थराज प्रयाग के समान आराध्य, पूज्य, एवं स्तुत्य बनाने में पर्याप्त था। आचार्य जी इस त्रिवेणी के पुरोधा थे। इस त्रिवेणी के पवित्र जल से अभिषिक्त होकर कितने ही लोग कृतार्थ हो चुके थे।

साहित्य परम्परा :– इस परम्परा का उद्भव आचार्य जी के अध्ययन से प्रारम्भ हुआ, तथा काव्य सृष्टि तक इसका विकास। आचार्य जी को छन्द, शास्त्र, संगीत, कला अभिधान, कोष, नीति, लोकवृत आदि का पूरा अवगम था। उनका यही ज्ञान उनकी साहित्यिक रचनाओं में उद्भासित एवं प्रस्फुटित हुआ। ज्ञान का लघु अंकुर काव्य का विशाल वटवृक्ष बना। साहित्य में सौन्दर्याधान के लिये शब्द और अर्थ दोनों की एक सी मनोहारिणी स्थिति की अनिवार्यता आचार्य कुन्तक ने सर्वप्रथम प्रतिपादित की थी।[1]

काव्य में जितने सुन्दर अर्थ का वर्णन किया जा रहा हो, उतने ही सुन्दर शब्दों का सन्निवेश होना चाहिये। इसी शब्द और अर्थ का नाम साहित्य है, इस प्रकार के साहित्य से युक्त शब्द और अर्थ का नाम ही काव्य है।

सहृदयों को आह्लादित करने वाले सुन्दर कवि व्यापार से युक्त रचना में समुचित रीति से स्थित साहित्य युक्त शब्दार्थ का नाम ही काव्य है।[2]

नवम् शताब्दी में काव्यमीमांसाकार राजशेखर ने काव्यशास्त्र के लिये साहित्यविद्या या साहित्यशास्त्र नाम का निर्देशन किया है।[3]

आचार्य शारदाचरण जी की साहित्यिक विचारधारा प्रमुखतः राष्ट्रीय भावना से ओतप्रोत रही है। "भारतीय चरितम्", गान्धि चरितम्, कांग्रेस वैभवम्, इन्दिरोपाख्यानम्, इस सरणि की प्रमुख रचनायें है। उनका काव्य सौष्ठव, सर्वविध पूर्ण है। शब्द गुम्फने, भाव प्रवणता, छन्द विधान रीति, अलंकार और रसविचार के निष्कर्ष पर वे कालिदास,

---

1. साहित्यमनयो : शोभाशालितां प्रति काप्यसौ।
   अन्यूनानतिरिक्तत्व मनोहारिण्यवस्थितिः।।
   चक्रोक्ति जीवितम् आचार्यकुन्तक 1–17
2. शब्दार्थौ सहितौ वक्र कविर्व्यापारशालिनि।
   बन्धे व्यवस्थितौ काव्यं तद्विदाह्लादकारिणि।।
   वही : 1–17
3. काव्यमीमांसा राजशेखर : पृ0 4

की पंक्ति में स्थान पाने के लिये अर्हतावान् हैं। मेघदूतोत्तरार्धम् की रचना उन्हें महाकवि कालिदास का उत्तराधिकारी कवि सिद्ध करने में पर्याप्त है। ''अमरशतकम्'' उनका अमर उभय भाषी काव्य है। जो उनकी हिन्दी, संस्कृत कवित्व का परिचायक है। आचार्य शारदाचरण जी की सांस्कृतिक रचनायें बींसवीं शताब्दी की अमूल्य थाती हैं। इन सबका पृथक पृथक अन्वेषण, अध्ययन एवं अनुसंधान सामयिक आवश्यकता है।

सांस्कृतिक परम्परा :–

संस्कृति शब्द सम् उपसर्ग पूर्वक 'कृ' धातु से भाव में इक्तिन् प्रत्यय जोड़ने से बना है। ''सम्'' उपसर्ग काल व्यापृति प्रकट करता है। तात्पर्य यह है कि शताब्दियों तक एक विशिष्ट समाज के लोग जिस तरह खाते, पीते, रहते सहते, पढ़ते लिखते और आचरण करते हैं उन सभी कार्यो से उस समाज की संस्कृति उत्पन्न होती है। संस्कृति जीवन रूपी वृक्ष को बढ़ाने वाला रस हैं। अंग्रेजी में कल्चर शब्द में वही तत्व है जो एग्रीकल्चर या हॉर्टीकल्चर में है– जिस का अर्थ पैदा करना या सुधारना है। भारतीय संस्कृति के मुख्य लक्षण समग्रता समन्वय एंव सहिष्णुता है। संस्कृति ही मानव जाति को संतुलन एवं दृढ़ता पैदा करती है। संस्कृति का प्रवाह निरन्तर एवं अनवरूद्ध है। आवश्यकताओं तथा वैचारिक परिवर्तनों के अनुसार संस्कृति अपना अनुकूल करती है।[1]

आचार्य शारदाचरण दीक्षित भारतीय संस्कृति के परम उपासक थे। संस्कृति के अनुरूप वे अखण्ड, आस्तिकता की प्रतिमूर्ति थे। यद्यपि वे शाक्त थे, किन्तु अन्य सभी पूजापद्धतियों के प्रति उनकी गहरी आस्था भी। वे आत्मविश्वासी, अखण्ड कर्मयोगी, समग्रतावादी, समन्वय के पक्षधर एवं सहिष्णुता के अनुयायी थे। भारत की भौगोलिक विविधता में वे एकता के दर्शन करते थे। वैदिक संस्कारों के संवर्धन के लिये वे पूर्णरूपेण सजग रहते थे। सामाजिक विश्वासों, परम्पराओं, रीति–रिवाजों में वैविध्य होते हुए भी वे पारस्परिक संबंधों में उदार मधुर एवं लचीले थे। वे विवाहादि उत्सवों आमोद प्रमोद के प्रकरणों, उत्सवों, मेलों, मिलन समारोहों एव अभिनन्दन गोष्ठियों में सक्रिय भाग लेते थे।

आगरा महानगर के सामाजिक सम्मेलनों चाहे वे सूरसदन में हों या माथुर वैश्य भवन, पालीवात पार्क हो या नगर महापालिका का पार्क उनकी उपस्थिति निमंत्रण की मोहताज नहीं थी। राष्ट्रीय राजनेताओं के आगरा आगमन पर या तो दीक्षित जी का माल्यार्पण होता था या फिर दीक्षित जी द्वारा सभा के मध्य में अभिनन्दन पत्र वाचन होता था। आगरा में मर्यादा पुरूषोत्तम भगवान श्री राम की लीला अपना विशिष्ट स्थान रखती है। राम बारात निकलती तो आचार्य जी रामविवाह के पुरोहित बनते थे। वे पौरोहित्य एवं पांडित्यकर्म के द्वारा भगवान राम एवं सीता के विवाह में ऐसा

---

1 भारतीय संस्कृति : पृ0 14 : दयालबाग प्रकाशन आगरा।

समा बांधते कि दर्शकों के नेत्र सजल हो उठते थे।[1]

विक्रम संवत् 2021 के चैत्रमास में मलमास का समावेश होने के कारण ज्योतिष शास्त्र से अनभिज्ञ पंडितों द्वारा नवरात्र आरम्भ के विषय में निर्मूल भ्रम उत्पन्न कर दिया गया। धर्मप्राण जनता प्रथम चैत्र शुक्ल पक्ष में नववर्षारम्भ तथा द्वितीय चैत्र शुक्ल पक्ष में नवरात्रारम्भ करने के पक्ष में हो गयी। आचार्य जी ने चैत्रमलमासीय नववर्षारम्भ तथा, नवरात्रारम्भ निर्णय मुद्रित कराकर निःशुल्क लाखों प्रतियां पूरे देश में वितरित करायीं।[2] देश के प्रमुख ज्योतिर्विदों ने दीक्षित जी के विचारों से सहमति व्यक्त की। परिणामस्वरूप सम्पूर्ण देश में दीक्षित जी प्रतिपादित सिद्धान्त का पालन किया गया।

संक्रान्तियों के पुण्यकाल का निर्णय धर्मशास्त्रों द्वारा रवि संक्रमण कालानुसार प्रतिपादित होता है। उपवास, स्नान, दानादि के लिये दीक्षित जी ने शास्त्र मर्यादित मकर संक्रान्ति पुण्य पार्वण काल की मीमांसा की। बडे आश्चर्य की बात है कि इतना महत्वपूर्ण विषय शास्त्रकारों द्वारा सम्यक् निर्दिष्ट ही नहीं हो पाया था। आचार्य बोधायन गौडाचार्य एवं गर्गऋषि प्रतिपादित संक्रान्ति पुण्यकाल की अस्पष्टता के कारण क्षुब्ध आचार्य जी ने मकर संक्रान्ति पुण्य पार्वणकाल का निर्णय प्रकाशित कराकर उसे काशी की पंडित सभा द्वारा अनुमोदित भी कराया। इस प्रकार आचार्य दीक्षित जी ने भारतीय धर्मप्राण जनता को एक ऐसा उपहार दिया जिसे युगों युगों तक सुरक्षित एवं संरक्षित रखा जायेगा।[3]

चिकित्सकीय परम्परा :– आचार्य शारदाचरण दीक्षित के पूर्वज सन् 1503 में कश्मीर से आगरा आये थे। मुगलबादशाह बाबर के पुत्र हुमायूं की चिकित्सा में आगरा के बड़े–बडे चिकित्सक मान बैठे थे, तब किसी के परामर्श पर दीक्षित जी के पूर्वज श्री को आगरा सम्मान पूर्व लाया गया जिनकी चिकित्सा से हुमायूँ शीघ्र ही स्वस्थ हो गया था। बाबर ने दीक्षित जी के पूर्वजों को पुरस्कार में बड़ी भारी जागीर देकर आगरा में ही मोती कटरा में बसा दिया था। दीक्षित जी की वंशपरम्परा आयुर्वेद रही है। उनका यहं पारम्परिक ज्ञान उनके यश को चतुर्दिक फैलाने में सहायक ही सिद्ध हुआ है। दीक्षित जी आयुर्वेद के स्वयं सि्धहस्त वैद्य थे। वे आयुर्वेदिक औषधियों का अपने हाथ से निर्माण करते थे। उनके अनुभूत सिद्ध योगों का एक बहुत बड़ा संकलन उनकी हस्तलिपि में उपलब्ध है। दीक्षित जी ने आयुर्वेद के प्रवर्तक

---

1 सम्पर्क सूत्र : श्रीमती शान्ती देवी धर्मपत्नी आचार्य दीक्षित जी।

2. चैत्रमलमासीय नववर्षारम्भ तथा नवरात्रारम्भ निर्णय : संवत् 2021 विक्रमी प्रकाशक – श्री भारत आयरन फाउण्ड्री, मोती कटरा आगरा।

3. मकर संक्रान्ति पुण्यपार्वणनिर्णय : मुद्रक जवाहर लाल लोढा
कुशक प्रिन्टिंग प्रेस, मोती कटरा आगरा 14.01.64

भगवान धन्वन्तरि की स्तुति में अनेक पद्यों की रचना की है।[1]

दीक्षित जी के पास ऐसे अचूक नुसखे थे जो रोग में सद्यः गुणकारी होते थे। उनकी डायरी के अनुसार–

"गुणवच दुद्धीघास के दूध को बतासे में रखकर खिलाने से बच्चों के दस्त दूर हो जाते हैं।

बकायद के फलों का चूर्ण सुबह शाम ताजे पानी के सेवन से अर्शरोग में तत्काल लाभ होता है।

आचार्य शारदाचरण जी बहुमुखी प्रतिभा के धनी कवि थे। उनका आयुर्वेद ज्ञान अद्वितीय था। वे सफल चिकित्सक थे।

आचार्य शारदाचरण दीक्षित वंश परिचय :–

पितृकुल :– आचार्य शारदाचरण जी दीक्षित सुयोग्य पिता महामहोपाध्याय तर्करत्न पं. टीकाराम दीक्षित के सुयोग्य पुत्र थे।[2] पिता के प्रसन्न हो जाने पर सब देवता प्रसन्न हो जाते हैं। पितरि प्रीतिमापन्ने प्रीयन्ते सर्वे देवता उक्त सूक्ति के अनुसार दीक्षित जी उन सौभाग्यशाली पुत्रों में से थे जिन्होंने अपने पिता को पूर्णात्मना प्रसन्न कर रखा था जो– सत्कर्मो से पिता को प्रसन्न करे वही पुत्र सार्थक जनमवाला है। "यः प्रीणयेत् सुचरितैः पितरं स पुत्रः"।

आचार्य टीकाराम दीक्षित काशी की विद्वत्सभा ते तर्करत्न की उपाधि अपने पाण्डित्य के बल पर पा चुके थे। शारदाचरण जी के पितामह भी अपने समय के स्वनामधन्य विद्वान थे। पितामह भी महामहोपाध्याय थे तथा पूरा नाम आचार्य प्रभूदयाल जी दीक्षित था।

यह एक सुखद एवं अद्भुत संयोग ही कहा जायेगा कि पिता पं. टीकाराम जी दीक्षित एवं पितामह पं. प्रभूदयाल दीक्षित अपने अपने समय के प्रसिद्ध आयुर्विद् एवं ज्योतिर्विद रहे।

1.(क) आयुर्विदामादि विवक्षिताय
चञचच्चरित्राय चिकित्सकाय।
तस्मैदिवोदास नरेश्वराय,
नमोस्तु धन्वन्तरयेऽन्तराय।। धन्वन्तरि स्तुतिः श्लोक 12

(ख) दोषानजीगणदरस्त विधानतन्त्रम्।
अष्टांगमाकलय दामयदुर्नियन्त्रयम्।।
यो जागरीदणुगुणं चरितं चिकित्स्यम्
धन्वन्तरिं प्रभुवरं प्रणमाम्यहं तम्।। वही : श्लोक 13

(ग) एवं पुनीत मिनीत विनीत भावं।
अन्वीक्ष्य तं नरपतिं निनद प्रभावं।।
धन्वन्तरिस्तु भगवान्गमदविधानात्।
सन्तोषतोष समनुज्ञ मनोज्ञदानात्।। वही : श्लोक 15

2. रामश्रीर्जननी यस्य टीकारामः पिता महान्।
शारदाचरणः सोऽयं कविर्विजयतेतराम्।।

मातृकुल :– माÂमाने धातु से तृचृ प्रत्यय करके माता शब्द निष्पन्न होता है। माता का पद पिता के स्थान से दस गुना होता है "पितुर्दशगुणैर्माता गौरवेणातिरिच्यते" भगवान राम ने स्वर्णमयी लंका को जननी और जन्मभूमि के लिये त्याग दिया था–

"अपि स्वर्णमयी लंका लक्ष्मण मे न रोचते।
जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी।।[1]

आचार्य शारदाचरण जी की परमपूज्य माता श्रीमती रामश्री देवी थी। दीक्षित जी का विवाह ग्राम बगदा जिला आगरा के सुप्रसिद्ध जमींदार पं. आशाराम शर्मा रईस की विदुषी कन्या श्रीमती शान्तीदेवी के साथ सम्पन्न हुआ।

सन्तति :– आचार्य जी के चार पुत्र हुये– श्री श्रीश दीक्षित, गिरीश दीक्षित, नवीन दीक्षित और सतीश दीक्षित। श्री श्रीश जी का देहावसान दीक्षित जी के सामने ही हुआ। श्री गिरीश जी जयपुर में भूगर्भसर्वेक्षण अधिकारी पद पर कार्यरत हैं। नवीन दीक्षित आगरा नगर महापालिका में सेवारत हैं। श्री सतीश जी नायब तहसीलदार हैं।

मातृ एवं भ्रातृत्व परम्परायें :–

आचार्य शारदाचरण जी दीक्षित कुल सात भाई हैं। वे है–
1. श्री अम्बिकाचरण दीक्षित 2. श्री शारदाचरण दीक्षित 3. श्री कालिकाचरण दीक्षित 4. श्री भवानीचरण दीक्षित 5. श्री उमाचरण दीक्षित 6. श्री आद्या या आशाचरण दीक्षित 7. श्री ताराचरण दीक्षित

शिक्षा दीक्षा :– बालक शारदाचरण की प्राथमिक शिक्षा घर पर ही पूरी हुई। पूज्य पिता महामहोपाध्याय पं. टीकाराम दीक्षित से सि्धान्त कौमुदी, परिभाषेन्दुशेखर, आदि व्याकरण ग्रन्थों का शुक्लयजुर्वेद, निघण्टु आदि वैदिक ग्रन्थों का छन्द शास्त्र अभियान, ज्योतिष मीमांसा, वेदान्त एवं दर्शनादि विषयों का ज्ञान प्राप्त किया। तदुपरान्त गवर्नमेण्ट संस्कृत कालेज बनारस (इदानीन्तन सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय) की शास्त्री एवं आचार्य परीक्षाएं उत्तीर्ण की। गवर्नमेण्ट संस्कृत एसोसिएशन कलकत्ता की भी अनेक परीक्षाएं आपने उत्तीर्ण कीं।

अपने पूज्य पिताजी से आपने आयुर्वेद का पारम्परिक ज्ञान प्राप्त किया। माध्वनिदान, भावप्रकाश, चरक संहिता, भेषज्यरत्नावली, आदि आयुर्वेद के ग्रन्थ आपको कण्ठाग्र थे। महाभारत, पुराण, उपनिषद्, स्मृतियों का अध्ययन आपने काशी के प्रसिद्ध विद्वान महामहोपाध्याय गोस्वामी दामोदर लाल जी से प्राप्त किया। स्वामी अखण्डानन्द सरस्वती जी महाराज (तदानीन्तन पं. शांतनु बिहारी द्विवेदी वाराणसी) से आपने श्रीमद्भागवत और देवी भागवत् का अध्ययन किया था।

---

1. बाल्मीकि रामायण

स्वायत्त शिक्षा :– जिन ग्रन्थों एवं विषयों का अध्ययन आचार्य जी गुरुमुख से न कर सके उन्हें स्वयं स्वाध्याय से देखा और समझा। इन ग्रन्थों में कोश, अभिधान, हितोपदेश पुराण, उप पुराण, महाभारत, उपनिषद, ब्राह्मण एवं आरण्क ग्रन्थ हैं। दीक्षित जी के आवास पर सुव्यवस्थित ग्रन्थागार में इन ग्रन्थों को देखा जा सकता है। ग्रन्थों में यत्र तत्र लेखनी से किया गया रेखांकन, ऐसा स्पष्ट होता है कि उनका अध्ययन आचार्य जी ने किया हो।

आचार्य जी वेद विज्ञान एवं रमलशास्त्र के पारदृश्वा निष्णात विद्वान थे। ''यज्ञात् भवति पर्जन्यः'' का गीतोक्त पाठ प्रायः सभी संस्कृतज्ञ करते हैं किन्तु यज्ञ से वृष्टि करवाने वाले विद्वानों की उन्होंने जब गणना करनी चाही तो काशी और पूना तक में विद्वान तैयार न थे। शारदाचरण जी ने वैदिक मंत्रों से वृष्टि कराने का अद्भुत और सफल प्रयोग किया। दीक्षित जी द्वारा पोषित इस विधा को आज भी बदांयू के डॉ. विशुद्धानन्द जी एवं 51 कृष्णापुरी मथुरा के आचार्य पं. हरि प्रसाद शर्मा चलाये हुये हैं।

द्वितीय अध्याय
आचार्य शारदाचरण दीक्षित के व्यक्तित्व निर्धारक एवं रचनाप्रेरक तत्व :—

आचार्य शारदाचरण दीक्षित के व्यक्तित्व एवं कवित्व का निर्माण अनेकावयवी है। उनके मानस में कवित्व बीज का स्फुरण सहसा नहीं हुआ था। अपने मूल रूप में आयुर्वेद सम्मत चिकित्सा कार्य करते हुये उनमें कवित्व शक्ति का प्रस्फुरण परम्परा प्राप्त कुल क्रमागत संस्कृत संस्कारों का परिणाम था। आचार्य मम्मट के अनुसार भी शक्ति, निपुणता और काव्य रचना को जानने वाले गुरू की शिक्षा के अनुसार काव्य निर्माण का अभ्यास ये तीनों कारण मिलकर कवित्व शक्ति का विकास करते हैं।[1]

आचार्य वामन[2] ने लोक[3] विधा[4] तथा प्रकीर्ण[5] इन तीनों को काव्य निर्माण की क्षमता प्राप्त करने का साधन बताया है। वामन के पूर्ववर्ती आचार्य भामह ने भी कवित्व शक्ति के प्रेरक काव्य साधनों में पूर्वोक्त कारणों का उल्लेख किया है।[6]

काव्यकारणों की तुलना एवं समीक्षा करने से विदित होता है कि प्रायः सभी आचार्यो का मत एक जैसा है। आचार्य शारदाचरण दीक्षित ने काव्यकरण के इन सभी घटकों एवं रचना प्रेरक तत्वों का समावेश दृष्टिगोचर होता है। शब्दकोष, स्मृति, छन्द शास्त्र, एवं नीतिशास्त्र का तत्कृत रचनाओं में दर्शन होता है। दीक्षित जी युगीन प्रवाह के कारण विलुप्त होती संस्कृत एवं संस्कृति की धारा को सूखता देखकर दुःखी थे। शोक और उद्वेग काव्य के आदि प्रेरक रहे हैं। महर्षि बाल्मीकि का शोक श्लोक रूप में परिवर्तित होकर संसार का प्रथम काव्य बना।[7]

आचार्य शारदाचरण दीक्षित का मानस मराल कलियुगीन संस्कृति को देखकर

---

1. शक्तिर्निपुणता लोकशास्त्र काव्याद्यवेक्षणात्।
   काव्यज्ञ शिक्षणाभ्यास इति हेतुस्तदुद्भवे।। काव्य प्रकाश 1/3
2. लोकोविद्याप्रकीर्ण च काव्यांगानि। काव्यालंकार सूत्रः वामन 1/3/1
3. लोकवृत्तं लोकः वही 1/3/2
4. शब्दस्मृति अभिधान कोष छन्दोविचितिलाकामशास्त्रदण्डनीतिपूर्वा विद्या वही 1/3/31
5. लक्ष्यज्ञत्वमसियोगोवृद्ध सेवावेक्षणम् प्रतिभान अभिधानंच प्रकीर्णम्। वही 1/3/11
6. शब्दश्छन्दोऽमिधानार्था इतिहासाश्रयाः कथाः।
   लोकोयुक्तिः कलाश्चेति मन्तव्याः काव्यगैरमी।।
   शब्दामिधेये विज्ञाय कृत्वा तद्विदुपासनाम्।
   विलोक्यान्य निबन्धांश्च कार्यः काव्यक्रियादरः।।
   काव्यालंकार : भामह : 1/9—10
7. या निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वती समाः।
   यत्क्रोच मिथुनादेक मवधी काम मोहितम्।। रामायण : बाल्मीकि

क्षुब्ध था। लुप्त होती धर्म, कर्म एवं शर्म की धारा को वे अनदेखा न कर सके। आचार्य जी के मन का योग प्रस्फुटित हो उठा।[1] कविगणपति आचार्य जी को काव्य एवं तदशोभापादक अलंकारों का समग्र ज्ञान था। वे वाणी के विलास थे। सरस्वती उनकी जिह्वाग्र पर खेला करती थी। काव्यों की व्याख्या एवं टीका करने में प्राप्त नैपुण्य के कारण उन्होंने वस्तुतः सही अर्थो में टीकाराम सुतता अन्वर्थ कर दी थी।[2]

आचार्य जी के पिता पं0 टीकाराम शास्त्री महामहोपाध्याय एवं काशी की विद्ववत् परिषद से सम्मानित विद्ववान थे। अतः पुत्र शारदाचरण ने पिता का याथातथ्य अनुसरण किया।

पारिवारिक परम्परा का प्रभाव :– परिवार की कल्पना उतनी ही पुरानी है जितनी कि मानवीय सृष्टि। "परितः वृणोति" अर्थात जो सभी और से आवृत, प्रभावित, परिमार्जित करे उसे परिवार कहा जाता है। पारिवारिक प्रभाव व्यक्तित्व समुन्नयन में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन सदा से करता चला आ रहा है। आचार्य शारदाचरण दीक्षित का परिवार संस्कृत भाषा के लिये सर्वात्मना समर्पित विद्ववानों का परिवार रहा है। आचार्य जी के प्रपितामह पं0 काशीराम जी शास्त्री अपने समय के प्रसिद्ध संस्कृत विद्ववान रहे। उनकी वैदुष्ययश पताका काशी तक फहराती थी। दीक्षित जी के पितामह महामहोपाध्याय पं0 प्रभूदयाल शास्त्री भी उसी श्रृंखला के अप्रतिम विद्ववान माने जाते रहे। बालक शारदाचरण दीक्षित के मन मष्तिष्क पर कुलक्रम प्राप्त संस्कृत विद्या के धारण, पोषण, भरण एवं प्रणयन का संस्कार पड़ना स्वाभाविक ही था।

पितृपरम्परा का प्रभाव :– दीक्षित जी ने जिस पितृकुल को अपने जन्म से समलंकृत किया उस पिता का अभिधान महामहोपाध्याय पंडित टीकाराम शास्त्री था।[3]

विद्ववानों ने दीक्षित जी को टीकारामसुत और वाणीविलास का आलय बतलाया।[4] स्वनामधन्य पिता पं0 टीकाराम जी शास्त्री ने बालक शारदाचरण को घर पर ही पाणिनीय प्रबोध, लघुसिद्धान्त कौमुदी एवं अमरकोश कंठस्थ करा दिया था। "यः प्रीणयेत् सुचरितैः पितरं स पुत्रः" के अनुसार बालक शारदाचरण ने– अपनी अध्ययन

---

1. हा संस्कृतिः कृतिकृताञ्च कृतौक्व सुप्ता।
   हा संस्मृतिः स्मृतिमतां वचने क्व लुप्ता।।
   हा धर्मकर्मकरिणी सरणी क्व याता।
   धर्मागमश्रुति विधान विधौ विधाता।। आचार्य जी की डायरी से पृ0 1 श्लोक सं0 3
2. काव्यव्याकृतिवृत्तकौशकुलशौऽलंकार सर्वस्ववित्।
   टीकाराम सुतः सतां विजयते वाणी विलासा दयः।।
3. रामश्रीर्जननी यस्य टीकारामः पिता महान्।
   शारदाचरणः सोऽयं कविर्विजयतेतराम्।।
   डायरी से पृ0 18
4. तर्के सुविषमत्वे प्रतिभा प्रथिता यथाकालम्।
   काव्यालंकृति विद्यामध्यापयति प्रमोस्तुल्यः।।
   शारदाचरण दीक्षित को प्रस्तुत अभिनन्दन पत्र से
   संस्कृत दिवस 6 अगस्त 1971

तपस्या एवं अध्ययन निष्ठा से पिता को प्रसन्न कर दिया था। सन्ध्योपासन उनका नित्यकर्म था। पिताश्री से माधवनिदान, चरक संहिता, भावप्रकाश आदि आयुर्वेद, निर्णय सिन्धु, मुहूर्त चिन्तामणि एवं लीलावती आदि ज्योतिष ग्रन्थों का तन्मयतापूर्वक अध्ययन किया। यहाँ यह बात स्मरणीय है कि दीक्षित जी ने अनेक विख्यात आर्ष एवं जैन ग्रन्थों की बड़ी बड़ी अच्छी टीकायें पिता के उपालम्भ, "टीकारामः सुतः कथं न कुरूषे टीकाः नुख्याते र्भवान्" को सुनकर की थीं। पुत्र की वचनानुकारिता को देखकर भला कौन पिता अपने सुयोग्य पुत्र पर गर्व न करेगा ?

गुरू परम्परा का प्रभाव :– भारतवर्ष विश्वगुरू कहा जाता है। त्रिदेव की स्थापना इसका परम विशिष्ट कारण है। ब्रहमा, विष्णु, महेश की जगत् वन्द्यता के समान– माता पिता एवं गुरू को देवत्व की पंक्ति में स्थान दिया गया है–

तयोर्नित्यं कुर्यादाचार्यस्य च सर्वदा।
तेष्वेव त्रिषु तुष्टेषु तपः सर्वं समाप्यते।।

इस प्रकार स्पष्ट है कि आचार्य (गुरु) का स्थान महनीय है। दीक्षित जी की प्रारम्भिक शिक्षा घर पर ही हुई। व्याकरण, मीमांसा, वेदान्तदर्शन ज्योतिष आदि का अध्ययन अपने विद्ववान पिता पण्डित टीकाराम शास्त्री से किया। आचार्य दीक्षित जी अपने ज्ञान संवर्धन के लिए मर्यादा पुरूषोत्तम भगवान श्री राम की जन्मभूमि अयोध्या गये और वहाँ के हनुमन्त संस्कृत महाविद्यालय के परमवैयाकरण, निष्णातमीमांसक मिथिला निवासी रामेश्वर झा से शास्त्रों का गहन गम्भीर अध्ययन किया।[1]

पंडित रामेश्वर झा आगम निगम के भी विद्वान थे।[2]

कवि गणपति आचार्य शारदाचरण जी दीक्षित ने गुरूकृपा से साहित्य, आयुध शास्त्र, अलंकार शास्त्र, अद्ववैतवेदान्त, संगीत शास्त्र एवं षडंग दर्शन आदि शास्त्रों का अध्ययन गुरुकृपा से कर लिया था।

आचार्यजी ने शास्त्र अध्ययन को गुरुकृपा से अर्जित अनुपम धन के रूप में स्वीकार किया।[3]

---

1. जयन्तु मह्यं गुरवो गृहेलिमाः।
   महार्धमीमांसक मैथिलेलिमाः।।
   विशिष्ट वैय्याकरण तपत्रिणः।
   त एव रामेश्वर झाख्यशास्त्रिणमः।। डायरी से पृ0 सं0 31
2. यत् पादपदम रजरंजित चारू चित्तात्।
   प्रत्याययाभि निगमागम प्रत्ययत्वात्।।
   तेभ्यः प्रणम्य सरयूतट सिंचितेभ्यः।
   पाखण्डखण्डन प्रचण्ड चयाचिंतेभ्यः।। वही पृ0 सं0 31
3. साहित्यं सकलाकलाहयवयः खड्गादिशास्त्रं वरं
   आलंकारिक कारिकावतरणं यादवैत तत्वादरम्।
   संगीत च षडंगदर्शनमतादर्शं परामर्शितम्।
   ब्रहमनानन्द सहोदरं पररसास्वादं प्रसादं गुरोः।।

आचार्य दीक्षित जी उन विप्रों में से न थे, जो तीर्थों के घाटों पर बैठकर पंचांग हाथ में लेकर मनुष्यों का शुभाशुभ देखा करते हैं, उनकी मान्यता थी कि ऐसे अल्पज्ञानी लोग केवल लोगों को बहकाते रहते है। आचार्य जी तो उन विद्ववानों में से थे जो गुरुचरणों की कृपा से वैदुष्य का डंका त्रिभुवन में बजाया करते हैं।[1]

आचार्य जी काव्यज्ञ विद्ववान की भाँति गुरुस्तुति एवं प्रभाव से सुपरिचित थे। उनकी दृष्टि में गुरूसमाधानों का स्थान, नवनिधियों का निधान परम अभिभावक, गुणवानों का ग्राहक अतएव स्तुत्य होता है।[2]

सामाजिक स्थिति के गहन अध्ययन का प्रभाव :– आचार्य शारदाचरण दीक्षित ने जिस अवस्था में सामाजिक परिवेश को निकटता से देखने एवं समझने का अवसर प्राप्त किया वह कालखण्ड आंग्लदासता का था। आंग्लशासक नानाविध शोषण, उत्पीड़न, एवं मानमर्दन के द्वारा पवित्र भारत भूमि को तिरस्कृत करते थे।

भेदनीति को अंगीकार करके वे यवनों की जमींदारी का तमगा पहनाकर उनके द्वारा समाज को चूर्णायित कराने में अपनी कृतकृत्यता समझते थे। आगरा महानगर वैसे भी मुगलों की राजधानी रही हैं, यहां की गंगा यमुना संस्कृति ने अनेक आरोह अवरोहों को देखा है। आगरा नगर स्वाधीनता पूर्व एवं स्वातन्त्र्योत्तर राष्ट्रीय सामाजिक चेतना का केन्द्र रहा है। इन सामाजिक उथल पुथलों का प्रभाव आचार्य जी के कवित्व का प्रेरक रहा है। समाज की प्रवंचनाओं, मान्यताओं एवं रूढ़ियों की प्रतिकृति वह स्वान्तः सुखाय करता है तो कभी विद्ववानों के मनोविनोद के लिये भी।

ज्योतिष विषयक एक मान्यता को लेकर आचार्य जी ने इसी प्रभाव को इंगित किया है।[3] आगरा नगर अन्य धर्मों के साथ जैन धर्म का प्रधान केन्द्र है। मोतीकटरा और राजामन्डी में जैन मतावलम्बियों के विशाल एवं भव्य मन्दिर भी हैं। भारत के प्रधान जैनमुनि आगरा प्रायः आते ही रहते हैं। जैन साधु सन्तों का सम्पर्क आचार्य

---

1. वयं नो ते विप्रास्तरणितनया तीर पुलिने।
   कणान् ये याचन्ते परिगणित पंचाग तिथयः।।
   वयं तत्पाखण्डं निगमनिशितैः खड्‌यसततम्।
   निदध्मो नो दानां गुरूवर पदद्वन्द दयया।
   वैदिकाभ्यर्थनम् : पृ0 50
2. समाधानाधानं नवनिधिनिधानं नयवतां।
   प्रसिद्धिं सिद्धीनामभयमभिभावं विभवतां।।
   गुणाधारं धारं गुणिगण मुदारं दरदरम्।
   सतां वन्द्यं वन्दे गुरू चरण पंके रूहवरम्।।
   वही पृ0 54 श्लोक सं0 35
3. यदव्याहतं मकर संक्रमण क्रमेषु।
   धर्मागमेषु निगमेषु नियामकेषु।।
   तच्छंश्रयामिनिज धर्मनिबोधनाय।
   स्वान्तः सुखाय बुधबन्धु विनोदनाय।। डायरी पृ0 18

जी से अनेक बार हुआ। जैन सन्त अमरमुनि जी ने आचार्य जी से दर्शन एवं पालिप्राकृत ग्रन्थों का अध्ययन किया था। अमर मुनि जी के वाग्वैदध्य एव वैदुष्य से आचार्य दीक्षित जी प्रभावित हुए और अपने विद्याशिष्य अमर मुनि के चरित्र को लेकर उभयभाषी खण्डकाव्य (हिन्दी संस्कृत) की रचना कर डाली। कथञ्चित् यह काव्य जगत् की प्रथम घटना है जबकि किसी आचार्य ने अपने विधा के पात्र को लेकर ग्रन्थ प्रणयन किया हो। इससे स्पष्ट होता है कि दीक्षित जी गुणग्राही, नीरक्षीर विवेकी एवं उदारचेता काव्यज्ञ कवि थे। आचार्य जी ने "अमरशतकम्" के प्रथम पद्य में अमर मुनि जी को प्रणाम निवेदित करके अपने हृदय की विशालता का परिचय दिया है।[1] आचार्य जी वेदविद्या के निरन्तर होते ह्रास को देखकर अत्यन्त दुःखी होते थे। प्राचीन काल के वेदरक्षापरायण विद्ववानों का वे अभिनन्दन करना न भूलते थे।[2]

पुरातन वैभव को या तो वैभव प्रदर्शन करने के लिये स्मरण किया जाता है, या फिर वर्तमानकालिक तद्विषयक दुरवस्था को देखकर मानसिक कष्ट व्यक्त किया जाता है।

आचार्य शारदाचरण जी का हृदय अत्यन्त संवेदनशील था। वे भावुक कवि थे। उनकी मान्यता थी– वेद भारतीय प्रज्ञा के अद्वितीय वाहक एवं संवाहक हैं। वैदिक ज्ञान विज्ञान का प्रचार प्रसार जब पाश्चात्य देशों में प्रमुखता पा रहा है तो फिर वेदों के उदगम एवं प्रसवण देश भारत भूमि में उनकी उपेक्षा क्यों ? वेद प्रचार में जुटने वाले विद्वान निश्चय ही धन्यवाद के पात्र है।[3] भौतिकवादी समाज में लोभ का संवरण करके वेद प्रचार में लगे लोग प्रणम्य रहे और हैं।[4] आचार्य जी की मान्यता थी कि

1.(क) आचारशीलाय दृढ़व्रताय सर्वेन्द्रिया प्रीति–निवर्तकाय।
स्वतंत्र–मन्त्राय जिनेरताय नमोनमस्ते कवयेऽमराय।।
अमरशतकम् : दीक्षितकृतः श्लोक सं0 1

(ख) आचारशील दृढव्रती अविचल अतुल अविराम हैं।
उन्हीं अमरमुनि के अमर पद में अनेक प्रणाम हैं।
अमरशतकम् : पद्यानुवादः आचार्यकृत

2. आसीतपुराभारत भूरियं नः।
सर्वात्मनावेद पथाध्वनीना।।
सर्वेस्ववर्णाश्रम कर्मदक्षाः।
वेदैकरक्षा व्रतिनो बभूवुः।। डायरी से श्लोक सं0 4 पृ0 27

3. वेदात्मकं सत्यमयं शिवस्य।
वपुर्विलोक्यैव गुरोः प्रसादात्।
तदुक्ततमाचार मनन्तरायम्।।
प्राचारयन्ते किलकेऽपि धन्याः।।
वैदिकेभ्योऽभ्यर्थनम् · दीक्षित जी : श्लोक सं0 3 पृ0 2.

4. वेदाक्षरभ्यिास पवित्र वाचो।
भावानुसंधान विधूत पापाः।।
आचान्तसोमा ज्वलदग्नि दीप्ताः।
विप्रानकेषामभवन्नमस्याः ।। वही : श्लोक 10

हमारा यह देश भारत केवल वेद महिमा के कारण ही अन्वर्थनामा (भा–रत) था।[1]

कवि की रचनाओं पर समाज की परिस्थितियों का प्रतिबिम्ब किसी न किसी रूप में अवश्य पड़ता है। आचार्य जी ने अपने जीवन के प्रारम्भिक 36 वर्ष परतन्त्र भारत में गुजारे अतः तत्कालीन ज्ञान, विज्ञान एवं जीवन का उनकी रचनाओं में दर्शन होता है। स्वाधीन भारत में वे तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी के व्यक्तित्त्व से पूर्णतया प्रभावित रहे थे। 1971 का भारत पाक युद्ध एवं बांग्लादेश का अभ्युदय इन दोनों कारकों का प्रभाव उनके मस्तिष्क पर पड़ा अतः उन्होंने ''इन्दिरोपाख्यान'' व ''पाकचरितम्'' की रचना की।

इन्दिरोपाख्यान की रचना आचार्य जी ने सन् 1971 के भारत पाक युद्ध के दौरान ही कर ली थी।[2]

इस काव्य का संकलित रूप संस्कृत साप्ताहिक गाण्डीवस् के 15 अगस्त 1974 के अंक में ''इन्दिरोपाख्यानम्'' नाम से प्रकाशित हुआ। आचार्य जी ने अपनी इस रचना को ''पाकचरितम्'' के नाम से ही उद्बोधित किया है। सम्भवतः 1971 के युद्ध की समाप्ति तक की घटनाओं के वर्णन को लेकर उन्होंने इस रचना को पाकचरितम् नाम दिया हो। किन्तु उत्तरवर्ती घटनाओं विशेषकर आपातस्थिति एवं चिकमंगलूर से चुनाव लड़ने तक की घटनाओं के कारण उन्होंने इसका नाम इन्दिरोपाख्यानम् रख दिया हो।

इस काव्य में आचार्य दीक्षित जी ने इन्दिरा जी को भगवती दुर्गा के रूप में प्रदर्शित किया है।[3]

3 दिसम्बर 1971 को भारत पाक युद्ध के प्रारम्भीकरण का वर्णन अतीव रोमोदगमकारी बन पड़ा है। भारत के नैटविमानों के द्वारा अमेरिका प्रदत्त पाक सैवर युद्ध जैटों का विध्वंस सर्वविदित है।[4]

---

1. इत्थंवेदथाध्वनीनधिषणैः कर्मप्रधानैः परैः।
   वृहमादवैत विभावनापटुतरस्फूर्जन्मति प्रक्रमैः।।
   विप्रैर्विश्व नमस्कृता मुपगतैः सम्भूषितं भारतं।
   सत्यं भा–रतमेव वेद महिमोतुतुंगं पुराभूदिदम्।। वहीः श्लोक सं0 14
2. इति श्रीमदाचार्य शारदाचरण दीक्षित कविगणपति प्रणीते प्रथम सर्गः
   ईशवीय 1971 संवत्सरे दिसम्बर मासै 17 तारिकायां।
3. उद्दण्डमुण्डपरिखण्डन चण्डभाभिः
   श्चण्डीव भू भगवती भवतीन्दिरेयम्।।
   दामाञ्चलस्खलितपाकमतंगजेन्द्रं।
   दुश्चक्रिणं पतगराडिव संजहार।।
   इन्दिरोपाख्यानम्ः शारदाचरण दीक्षित : प्रथम सर्ग : श्लोक सं0 2
4. महोपकाराय परस्य वृद्धितां।
   मनस्युपाध्राय विकार वृत्तिना।।
   वलावलिव्याहत सैवराज्यम्।
   जद्यानजन्योर्जित नैव सन्ततिः ।। वही : 1–63

वस्तुतः कविकृतकाव्य तात्कालिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं पारिवेशिक कारकों से प्रभावित होता है। आचार्य शारदाचरण जी की कृतियां इन कारकों से नूनमेव प्रभावित हुई है।

<u>**स्वतंत्रता आन्दोलन अन्य परिस्थितियों का प्रभाव :–**</u> आचार्य जी ने जब युवावस्था में कदम रखा, उस समय भारतीय स्वाधीनता आन्दोलन अपने चरम पर था। युवावस्था के प्रारम्भिक चरण में आचार्य जी ने देखा कि स्वाधीनता के लिये राष्ट्रभक्त युवा बड़–चढ़कर भाग ले रहे हैं। 1929 ई. में सरदार भगत सिंह व वटुकेश्वर दत्त दिल्ली की केन्द्रीय विधान सभा में बम फेंक चुके थे। 31 मार्च सन् 1931 को भगत सिंह, राजगुरु और सुखदेव को फांसी दे दी गयी थी। 26 जनवरी सन् 1930 ई0 को सम्पूर्ण भारत में स्वतंत्रता दिवस मनाया गया था और स्वतंत्रता प्राप्त करने की प्रतिज्ञायें हुई थीं। सन् 1942 में 8 अगस्त को जब भारत छोड़ों आन्दोलन प्रारम्भ हुआ, उस समय हमारे आराध्य एवं विवेच्य पूज्य दीक्षित जी की आयु मात्र 31 वर्ष की थी।

आगरा नगर स्वतंत्रता आन्दोलन का प्रमुख केन्द्र बना हुआ था। आगरा की जनता ने ब्रिटिश सरकार द्वारा 9 अगस्त 1942 को महात्मा गांधी की गिरफ्तारी के बाद जुलूस निकाले, सभायें की तथा बन्द आयोजित किये। पूरा राष्ट्र स्वाधीनता प्राप्ति के लिये मतवाला हो उठा था। आगरा नगर की इस आन्दोलन में विशिष्ट भागीदारी रही। पूरे राष्ट्र का अनुकरण करते हुए विरोध स्वरूप आगरा में रेल की पटरियां उखाड़ी गयीं, तार काटे गये, सरकारी दफ्तरों व स्टेशनों में आग लगायी गयी। सरकारी सम्पत्ति नष्ट की गयी।

बलिया सतारा, बंगाल तथा बिहार में अंग्रेजी शासन को समाप्त करके राष्ट्रीय सरकारें तक बना दी गयी।

आचार्य शारदाचरण दीक्षित इस राष्ट्रव्यापी स्वाधीनता आन्दोलन से अत्यन्त प्रभावित हुये और उन्होंने इसमें अपनी सक्रिय भागीदारी की। आचार्य जी स्वाधीनता आन्दोलन में संघर्ष करते हुए कारागार भी गये।

स्वाधीनता आन्दोलन में आचार्य दीक्षित जी की मनसा, वाचा, कर्मणा समग्र भागीदारी रही। भौतिक शरीर से अपनी गिरफ्तारी देकर जहाँ आपने अपना कायिक योगदान किया वहीं अपनी लेखनी से स्वाधीनता आन्दोलन एवं तज्जनक महात्मा गांधी के चरित्र को भी लिपिबद्ध किया। निश्चय ही स्वाधीनता आन्दोलन का प्रभाव आपके कृतित्व में सहायक बना। परिणामस्वरूप ''गान्धीचरितम्'' एवं ''कांग्रेस वैभवम्'' काव्य की उपलब्धि संस्कृत साहित्य को हुई।

"कांग्रेस वैभवम्" राष्ट्रीय विचारधारा का उद्रेक करने वाली विद्वन् विनोदकारिणी रचना है।[1]

कांग्रेसवैभवम् काव्य में भारत देश को भव्य स्वरूप का वर्णन किया गया है। कांग्रेस ने 15 अगस्त सन् 1947 की मध्यरात्रि को राष्ट्र की बागडौर अपने हाथ में संभाली थी। इस अनुष्ठान के लिये कांग्रेस में अनेक पुण्यात्मा लोगों का सहयोग रहा। इनमें सर्वप्रथम बालगंगाधर तिलक का नाम अग्रगण्य है।[2] कांग्रेसचरितम् स्वाधीनता आन्दोलन जन्य प्रभाव से प्रभावित रचना है। आचार्य जी ने इस रचना में स्वाधीनता आन्दोलन के प्रमुख नायकों तिलक, जवाहर, मालवीय, राजगुरु, सुखदेव, भगत सिंह आदि समस्त वीरों का स्मरण करके उन्हें अपनी विनम्र श्रद्धांजलि अर्पित की है। महात्मा गांधी भारतीय स्वाधीनता आन्दोलन के प्रधान नायक रहे हैं। स्वाधीनता आन्दोलन के स्फुलिंग उनकी ही प्रेरणा एवं योगदान से दावानल का रूप धारण कर सके। आचार्य शारदाचरण दीक्षित राष्ट्रपिता महात्मागांधी के स्वाधीनता आन्दोलन की अग्रगामिता को अपनी आंखों से देख चुके थे। आगरा की सभाओं में बापू के भाषणों को उन्होंने अपने कर्णविवरों से सुना था, और प्रभावित हुये बिना न रह सके थे।

जब जब भारतभूमि का यश कलुषायित हुआ है, सज्जनों का शोषण एवं दुष्टों का मानवर्धन हुआ है, तभी तभी रक्षा रूपी तलवारकों हाथ में लेकर स्वयं भूतभावन भगवान प्रकट हुए हैं।[3]

भारत में भी यवनों और अंग्रेजों के अधर्म चक्र के प्रतीक परमात्मा के अवतार की परिस्थितियां बन चुकी थीं। यवनों के अत्याचारों ने कंस और रावण के अत्याचारों को पीछे छोड़ दिया था। अंग्रेजों के दमन चक्र से छाया में भी धूप प्रतीत होती थी। सर्वविध स्वातन्त्रय का अपहरण हो चुका था। अंग्रेजों के शोषण एवं दमन से अबला, बालक, वृद्ध, असहाय प्रतीत होते थे। वे केवल हा हा कर मात्र सजल नेत्रों से अपनी अन्तर्वेदना को अभिव्यक्त कर सकते थे। भारत माता की पराधीन मुखं भी मानो रोता

---

1. अपह्नुवानस्य वनस्य निष्ठया।
   प्रतिष्ठया काव्यरसौरसी रसौ।।
   विभर्त्तिकांग्रेस विशेषवैभवं।
   कविः सुधांशोरिव दर्पणे पणे।। कांग्रेस वैभवम् श्लोक सं0 8
2. ततान यस्तिक्त तिलित्सतामपि।
   दिवषां विघाताय विधातुमन्तरात्।।
   बभावसो भूतिलको मनस्विनां।
   स्वबालगंगाधर नाम धारया।। वही : 1–18
3. यदायदा धर्म धरायशश्चय।
   श्चुचुम्ब कुत्संकित किल्विषं विषं।।
   तदापरित्राणं कृपाण पाणिवत्।
   व्युदेति लोके स्वयमेव लोकमृत।। गान्धि चरितम् : शा.च दी 1–5

प्रतीत होता था।[1]

जन जन कातरमन से भगवान श्री राम से प्रार्थना करता था कि हे प्रभो! कब इन अंग्रेजों से भारत भू को मुक्त करोंगे। और तब पोरबन्दर में कर्मचन्द्र गाँधी के धर में गाँधी जी का अवतार हुआ।[2]

महात्मा गांधी के प्रयत्नों से अनेक राष्ट्रप्रेमी नागरिकों के संघात के सहारे गांधीजी ने भारतदेश को अंग्रेजों के शासन से मुक्त कराया। इस प्रकार स्वाधीनता आन्दोलन की विचारवीधियों के प्रभाव से दीक्षित जी ने गांधी चरितम् जैसा काव्य सुरभारती की सेवा में समर्पित किया।

परिकर एवं परिवेश का प्रभाव :– कविगणपति आचार्य शारदाचरण दीक्षित आगरा नगर एवं आस–पास के विस्तृत क्षेत्र के संस्कृत विद्ववानों में बहुमान पाते थे। जिन विद्वत्गोष्ठियों एवं पंडित सभाओं में दीक्षित जी न होते वह सभी अपने में पूर्ण नहीं होती थी। "न सा सभा यत्र न दीक्षितः कविः" की ध्वनि उस सभा में उठ खड़ी होती जिसमें दीक्षित कवि न होते थे। आचार्य जी का सम्पर्क ऐसे सभी विद्वानों से था जिनमें राष्ट्रीय भावना भरी थी। आचार्य जी या तो राष्ट्रीय विचारधारा से प्रभावित थे या फिर सामाजिक, सांस्कृतिक भावनाओं से। उनकी यही विचारसरणि उनकी कृतियों में उजागर हुई हैं। आचार्य जी आयुर्वेद शास्त्र के प्रकाण्ड मर्मज्ञ विद्ववान थे, अतः आयुर्वेदशास्त्र के दृष्टा भगवान् धन्वन्तरिजी की स्तुति सहजरूप में बन पड़ी है। आचार्य जी आगम निगम के पारदृश्वा विद्वान् थे अतः "वैदिकैभ्योऽभ्यर्थनम्" ये उन्होंने जहाँ प्राचीन भारत में वेदविद्या के उत्कर्ष का यशोगान किया है वहीं वेद विद्या के साम्प्रतिक ह्रास एवं पराभव को देखकर उनका चित्त दूयमान रहा है।

आचार्य जी अपने समय के प्रख्यात ज्योतिर्विद भी रहे हैं। मलमास चैत्र में कृत्याकृत्यविचार को लेकर तत्कृत निर्देश समीक्षणीय हैं। महाकवि कालिदास कृत मेघदूत संस्कृत साहित्य की अमूल्य थाती है, किन्तु महाकवि कालिदास जिन बिन्दुओं का स्पर्श नहीं कर पाये उन्हें आचार्य जी ने उसी सरणि में अवशिष्ट कार्य को पूरा किया। अतएव मेघदूत के पूर्व में आचार्य जी ने लिखा है "महाकवि कालिदासादवशिष्टं कविगणपति प्रंणीतं मेघदूतोत्तरार्धम्"।

वस्तुतः कविगणपति आचार्य शारदाचरण दीक्षित के कवित्व बीज के प्रेरक कोई एक तत्व नहीं हैं। परिवार, परिकर, परिवेश एवं साधुकाव्यज्ञजन संसर्ग ये सभी मिलकर काव्यसर्जना के हेतु हैं। "इन सभी प्रेरक तत्वों को समष्टि में आचार्य मम्मट के शब्दों

---

1. विलप्यते हन्त विलिप्यतेभृशं।
   द्वियद्भिरैवाहत लोचनाज्भिक्तैः।।
   विधूय भू भारत भावनं वनं।
   पराभवीनं मुखमश्रुविन्दुभिः ।। गान्धिचरितम्
2. पुरूदराणां पुरि पोरबन्दरे, दरादराभ्यादरणीरणीभुवाम्।
   ततः पराधीन पथव्यथावधौहयवातरन् गान्धि गृहे महाधनाः।। वही

में "हेतुर्न तु हेतवः" कहा जावे तो असंगत न होगा।

काव्य का अर्थ :– छन्दोबद्ध रचनाओं को काव्य कहने की परम्परा बहुत प्राचीन है। एक ओर बाल्मीकि, व्यास जैसे महाकवियों की रचनाएं, काव्य कहलाती हैं, वहीं शुक्राचार्य जैसे राजनीतिज्ञ और नीतिकार के लिए 'कवि' और उनकी रचनाओं के लिए 'काव्य' शब्द का प्रयोग होता था। छन्दोबद्धता के ही कारण प्राचीन काल में वैद्यक, ज्योतिषादि के ग्रन्थों को भी काव्य कह दिया जाता था किन्तु बाद में 'काव्य' शब्द के अभिप्राय आह्लादक रचना ही हो गया। अतः काव्य का सामान्य अर्थ ऐसी छन्दोबद्ध रचना है, जो हृदय–आह्लादकारी है।

काव्य का व्यापक अर्थ :– काव्य शास्त्र में काव्य के उपर्युक्त सामान्य अर्थ को व्यापकता प्राप्त हुई। नाटक के लिए नाट्य, और उसके शास्त्र के लिए 'नाट्य शास्त्र' शब्द का प्रवचन होते हुए भी नाटकादि को व्यापक अर्थ में ही सम्मिलित कर लिया गया। अतः अर्थ–व्याप्ति की दृष्टि से 'काव्य' शब्द से अभिप्राय सब प्रकार की गद्यपद्यमयी भावानन्द दायक रचनाओं से ही है। इस व्यापक अर्थ रूप में 'काव्य' शब्द वर्तमान 'साहित्य' शब्द का ही पर्यायवाची है। अपने सामान्य अर्थ में 'काव्य' शब्द 'कविता' का ही पर्यायवाची है। प्रबंध काव्य, गीतिकाव्य, छायावादी काव्य आदि में काव्य शब्द का अर्थ कविता ही है।

काव्य की परिभाषा :–

(क) संस्कृत आचार्यों के मत :– काव्य का सरसता से आदिम संबंध है। ऋग्वेद में काव्य को "बादलों में से फूटकर निकलने वाली पावसधारा" कहा गया है। ब्राह्मण ग्रंथों के "छन्दरस" शब्द से भी सरसता की व्यंजना होती है। सरसता के साथ ही सत्यता और हित की भावना जुड़ जाने से काव्य सत्यं शिवं सुन्दरं रूप माना गया। श्रीमदभगवतगीता में सत्यं प्रियं, (सुन्दरं) तथा हितं (शिवं) को वाणी के गुण बताया गया है।[1] रसवादी नाट्य आचार्य भरतमुनि ने मृदुललित पदों से युक्त, गूढार्थ रहित (सरल) सर्वसुखकारी, नृत्यसंगीतमय, विविध रसों को प्रवाहित करने वाली रचना को शुभ काव्य कहा है। अलंकारवादी आचार्यों ने सालंकार शब्द को काव्य माना है। भामह ने "शब्दार्थो सहितौ काव्य" कहकर शब्दार्थ की सालकारता को अनिवार्य बताया। दण्डी, रूद्रट आदि आलंकारिकों ने भी काव्य की अलग यही परिभाषा और व्याख्या प्रस्तुत की। काव्य में शब्द और अर्थ की अवस्थिति मानकर वक्रोक्तिवादी कुनतन ने सहृदयाहलादकारी वक्रकवि व्यापार से युक्त रचना में व्यवस्थित शब्द

---

1. अनुदवेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत्।।
स्वाध्यायाभ्यासनं चैव वाड्मयं तप उच्यते।।
गीता : 17 / 15

और अर्थ को काव्य बताया।[1] अग्निपुराण में काव्य को गुणयुक्त तथा दोषरहित सरस और अलंकृत अर्थगर्भित वाणी कहा गया है। मम्मटाचार्य ने अलंकारों की अनिवार्यता के सिद्धधांत का खण्डन करने के लिए "अनलंकृतिः पुनः क्वापि" कहकर अपने काव्य प्रकाश में "काव्य की यह परिभाषा दी"। ऐसे शब्द और अर्थो का समूह जो दोषरहित और गुणमंडित हो, भले ही कभी–कभी अलंकारविहीन हो, काव्य कहलाता है।[2]

रसवादी आचार्य विश्वनाथ ने "रसात्मक वाक्य को ही काव्य' कहा है।[3] यद्यपि जयदेव अलंकारवादी थे तथापि उन्होंने अपनी काव्य परिभाषा में रस, अलंकार आदि सभी तत्वों को सम्मिलित कर कहा– "वह वाणी जो दोषरहित हो, गुणों से युक्त, रीतिवाली, लक्षणवती तथा अलंकारों और रसों से युक्त हो, काव्य कहलाती है।[4] पण्डित राज जगन्नाथ ने रमणीय अर्थ के प्रतिपादक शब्द को काव्य कहा है।[5]

इस प्रकार संस्कृत काव्य शास्त्र में काव्य की परिभाषा मुख्यतः आहलाद या आनन्द तत्व पर आधृत रही है। अलंकारवादियों ने अलंकार के चमत्कार या आह्लाद को महत्व दिया, वक्रोक्तिकार कुन्तक ने वक्रोवित आह्लाद पर ध्वनिकार ने ध्वनि पर, रीतिवादी वामन ने गुण और रीति पर तथा रसवादी आचार्यों ने रस के आह्लाद पर जोर दिया। रस के विभावानुभाव संचारी संयुक्त परिनिष्ठितमरूप को काव्यपरिभाषा में स्थान देने की बजाय ध्वनि (रस ध्वनि, अलंकार ध्वनि या वस्तु ध्वनि) आह्लाद या रमणीयता को काव्य का मुख्यगुण या लक्षण बताया गया। यहाँ तक कि आचार्य विश्वनाथ की "वाक्यं रसात्मकं काव्यं" वाली परिभाषा में भी रस का व्यापक रूप दिखाई देता है। कुछ आचार्यों ने रीति, रस, गुण, अलंकार आदि सभी तत्वों को आह्लादक मानकर सभी काव्यांगों से युक्त रचना को काव्य बताया। यद्यपि हमारे संस्कृत आचार्यो ने काव्य से धर्मादि चतुर्वग प्राप्ति का दृष्टिकोण भी प्रकट किया था, पर अपनी काव्य परिभाषाओं में उन्होंने अधिकतर आह्लाद या आनन्द पर ही दृष्टि केन्द्रित रखी।[6] मेरे मत में संस्कृत आचार्यो की सामूहिक काव्य परिभाषा कुछ

---

1. शब्दार्थो सहितौ वक्रकवि व्यापार शालिनि।
   बंधे व्यवस्थितो काव्यं तदविदाहलादकारिणि।।
   वक्रोक्तिजीवितम् ' 1/17
2. तददोषौ शब्दार्थो सगुणावनलंकृतिः पुनः क्वपि।।
   काव्यप्रकाश मम्मट
3. वाक्यं रसात्मकं काव्यम्।।
   साहि दर्पण : पृ0 19
4. निर्दोषालक्षणवती सरीतिर्गुणभूषिता।
   सालकार रसानेक वृन्तिवाक्काव्य नामवाक्।।
   जयदेव।।
5. रमणीयार्थः प्रतिपादकः शब्द काव्यम्ः
   रसगंगाधर : पं. राज जगन्नाथ।।
6. साहित्यिक निबंध : डा0 कृष्णदेव झारी : पृ0 4–5

इस प्रकार मानी जा सकती हैं– "रस, अलंकारादि के संयोजन से रमणीय शब्दार्थ से युक्त सरस वाणी ही काव्य है। कवि अपार काव्य का निर्माता होता है। काव्य संसार की सृष्टि करने के कारण उसे काव्य जगत का प्रजापति या ब्रहमा कहा जाता है, उस कवि प्रजापति की इच्छा और रूचि के अनुसार ही इस काव्य संसार की रचना होती है। ध्वन्यालोककार आनन्दवर्धनाचार्य ने कवि का असाधारण महत्व प्रतिपादित करने में कोई कसर नहीं छोड़ी है।[1] वर्ण्यमान विषय का सद्यःवर्णन करने वाला कवि आशु कवि कहलाने का अधिकारी होता है। आचार्य मम्मट ने कवि की सृष्टि को ब्रहमा जी की सृष्टि से भी अधिक माना है। ब्रहमा की सृष्टि की अपेक्षा कवि की सृष्टि में चतुर्विध वैशिष्ट्य का उल्लेख मम्मट ने किया है।[2]

पण्डितराज आचार्य शारदाचरण दीक्षित का आशुकवित्व निर्विवाद सिद्ध था। अनेक सभाओं, गोष्टियों, विद्वत् सम्मेलनों तथा शास्त्रार्थ परिषदों में उन्होंने अपने वाग्वैदग्ध्य का परिचय दिया था। उनकी कविताएं धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष तथा कलाओं में कीर्ति और प्रीति को उत्पन्न करती रही।[3] आचार्य जी द्वारा रचित काव्य उनके कान्त वपु के रूप में आज भी सहृदयजनों को सुखद संस्पर्श की अनुभूति कराता है। काव्य आस्वादन की यह पुरातन परम्परा रही है कि उत्तम काव्यों की रचना करने वाले महाकवियों के दिवंगत हो जाने पर भी उनका सुन्दर काव्य शरीर 'यावत् चन्द्र दिवाकरो अक्षुण्य बना रहता है।[4]"

<u>**आस्थानी का संपादन :–**</u> आचार्य शारदाचरण दीक्षित संस्कृत भाषा के लिए समर्पित हस्ताक्षर थे। संस्कृत साहित्य को गति प्रदान करने, उसमें नूतन, सृष्टि का समावेश करने तथा विद्वान् कवियों और लेखकों को एक मंच देने के लिए दीक्षित जी ने अस्थानी पत्रिका के सम्पादन का महनीय कार्य 1965 वीं ईसवी के जून मांस में प्रारम्भ किया।

पत्रिका का नाम आस्थानी सुनिश्चित किया गया। कविवर के घर पर प्रायः साप्ताहिक एवं पाक्षिक तो कभी कभी दैनिक गोष्ठियां होती रहती थी उनका प्रतिपल, प्रतिक्षण, संस्कृतोन्यन के लिए समर्पित था, अतः पत्रिका के नामकरण के लिए

---

1 अपारे काव्य संसारे कविरेकः प्रजापतिः।
यथास्मैरोचयते विश्वं तथेवं परिवर्ततेः । ध्वन्यालोक–

2 नियतिकृतनियमरहितां हलादैकमयी मनन्यपरतन्त्राम्।
नवरसरूचिरां निर्मितिमादधती भारती कवेजयति।। काव्य प्रकाश पृ0 5

3 धमार्थकोन मोक्षेषु वैचक्षण्यं कलासुच।
करोति कीर्ति प्रीतिं च साधुकाव्यनिषेवणम्।।
काव्यालंकार – भामह 1/2

4 उपेयुषामपि दिवं सन्निबन्ध विधायिनाम्।
आस्त एव निरातंक कान्तं काव्यमयं वधुः।।
काव्यालंकार – भामह 1/6

सभागोष्ठी का पर्याय "आस्थानी" शब्द उपयुक्त पाया गया।[1] आस्थानी ने अपने स्थूल रूप में सभाकर्म का निष्ठापूर्वक अनुसरण किया। पत्रिका में संस्कृत विचार विमर्श गद्यपद्य सब कुछ मूर्त रूप को प्राप्त करने लगा। आचार्य जी ने अपने मुद्रणालय का नाम भी "आस्थानी मुद्रणालय" रख लिया था, जब आचार्य जी मुद्रणालय में बैठकर पूर्वरूप संशोधन (प्रूफरीडिंग) देखते, तब भी संस्कृत के विद्वानों का जमघट कम न होता। कभी कभी ही नहीं प्रायः अनेकधा विद्वत्‌गोष्ठियों का आयोजन भी प्रायः मुद्रणालय में ही होता और तब मुद्रणालय का आस्थानी नाम सार्थक हो उठता है। यह मुद्रणालय मोती कटरा नामक स्थान पर स्थापित था। अतएव पत्रिका के मुखपृष्ठ पर "मोती कटरा स्थाने नैजे आस्थानी मुद्रणालये मुद्रापयित्वा प्रकाशिता।" मुद्रित होता था।

सम्पादक, मुद्रक एवं प्रकाशकः आचार्य शारदाचरण दीक्षित– दीक्षित जी आस्थानी पत्रिका के स्वयं स्पादक, मुद्रक तथा प्रकाशक थे। उनका पत्रिका पर स्वयं का स्वत्वाधिपतित्व था। अतः पत्रिका के मुख पृष्ठ पर एतदृविषयक विवरण निम्नलिखित प्रारूप में मुद्रित रहता था–

"सम्पादक मुद्रक प्रकाशकेन स्वत्वाधिपतिना कविगणपतिना श्री शारदाचरणदीक्षितेना आगरा नगरे मोती कटरा स्थाने..............प्रकाशिता।"

<u>**आस्थानी पत्रिका का उद्देश्य :–**</u> आस्थानी मासिक पत्रिका के रूप में प्रकाशित हुई। पत्रिका में प्रायः विशिष्ट विद्वानों के सर्वदर्शन, मीमांसा, वेदान्तादिविषयक गम्भीर गवेषणात्मक लेख प्रकाशित होते थे। आस्थानी के अन्तिम पृष्ठ पर इस तथ्य का स्पष्ट उल्लेख रहता था–

"परमेतदव्यवगन्तव्यं यदत्र लेखाः प्रायो महतां विशिष्ट विदुषामेव सर्वदर्शनमीमांसा विषयका दार्शनिक विचारपरिपूर्णा गवेषणात्मका मननशीलाः प्रकाश्यन्ते। तदर्थं लेखक महोदयानाम् विदुषां महान्तमुपकारं विभूमस्तेभ्यो धन्यवादानामपि भूयसो वितरामः।

इसके साथ ही आस्थानी पत्रिका का प्रमुख उद्देश्य वैदिक वाङ्मय का इस आर्यधरा पर प्रचार प्रसार करना भी था। कविगणपति दीक्षित रचित मुखपद्य में वेदों की महत्ता को स्वीकार करते हुए आस्थानी पत्रिका के द्वारा उनके सार्वदेशिक एवं सार्वभौमिक प्रस्फुरण को पत्रिका का लक्ष्य निर्धारित किया गया।

पत्रिका का वार्षिक मूल्य मात्र 20 रूपया था। आस्थानी नियमों में उल्लेख मिलता है कि प्रेषण व्यय ग्राहकों के द्वारा नहीं दिया जाता था– प्रेषणव्ययो ग्राहकैः न देयः।

---

1. समजयापरिषद् गोष्ठी सभासमिति संसदः।
   आस्थानी क्लीबमास्थानं स्त्रीनपुंसकयो सदः।।
   अमर कोष द्वितीय काण्ड / 7
2. आम्नायायत्तिमावर्त्य लोकयन्त्यावलोकनम्।
   ऐलिलल्लोक मास्थानी लोलालीलावलीलया।।
   आस्थानी मुखपृष्ठ पद्य
   कविगणपति दीक्षितः।।

काव्य क्षमता और आशु कवित्व के कारण सर्वत्र सम्मानित होते थे। उनके समसामयिक एवं परिकर के सहयोगीवृन्द उनके जीवन के ऐसे असंख्य प्रश्नों का हर्ष और उल्लास के साथ निरूपण करते हैं। इसीलिए वे जिस सभा में जाते थे किसी न किसी रूप में अवश्य ही सम्मानित किए जाते थे। उनके परिवार के लोगों में उन्हें सम्मान स्वरूप भेंट किए गये अंगवस्त्र, उत्तरीय, एवं शाल, आदि में से कुछ को अभी तक सहेज कर रखा है। मैंने अपनी शोध यात्राओं में उनके परिजनों से कुतूहल के साथ अपनी जिज्ञासा व्यक्त की। उनकी पत्नी तो भाव विभोर होकर बताती है– कि यह सूर्यग्रहण के समय कुरूक्षेत्र में दिया गया था। यह काशी की विद्वत्परिषद द्वारा प्रदत्त है। यह दरभंगा सं0 वि0वि0 की भेंट है। यह ब्रज मंडल की विद्वतृसभा ने वृन्दावन में भेंट किया था। अनेक प्रकार की कढ़ाई से युक्त एक शाल दिखाते हुए वे बताती है कि यह दक्षिण भारत के विद्वानों ने यहाँ आकर उढाया था।

इसी प्रकार कुछ ऐसे पत्र और हस्तलिखित लेखादि भी हैं जिनमें उन्हें अनेक प्रकार की उपाधियों से विभूषित और सम्मानित किया गया है।

"कोई कविताकामिनीकान्त कह रहा है। किसी पत्र में कवि सम्राठ कहा गया है। "किसी ने कवि चक्रवर्ती" तो किसी में काव्य शिरोमणि लिखा है। आदि सम्बोधनों एवं सम्मानोपाधियों से उन्हें अलंकृत किया है। परन्तु उनके समसामयिक विद्वान मित्र और साहित्यकार बताते हैं कि वे ऐसी उपाधि या सम्मानों के प्रति कभी गम्भीर नहीं रहे। इसे तात्कालिक वस्तु मानकर वे आदर अथवा निरादार छोड़कर तटस्थ या उदासीन भाव से इन्हें अंगीकार करते थे। उनके समसामयिक व्यक्ति उनके हास्य का भी उल्लेख करते है। संस्कृत नीति शास्त्र का एक प्रसिद्ध श्लोक हैं– जिसमें कहा गया है– "वह सभा सभा नहीं है जिसमें वृद्धजन उपस्थित न हों और वे वृद्धजन अधिकारी नहीं हैं जो धर्म की बात न कहते हों सूक्ति है– "न सा सभा यत्र न सन्ति वृद्धाः" वृद्धाः न ते ये न प्रवदन्ति धर्मम्"

इसी सूक्ति को कभी कभी अपनी मित्र मण्डली में आचार्य शारदाचरण दीक्षित जी हास्य के रूप में कहते थे।

"न सा सभा यत्र न शारदा गता।"

इस प्रकार उनके जीवन का वैदुष्यपक्ष अनेक भावनाओं तथा संभावनाओं से ही युक्त नहीं, संगति और असंगतियों का अद्भुत भन्डार है।

आचार्य शारदाचरण दीक्षित ऐसे अनेक असंख्य सम्मानों को हेयदृष्टि से तो नही देखते थे परन्तु उन्हें श्रेय और प्रेय भी नहीं मानते थे। विरक्तभाव का यह उद्घोष "प्रतिष्ठा सूकरी विष्टा" गौरवं रौरवम् तथा' की साधु सम्मत महत्ता को गृहस्थोचित नहीं मानते थे। अतः सम्मानकर्ता का सम्मान करते हुए उस सम्मान को स्वीकार कर लिया करते थे परन्तु नितान्त उदासीन भाव से।

आचार्य शारदाचरण दीक्षित की वृत्ति, प्रवृत्ति एवं रचना संसार जितनी बहुआयामी है, उतना ही वैचित्र्य और वैविध्य, उन्हें प्राप्त सम्मानोपाधि, या विरूदों में भी है। उनके

दो विरूद कविगणपति एवं पंडितराजदीक्षित की खोज के सम्बन्ध में मैंने आगरा नगर और निकटस्थ स्थानों के उनके समकालीन एवं वयोवृद्ध संस्कृतज्ञों, विद्वानों, वैद्यों, ज्योतिषियों, संगीत शास्त्रियों एवं प्रबुद्ध समाज सेवियों से सम्पर्क किया और उन्हीं लोगों के संकेत पर भारत की सांस्कृतिक राजधानी काशी की भी यात्रा की, और राजस्थान के गुलाबी शहर जयपुर भी गया। इस सम्बन्ध में विभिन्न संवादों में जो वाद, प्रवाद, परिवाद, मेरे कर्णकुहरों में आये वे स्वयं में एक शोध का विषय है।

सर्वप्रथम आश्चर्य की बात तो यह है कि प्रत्येक ने आचार्य शारदाचरण दीक्षित के सम्बन्ध में कोई जानकारी अवश्य दी। मैं समझता हूं कि यह आचार्य चरण की प्रतिभा की विजय है। इस सम्बन्ध में एक मनोरंजक बात यह है कि काशी के एक विद्वान ने कहा कि तुम संस्कृत में शोधकार्य कर रहे हो यह प्रसन्नता की बात है, तुमने संस्कृत में नवरसों की चर्चा पढ़ी है, उनकी विवेचना भी की होगी। और हिन्दी वाले तो वात्सल्य और भक्तिरसों की भी कल्पना करने लगे है। पर वास्तविकता यह है कि यह सब रस पुराने हो गये। यह पुस्तकों की शोभा के लिए ही हैं अथवा विद्यार्थियों को रटाने के लिए ही इनका महत्व हैं। वस्तुतः आज के युग में तो एक ही रस है। उन्होंने बनारसी अट्हास के साथ कहा– कि उस एकमात्र रस का नाम है– ''परनिन्दारस'' किसी भी समाज में बैठिये, किसी भी विषय की चर्चा कीजिए। वह एक दूसरे की आलोचना प्रत्यालोचना में बदल जायेगी और जो पर है अर्थात् अनुपस्थित है, उनकी निन्दा पर केन्द्रित हो जायेगी। यही विद्वानों का श्रृंगार है। इसी में विद्वानों को हास्य के पांचों भेद ईषदस्मित से लेकर अट्टास तक स्वतः सिद्ध प्रतीत होते हैं। उसके विरूदरूपों में वीभत्स का दर्शन होता है। और अपने कथन में उन्हें वीररस का आनन्द आता है। और यदि ऐसे अवसर पर निन्दनीय व्यक्ति का एकाध समर्थक भी उपस्थित हो तो रौद्ररस, वीभत्स और अद्भुत सभी का साक्षात्कार हो जाता है। अन्त में कोई वयोवृद्ध शान्तरस का आस्वादन कराता हुआ उस प्रकरण को शान्त करता है। वे विद्वान एक विश्वविद्यालय के प्रमुख विभागाध्यक्ष पद से सेवानिवृत्त हुए थे। अतः उनका यह नवीन विवेचन मुझे अत्यन्त प्रिय लगा और वास्तविक भी प्रतीत हुआ।

उन्होंने संकेत देते हुए मुझे बताया कि शारदाचरण दीक्षित मेरे चिरपरिचित थे, काशी के विद्वत्समुदाय में उनका बड़ा आदर था। संस्कृत काव्य में समस्यापूर्ति सबसे कठिन मानी जाती है परन्तु वे इसमें दक्ष और सिद्धहस्त थे। उनकी सबसे बड़ी बात यह थी कि वे आशु कवि थे। और तत्काल रचना करते थे। और उससे भी बड़ी विशेषता यह थी कि वे उसका हिन्दी रूप की पद्यशैली में तत्काल प्रस्तुत कर देते थे। काशी विद्वानों की नगरी है यहाँ का व्यक्ति किसी बाह्य को विद्वान मानने को तैयार नहीं है ऐसे स्थान पर एक विद्वतगोष्ठी में उनकी प्रतिभा से प्रभावित होकर उन्हें कवि गणपति कहा गया था। संभवतः उसी समय से यह उनके नाम का अंग बन गया।

इस गोष्ठी की कोई तिथि आदि प्रयास करने पर भी मुझे नहीं मिल सकी। वैसे भी संस्कृत के विद्वान ऐसी गोष्ठियों की लिखा पढ़ी नहीं करते थे। और आज भी नहीं करते हैं केवल मौखिक सूचना जो एक दूसरे के द्वारा प्रदान की जाती थी, ऐसी गोष्ठियों के लिए पर्याप्त मानी जाती थी। परन्तु इतना अवश्य पता लग सका है कि यह गोष्ठी सुप्रसिद्ध रामायण मर्मज्ञ पंडित विजयानन्द त्रिपाठी के आमंत्रण पर हुई थी। स्थान दुर्गाकुण्ड का कोई मकान बताया गया था, जिसकी जानकारी मैं प्रयास करने पर भी नहीं पा सका। इस गोष्ठी की अध्यक्षता के सम्बन्ध में कई नाम अनेक स्वरों में मुझे बताये गये, परन्तु सर्वाधिक चर्चा विद्वद्ववरेण्य पद्म नारायणाचार्य के नाम की रही। मैं समझता हूँ कि वे ही अध्यक्ष रहे होंगे। श्रद्धेय पद्म नारायणाचार्य जी काशी हिन्दू वि0वि0 में प्रोफेसर थे। और तन्त्र साहित्य में महामहोपाध्याय गोपीनाथ कविराज के बाद उन्हीं का नाम लिया जाता था। वे संस्कृत और हिन्दी दोनों ही भाषाओं के प्रगाढ़ विद्वान थे। कुछ विद्वानों ने बताया कि महाकवि जयशंकर प्रसाद की कामायनी की अन्तिम पांडुलिपि जिसके आधार पर उसका प्रकाशन हुआ है माननीय पदमनारायणाचार्य जी द्वारा तैयार की गयी थी। मेरी काशी यात्रा के समय उनका भौतिक शरीर समाप्त हो चुका था, वे ब्रह्मलीन हो चुके थे। परन्तु उनकी अक्षय कीर्ति का समर और यशः शरीर का दर्शन मुझे अनेक बार करने का सुअवसर मिला।

कवि गणपति उपाधि के सम्बन्ध में कुछ नवीन विद्वानों ने निन्दास्तुति के सम्बन्ध में कुछ नयी सूचनाएं मुझे प्रदान की। काशी में वसन्त पंचमी सरस्वती पूजा के रूप में मनायी जाती है, इसके अनेक आयोजन पृथक–पृथक स्थानों पर विभिन्न रूपों में होते है। अभिनय और संगीत के अतिरिक्त दो विशिष्ट कार्यक्रम जिसमें जनता सबसे अधिक भाग लेती है धूमधाम से सम्पन्न होते है। उनमें प्रथम है कवि समाज हिन्दी के विशेष रूप से ब्रजभाषा और हिन्दी के पुराने कवियों के छन्दों का पाठ होता है। जो कोई विषय प्रस्तुत कर दिया जाता है निरन्तर उसी पर कवियों की रचनाएं प्रस्तुत की जाती है। इसका रूप ब्रजमंडल में चलने वाली पडन्त परम्परा जैसा होता है, उत्तरार्ध में स्वरचित कविताएं प्रस्तुत की जाती हैं फिर उनकी आलोचनात्मक चर्चा होती है।

विद्वानों में मुझे बताया कि ऐसी गोष्ठियों में कविता पाठ के क्रम में आचार्य शारदाचरण दीक्षित भी भाग लेते थे।

दूसरी परम्परा संस्कृत कविगोष्ठी की थी, इसमें तत्काल रचनाएं और अपनी ही पुरातन रचनाएं साथ–साथ चलती थी। इस प्रसंग की यह विशेषता होती थी कि कविता का पाठ सस्वर होता था, कवि उसे ऐसे प्रस्तुत करता था कि सामान्य जनता भी उसे समझ ले अर्थात भाषा की आलंकारिकता के साथ ही सहजता और सरलता अपरिहार्य थी। काशी के प्रसिद्ध विद्वान संस्कृत मर्मज्ञ और अनेक पीढ़ियों से संस्कृत की सेवा में समर्पित परिवारके विशिष्ट अंग पं0 मंगला प्रसाद पांडेय जो दैनिक "आज"

के सम्पादकीय स्तम्भ थे और जिनकी लेखनी का सिक्का सभी लोग स्वीकार करते थे, उन श्री पांडेय जी ने मुझे बताया कि एक बार संभवतः सन् 52 या 53 में वसन्तोत्सव पंचमी से पूर्णिमा तक चला और प्रत्येक दिन विभिन्न स्थानों पर गोष्ठियाँ होती रहीं, कुछ गोष्ठियों में हिन्दी और सस्कृत के अतिरिक्त भोजपुरी के कवि भी एक ही मंच पर भाग लेते थे। इस वर्ष की गोष्ठियों में श्री शिवप्रसाद मिश्र "रूद्र काशिकेय, आद्याप्रसाद त्रिपाठी, वेणीमाधव शास्त्री, शिव प्रसाद सिंह, आद्याप्रसाद ठाकुर, आद्या प्रसाद मिश्र, बलिया के रामविचार पांडेय, आजमगढ़ के डॉ0 जय कुमार मुदगल प्रिंसिपल डी.ए.बी. कालेज, डॉ किशोरी लाल गुप्त, इन्दु डिग्री कालेज जवानिया मुख्य रूप से भाग लेते थे। यह दल सर्वत्र प्रायः एक साथ ही पहुँचता था और इन गोष्ठियों में मंगलाचरण का कार्य एवं कहीं–कहीं अध्यक्षता आचार्य शारदाचरण दीक्षित करते थे। श्रीयुत् पांडेय जी ने मुझे बताया कि कवियों के इस गण में अग्रणी होने के कारण उन्हें कवगणपति कहा जाने लगा। आदरणीय पांडेय जी के निवास पर उपस्थित कुछ अन्य विद्वानों में जिनमें धरणीधर शास्त्री और अम्बिका प्रसाद का नाम उल्लेखनीय है ने बड़े विनोद के साथ कहा कि काशी भूतभावन भगवान् विश्वनाथ की नगरी है और शिव के आठ गण है (भेर आदि) जो दक्ष प्रजापति के यज्ञ का भी विध्वंस कर सकते हैं और किसी भी प्रकार के विनाश की लीला उनके द्वारा संभव हो सकती है अतः यह कविगणपति विरूद प्रधान है जिसमें स्तुति कम निन्दा अधिक है पर सामान्य व्यक्ति इसे स्तुति ही मानता है। इस प्रसंग में काशी की एक विशिष्ट परम्परा का उन लोगों ने उल्लेख किया, प्रथम तो भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के साथ "भारतेन्दु" उपाधि का। श्री हरिश्चन्द्र, हरिश्चन्द्र मैग्जीन और हरिश्चन्द्र पत्रिका नामक दो पत्रिकाएं निकालते थे उन्हीं दिनों एक घटना घटी–

हरिश्चन्द्र को "भारतेन्दु" की पदवी मिलने के सम्बन्ध में प्रायः एक घटना का उल्लेख किया जाता है। जम्बू के पंडित बाबूलाल शास्त्री ने अपनी व्यवस्था से कायस्थों को क्षत्रिय बनाया। इस बात पर हरिश्चन्द्र ने "जाति गोपाल की" शीर्षक से अपने मैगजीन में काशी के पंडितों की खिल्ली उड़ाई। पंडित रघुनाथ उनसे नाराज हुए और बोले : "आपको कुछ ध्यान नहीं रहता कि कौन आदमी कैसा है, सभी का अपमान किया करते हो। जैसे आप अपने सुयश से जाहिर हो उसी तरह भोगविलास और बड़ों के सम्मान करने से आप कलंकी भी हो, इसलिए आज से मैं आपको भारतेन्दु के नाम से पुकारूंगा। अन्यं उपस्थित सज्जनों तथा स्वयं हरिश्चन्द्र ने यह नाम बहुत पसन्द किया। उपस्थित सज्जनों में से पं0 सुधाकर द्विवेदी ने कहा पूरे चांद में कलंक दीख पड़ता है, आप दुइज के चाँद हैं जिसके दर्शन से लोग पुण्य समझते हैं। द्विवेदी जी की इस बात से सभी लोग अत्यन्त प्रसन्न हुए। इससे पहले राजा शिव प्रसाद को "सितारे हिन्द" की उपाधि भारत सरकार की ओर से मिल चुकी थी इसी समय के लगभग राजासाहब और हरिश्चन्द्र में कुछ विरोधसा हो गया था तथा वे भारत

सरकार के कोपभाजन बन गये थे। किन्तु दूसरी ओर वे जनता में अत्यधिक लोकप्रिय हो गये थे। इसलिए उन्हें "सितारे" (नक्षत्रों) से बढ़ाने का विचार जनता में उत्पन्न हुआ और 26 सितम्बर 1880 के "सारसुधानिधि" पत्र में पं0 रामेश्वर व्यास ने इस सम्बन्ध में अपना प्रस्ताव लेखरूप में प्रकाशित किया सारे देश ने उसे स्वीकार किया और तब से वे "भारतेन्दु" पुकारे जाने लगे।

कविगणपति के हीं प्रसंग में एक मनोरंजक कथा अथवा घटना काशी संस्कृत विश्वविद्यालय के दर्शन विभागाध्यक्ष– संस्कृत व्याकरण के सुप्रसिद्ध विद्वान जो मूलतः अलीगढ़ के निवासी और आचार्य शारदाचरण दीक्षित के निकट सम्बन्धी भी थे के द्वारा कुछ नये रूप में मुझे प्राप्त हुई। आचार्यवर ने मुझे बताया कि श्री पं0 सत्यनारायण शास्त्री जो उस समय आयुर्वेद के सबसे बड़े विद्वान थे, और संस्कृत के अग्रगण्य आचार्य और संरक्षकों में उनकी गणना होती थी। काशी नरेश डॉ0 विभूतिनारायण सिंह जो स्वयं संस्कृत में पी.एच.डी. थे। मान0 सत्यनारायण जी को गुरुतुल्य और अपना संरक्षक मानते थे। एक बार किसी उत्सव क्रम में एक विद्वत संगोष्ठी का आयोजन पं0 सत्यनारायण जी की अध्यक्षता में हुआ।

श्री शारदाचरण दीक्षित अपने दलबल के साथ वहाँ उपस्थित हुए थे। गोष्ठी का शुभारम्भ होने पर मंगलाचरण किससे कराया जाये यह समस्या उत्पन्न हुई। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के अनेक विद्वान अध्यापक एवं संस्कृत विश्वविद्यालय के आचार्य वहाँ उपस्थित थे। संस्कृत विश्वविद्यालय के प्रथम कुलपति विशिष्ट अतिथि के रूप में विराजमान थे। उन्होंने विनोदपूर्वक कहा कि गोष्ठी के प्रारम्भ में सरस्वती एवं गणेश वंदना दोनों ही होनी है। अतः शारदाचरण कविगणपति अपने नाम को सार्थक करते हुए मंगलाचरण करेंगे। बड़ी देर तक विद्वानों में अट्हास गूंजता रहा कि शारदाचरण और मंगलाचरण का कैसा सटीक प्रयोग है, और कविगणपति कवित्व के लिए गणपति की वन्दना कर अपने नाम और उपाधि को सार्थक बनायेंगे। आचार्य देवदत्तशर्मोपाध्याय ने बताया कि उसके बाद अधिकांश गोष्ठियों में मंगलाचरण पाठ आचार्य शारदाचरण दीक्षित ही करते थे। इसलिए उन्हें गणपति की वन्दना का कवि कहा गया था। माना गया और वे कविगणपति के नाम से प्रसिद्ध हुए।

जो भी हो इतना निश्चय है कि आचार्य शारदाचरण को कविगणपति का सम्मान काशी के विद्वत्त समाज ने दिया था और यह उक्ति प्रसिद्ध है कि– "काशी के पंडित का आशीर्वाद भी वरदान बन जाता है। इस प्रकार निश्चय ही आचार्य शारदाचरण दीक्षित ने कविगणपति विरूद को सर्वथा सार्थक किया।

कविगणपति के प्रसंग में ही मैंने आगरा के विद्वानों से सम्कर्प किया। अनेक ने तो उपहास में इस विषय को टाल दिया, कुछ ने व्यंग्य करते हुए कहा तुम भी अपने नाम के साथ लिखने लगो। और उन्होंने "मुखमस्तीति वक्तव्यम्

भारतेन्द्रु हरिश्चन्द्र : डॉ. लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय पृ0 26

दशहस्ताहरीतकी" कहकर अट्टास लगाया। विद्याधर्मवर्धिनी सभा के बैकुण्ठलाल गोस्वामी एवं प्रसिद्ध संस्कृत विद्वान पं० भूदेवप्रसाद शास्त्री ने एक नयी बात बतायी। रचना सदैव छन्दोबद्ध होती है, और छन्द मात्रिक और वर्णिक दो प्रकार के। मात्रिक छन्दों में रचना सामान्य मानी जाती है परन्तु वर्णिक छन्दों में व्यवस्था और निर्वाह का नियम कठिन होता है। ये वर्णिक छन्द गुरु और लघु आठ भागों में विभक्त हैं, जिन्हें गण कहा जाता है। इन आठ गणों का सम्बन्ध एक और तो शिव के आठ गणों से है दूसरी और आठ वसुओं से है। तन्त्र और योग के आठ चक्रों से है। और आयुर्वेद के अष्टवक और अष्टजीवनी से है। इस सम्बन्ध में आचार्य शारदाचरण दीक्षित के ज्येष्ठ भ्राता सुप्रसिद्ध आयुर्वेदज्ञ पं० अम्बिकाचरण दीक्षित ने बताया कि शरीर को सीधा रखने के लिए आठ स्थानों पर बल पड़ता है एक के भी निर्बल होने पर वहां लोच इत्यादि आ सकती है। आठों स्थान प्राभावित होने पर व्यक्ति आठ स्थानों से टेड़ा हो जाता है जिससे अष्टावक्र हो जाता है। रसशास्त्र में अष्टधातुओं की चर्चा है, और ज्योतिष में अष्टग्रह ही माने जाते हैं क्योंकि राहू केतु दोनों एक के ही दो भेद है। आचार्य शारदाचरण दीक्षित स्वयं आयुर्वेदाचार्य थे, आयुर्वेदीय रसशास्त्र एवं शरीर रचना शास्त्र, के अधिकारी विद्वान थे, ज्योतिष और रमलशास्त्र उनका पारिवारिक व्यवसाय था उनका इस पर अधिकार था। संस्कृत छन्दशास्त्र और पिंगल शास्त्र के वे विशेषज्ञ थे। काव्यप्रकाश, साहित्यदर्पण, के अधिकांश स्थल उन्हें कंठस्थ थे, अतः वे रचना में सदैव सावधान रहते थे। गणदोष अथवा यति एवं मात्रादोष के सम्बन्ध में वे कहते थे कि अशुद्ध पारा जिस प्रकार शरीर में विकार उत्पन्न कर देता है, इन दोषों से भी काव्य शरीर विकृत हो जाता है। पं० प्रयाग दत्त शास्त्री ने इसी आधार पर बताया था कि सर्वत्र काव्य जीवन छन्द चिकित्सा आदि में गणों की सम्यक् चिन्ता करने वाला गणपति नहीं तो और क्या है। इसीलिए वे गणपति कवि के रूप में प्रसिद्ध हुए और कविगणपति की उपाधि उन्हें प्राप्त हुई।

इस समस्त विवेचन के आधार पर मैं इस निष्कर्ष पर पहुंचता हूँ कि कोई एक विशिष्ट घटना विशिष्ट स्थान अथवा विशिष्ट संस्था का उल्लेख कविगणपति उपाधि के प्रदान के रूप में नहीं किया जा सकता है। परन्तु इतना निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि वे इस उपाधि के योग्य थे और उन्होंने इस उपाधि को सार्थक किया। पंडित राज दीक्षित आचार्य शारदाचरण दीक्षित के साथ कविगणपति अत्यधिक प्रसिद्ध हो गया था। कुछ लोग प्रशंसा में, कुछ उपहास में, कुछ निन्दा में और कुछ कुतूहलवश कविगणपति शब्द का प्रयोग उनके नाम के साथ अवश्य करते थे। मैं यह समझता हूँ कि निन्दा और स्तुति एक ही वस्तु के दो पक्ष हैं जो विरोधी होते हुए भी अविरोधी हैं। दिन और रात प्रकाश और अंधकार सृष्टि और प्रलय तथा निर्माण एवं विध्वंस के साथ एक दूसरे की आवश्यकता और अनिवार्यता है। यही सह अस्तित्व सृष्टिचक्र और लोकजीवन है। संस्कृत के आचार्यों ने इस रहस्य को पूर्ण रूप से समझा था। इसलिए व्याजस्तुति जैसे अलंकार की सृष्टि उन्होनें शताब्दियों

पूर्व कर दी थी। पंडित राजदीक्षित सम्मान के सम्बन्ध में यह कथन सटीक और सार्थक लगता है। आगरा मंडल में अवागढ़ राज्य और वहाँ की शासन परम्परा अनेक दृष्टियों से महत्वपूर्ण मानी जाती थी। हिन्दी के महान कवि जगन्नाथदास रत्नाकर, विक्रमादित्य और नूरजहाँ महाकाव्यों के लेखक, गुरूभक्त सिंह भक्त और काव्यशास्त्र के प्रसिद्ध आचार्य नवजीतजी अवागढ़ राज्य के अधिकारी रहे थे। अवागढ़ के तत्कालीन राजा राजा सूरजपाल सिंह ने अपने पिता राजा बलवन्त सिंह की स्मृति में आगरे में बलवन्त राजपूत विद्यालय की स्थापना की, जो अब उत्तर भारत का प्रमुख शिक्षा संस्थान है। और उसे उत्तर प्रदेश सरकार कृषि विश्वविद्यालय की मान्यता देने पर विचार कर रही है, इस विद्यालय की स्थापना के बाद इसका महाविद्यालयीय स्वरूप बनने पर प्रसिद्ध शिक्षाशास्त्री डॉ0 रामकरण सिंह इसके प्रिंसिपल बनकर आये। उनके आगमन के बाद एक किसी विशिष्ट कार्यक्रम में आगरा नगर के साहित्यकारों, समाज सेवियों, शिक्षाशास्त्रियों एवं विशेष नागरिकों को सम्मानित किया गया था। राजा सूरजपाल स्वयं उसके अध्यक्ष थे। आचार्य शारदाचरण दीक्षित अपने मित्रों के साथ पहुँचे और अग्रिम पंक्तियों के बाद पांचवी या छटी पंक्ति में स्थान मिला। उनका स्वाभिमानी ह्रदय इससे आहत हुआ, अपना नाम पुकारे जाने पर वे मंच पर गये और पहले संस्कृतमय गद्य में, उसके बाद संस्कृत के पांच श्लोक और हिन्दी की एक कविता सुनाई। पुनः आकर अपने स्थान पर बैठ गये। कार्यक्रम के लगभग अन्त में महाराज ने शारदाचरण दीक्षित को अपने पास बुलाया परन्तु उनका नाम स्मरण न रहने पर उनका पंडितराज दीक्षित कहकर उनका आह्वान किया। अपने गले का गुलाब का हार दीक्षित जी के गले में डालना चाहा, परन्तु उन्होंने उसे ग्रीवा तक न पहुंचने दिया हाथों में ले लिया। महाराज ने उन्हें अवागढ़ का राजपंडित बनने का अनुरोध किया। परन्तु अपमान की अप्रत्यक्ष ज्वाला में झुलसते हुए यह कहकर कि पंडितों के लिए राज्य का कोई महत्व नहीं है मैं पंडितराज हूँ राजपंडित होकर क्या करूंगा और संस्कृत की एक सूक्ति– ''गंगा तीर मपित्य जन्ति सलिलं ते राजहंसाः वयम्'' कहकर अपने स्थान पर ही नहीं लौटे, सभामंडप से ही बाहर चले आये। आगरा के तत्कालीन पत्रों ''आगरा पंच, दिवाकर और सैनिक'' ने अपने–अपने ढंग से प्रकाशित किया और यह घटना आगरा नगर में ही नहीं दूरस्थ मार्गों तक कवि के स्वाभिमान के रूप में दूरस्थ प्रसिद्ध हो गयी। और आचार्य शारदा चरण दीक्षित पंडितराजदीक्षित के नाम से प्रसिद्ध हो गये। वे स्वयं भी इस विरूद को बड़े सम्मान के साथ स्वीकार करते थे। वह समय क्रान्ति का समय था। स्वतंत्रता की अलख चारों ओर जग रही थी। सरकारी रायसाहब रायबहादुर, जैसे आदरसूचकों को लोग घृणा से देखने लगे थे। और उसके विरूद्ध महामना, लोकनायक, कर्मवीर, लोकमान्य जैसे जनता के द्वारा प्रदत्त सम्मान महत्वपूर्ण माने जाने लगे थे। अतः आचार्य शारदाचरण दीक्षित ने पंडितराज दीक्षित को ऐसा ही लोकसम्मान मानकर स्वीकार किया।

विभिन्न सम्मेलन, गोष्ठियों एवं परिषदों से सम्बन्ध –

शास्त्रार्थ एवं समाजय कर्म :– विद्वन्मण्डली एव पंडित समाज से कविगणपति मीमांसा केसरी, तर्क चूड़ामणि, प्रभृति उपाधियों को सार्थक करते हुए आचार्य शारदाचरण दीक्षित को शास्त्रार्थ सभाओं में अपने पांडित्य की कीर्तिपताका फहराने में ईषदपि श्रमाभास नहीं हुआ। सभाओं, गोष्ठियों, विद्वत्परिषदों एवं पण्डितमण्डलियों में उन्हें आदर और सम्मान के साथ बुलाया जाता था। आगरा, काशी, पटना, लखनऊ, दरभंगा, तिरूपति, दिल्ली आदि नगरों में आयोजित शास्त्रार्थ गोष्ठियों में दीक्षित जी ने अपने पांडित्य का समय समय पर प्रदर्शन किया।

काशी में नागपंचमी के दिन शास्त्रार्थ की सनातन परम्परा रही है। संवत 2021 में नागपंचमी के दिन सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय (तत्कालीन वाराणसेय सं0वि0वि0) के पाणिनि भवन में शास्त्रार्थ–चर्चा अष्टाध्यायी सूत्र क्रम को लेकर चल रही थी। काशी के विद्वान नव्य व्याकरण क्रम एवं अष्टाध्यायी क्रम को लेकर दो पक्षों में विभक्त होकर खण्डन मण्डन में लगे थे। क्रमप्राप्त आचार्य जी ने अष्टाध्यायी क्रम का पक्ष लेते हुए अपनी उपस्थिति का अंकन कराया। आचार्य जी ने पूर्व दिशा में उदीयमान उस सूर्य से अपना साम्य बताया जिसकी किरणें अभी–अभी मेघमाला से बाहर निकली हैं। वस्तुतः पूरब दिशा (काशी) में, पश्चिम का यह व्यक्तित्व अपना समग्र परिचय देने में सफल हो गया।[1]

विद्ववत सभाओं में किसी एक मत पर पहुंचना प्रायः दुष्कर कार्य होता है। आचार्य जी ने ऐसी ही एक सभा में कह डाला कि विद्वानों की गुणग्राह्यता समाप्त हो चुकी है यदि यह सभा अपनी तर्कना शक्ति को खो चुकी है तो फिर नीरक्षीर विवेकी हंस का कार्य सभाओं में कौन किया करेगा।[2]

शास्त्रार्थ विषयिणी धन लोलुपता का अभावा :– कतिपय विद्वान शास्त्रार्थ सभाओं में पाण्डित्य प्रदर्शन के लिये जाते है। तो कुछ विजिगीषु बनकर अर्थलिप्सा से भी जाते हैं। दीक्षित जी का इन गोष्ठियों में जाना केवल संस्कृत प्रचार प्रसार एवं काव्यशास्त्र विनोद के उद्देश्य को लेकर ही होता था। धनेषणा उन्हें कभी सन्तप्त

---

1 विजित्ययस्ते "भ्रमवारणं"रणम्।
व्यजिज्ञपत् शास्त्रपराक्रमं क्रमम्।।
पुनर्गभस्ते रिव सोऽभिलक्षितः।
चक्रास्तिलक्षक्षतदक्ष दीक्षितः।।
आचार्य शा. डायरी श्लोक 3 पृ0 सं0 32

2 व्यजीगणुण्यद्गुण्य गणेषुनिर्गुणम्।
व्यररस्त वंशस्थविधौ सदेऽसदम्।।
इयं सभा सत्सुहि चेत् असत्सुका।
न यत्र संज्ञागुण संधयस्तथा।।
आचार्य शा. डायरी श्लोक-3 पृ0 32

नहीं कर सकी थी। कभी–कभी तो सभाओं में अर्जित पुरस्कार राशि को विद्वत् सभा के सहायतार्थ ही सौंप आते थे।[1] मार्ग व्यय आदि भी अपने ही पास से वहन करते थे।

केवल विद्वानों को सम्मान दिये जाने के पक्षधर :– विद्वत सभाओं में प्रायः देखा जाता है कि अनीप्सित अविद्वान भी ''पण्डितमानी'' बनकर एकाधिकार सिद्ध करने को प्रयत्नशील रहते है। दीक्षित जी ने ऐसे लोगों की चिकित्सा तथा उपेक्षा करने की अपेक्षा की।[2]

असत् पुरूषों का सभा से बहिष्कार आवश्यक :– आचार्य जी का मत था कि जिन लोगों का शास्त्रार्थ एवं सभाकर्म में चंचु प्रवेश तक नहीं है उनसे संबंधों की पुनर्वीक्षा होनी ही चाहिये अन्यथा इन सभाओं का उद्‌देश्य पूरा ही नहीं होगा।[3]

शास्त्रार्थ मेधा के धनी :– आचार्य जी शास्त्रार्थ कला के पारंगत एवं सिद्धहस्त विद्वान थे। व्याकरण, मीमांसा, दर्शन आदि शास्त्रों के यशस्वी व्याख्याता के रूप में विद्वद्‌वर्ग उन्हें वरेण्य मानने को विवश हो ही जाता था। परिभाषेन्दुशखर, लघुशब्देन्दुशेखर, एवं खण्डनखण्डखाद्यम् के अनाघ्रात एवं अस्पृष्ट गूढ़ स्थलों की शास्त्रार्थ श्रृंखलाओं की परतों का जब दीक्षित जी अनावरण करते, तो विद्‌वान् दांतों तले उंगली दबा जाते। दीक्षित जी शास्त्रों के अर्थ का अनर्थ करने वालों को हल्की मधुर किन्तु गर्वोक्तिपूर्ण दुत्कार भी लगाते कि यदि आप लोगों में साहस हो तो अपने युक्ति संगत पक्ष को प्रस्तुत करो।[4]

आचार्य शारदाचरण दीक्षित के अनेक विश्रुत विद्ववानों से शास्त्रार्थ समायोजित हुये। काशी के महामहोपाध्याय पं0 राम प्रसाद त्रिपाठी, आचार्य पट्‌टाभिराम शास्त्री,

---

1. संसूचनं समधिगम्य सभास्वरूपम्।
   विश्लेषणं विदधते विषयानुरूपम्।।
   आकर्णयध्वमयरश्च यथानिकायम्।
   दायं ददे भगवते भवते सहायम्।।
   आ.शा. लिखित डायरी से पृ0 33
2. पूर्वं तु तत्र विचिकित्सयतां जनानाम्।
   नूनं चिकित्सय विकाशविधिव्रतानाम्।।
   ये शिक्षणेष्वभिमताः परिशिक्षणीयाः।
   मन्दास्तथैव मुखराः सपुपेक्षणीयाः ।। आ.शा. लिखित डायरी से पृ0 33
3. यावन्नशिष्ट परिशिष्ट विशिष्ट भावान्।
   सम्बन्ध यथ्व मुपहत्य वृथा ब्रुवाणान्।।
   तावत्ऽसद सद् सदत्व विवेचनाय।
   नोददेश्य मेष्यति यथा विधिनोदनाय।। वही : पृ0 33
4. यथा यथा शास्त्र पराक्रमं क्रमं।
   व्यमेध विज्ञान महत्त मंतमः।
   प्रकाशित गर्वित गौरवं रव
   तथोच्यतांवै यदि साहसंक्वचित्।। वही : पृ0 45

डॉ. कालिका प्रसाद शुक्ल, राजेश्वर शास्त्री द्रविण प्रभृति विद्वानों से दीक्षित जी के अनेक शास्त्रार्थ आयोजित हुये। उनके समकालिक विद्वानों ने यह स्वीकार किया है कि दीक्षित जी जय पराजय की दृष्टि से इन शास्त्रार्थों का मूल्यांकन न कर केवल सुरभारती की अपचिति लक्ष्य निर्धारित करते थे. यद्यपि उन्हें अपने शास्त्रज्ञान का आत्मगौरव था किन्तु दर्प नहीं। शास्त्रार्थ में पराजित हुये विद्वानों को वे और अधिक शास्त्रपरिश्रम करने का परामर्श देते थे।

वे शास्त्रार्थ पराजितों को अनर्गल प्रलाय न करने, तथा "मृषा पंडितं मान्यता" से दूर रहने का विमर्श दिया करते थे। अल्प ज्ञानको वे अल्पलोचन माना करते थे। शास्त्रार्थ में पराजितों को लज्जा का अनुभव तो होता ही है। आचार्य जी ऐसे लोगों को गले लगाने का प्रयास करते। ऐसे लोगों की कटु उक्तियों की उन्हें तनिक भी चिन्ता न होती थी।[1]

समकालीन वरिष्ठतम वद्वानों से वैचारिक आदान–प्रदान :–

आचार्य शारदाचरण दीक्षित अपने समय के अंगुलिगण्य विद्वानों में से थे। प्रथितयशा उद्भट्विद्वान, शास्त्रों के मार्मिक स्थलों की व्याख्या, जिज्ञासा की दृष्टि से श्रवणार्थ उनके पास सुदूर क्षेत्रों से आया करते थे। जिन विद्वानों से उनका निकट का सम्बन्ध था, उनमें डॉ0 रामकरण शर्मा, पं0 सदाशिव शास्त्री नीलकंठ, डॉ0 पारसनाथ द्विवेदी, सम्पूर्णानन्द वि0वि0, डॉ0 वाचस्पति उपाध्याय (सम्प्रति दिल्ली वि0वि0) डॉ0, राजकुमार जैन, डॉ0 हरिप्रसाद बागची, आचार्य भगवत स्वरूप मिश्र, डॉ0 बाबूराम त्रिपाठी आगरा, डॉ0 हरिदत्त शास्त्री कानपुर, डॉ0 सुरतिनारायण मणि त्रिपाठी कुलपति वाराणसी, प्रो0 विद्यानिवास मिश्र आगरा, डॉ0 मण्डन मिश्र कुलपति, श्री लालबहादुर शास्त्री केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ (मानित विश्वविद्यालय) एवं गाण्डीवम् (संस्कृत साप्ताहिक) के संस्थाक सम्पादक पं0 रामबालक शास्त्री से उनके आत्मीय सम्बन्ध रहे।

सम्प्रति दिल्लीस्थ श्री लाल बहादुर केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ मानित विश्वविद्यालय के रूप में विश्वविश्रुत संस्था बन चुका है। सन् 1968 में यह विद्यापीठ संस्कृत साहित्य सम्मेलन की देखरेख में चलता था। डॉ0 मण्डन मिश्र सम्मेलन के महामंत्री और विद्यापीठ के निदेशक थे। वे सम्मेलन के मुखपत्र संस्कृत रत्नाकर के संस्थापक, सम्पादक भी रहे। इतना सब कुछ होते हुए भी डॉ0 मण्डन मिश्र आचार्य

---

1. मृषाविषादाभिनयेऽल्प लोचनाः।
   निशम्य मै शास्त्रशरेरयस्मयं।।
   जयासरिददुर्गमनुप्रतीर्य ये।
   पुनः पुनर्भूरिवगुद गदन्तिमाम्।।

   डायरी से पृ0 46

2. कदाचित पत्र व्यवहारार्थ प्रयुक्त नामावलि स्मरणार्थ उनकी ही हस्तलिपि में पृष्ठ सं0 25 पर द्रष्टव्य।

शारदाचरण दीक्षित से वैचारिक ऊर्जा के आदान प्रदान के लोभ को संवरण नहीं कर पाते थे। यह वैचारिक आदान प्रदान कभी–कभी तो संस्कृत पत्र पत्रिकाओं में स्थान पा जाता था। इसका यह अर्थ कदापि न लिया जावे कि आचार्य जी का वैचारिक मतभेद उजागर होकर विद्वानों के सम्मान को ठेस पहुंचाता हो।

परामृष्ट विद्वान इस प्रक्रिया से आत्मशोधन, आत्मचिंतन एवं त्रुटि परिमार्जन करने को उद्यत रहते थे। ऐसे ही एक प्रकरण का उल्लेख करना यहां समीचीन होगा। वारासेय संस्कृत विश्वविद्यालय के कुलपति माननीय सुरतिनारायण मणि त्रिपाठी को लाल बहादुर शास्त्री केन्द्रीय विद्यापीठ द्वारा दिये गये अभिनन्दन पत्र में प्रयुक्त "सौवागतिकाभिनन्दनम्" पद की अव्याकरणता पर विद्यापीठ के निदेशक डॉ0 मण्डन मिश्र को उन्होंने परामर्श दिया कि यह पद व्याकरण की दृष्टि से त्रुटिपूर्ण, असंगत तथा सर्वथा दोषपूर्ण है।

<u>**सौवागतिक पद की असिद्धता :–**</u> आचार्य जी ने 18 मई सन् 1968 के साप्ताहिक पत्र गाण्डीवम् के द्वारा मिश्र जी को अवगत कराया कि अभिनन्दन पत्र में प्रयुक्त सौवागतिक पद का प्रयोग संस्कृत व्याकरण की दृष्टि से असिद्ध है। स्वागत शब्द से पाणिनीय सूत्र "न यवाभ्यां पदान्ताभ्यां पूर्वो तु ताभ्यामैच"[1] सूत्र से प्राप्त ऐच को "स्वागतादीनां च" वार्तिक निषध से ऐम् प्रत्यय न होने के कारण स्वागतिक शब्द ही निष्पन्न होता है न कि सौवागतिक।[2]

<u>**राजनैतिक पद दोष का दिग्दर्शन :–**</u> आचार्य शारदाचरण दीक्षित जी ने डॉ0 मण्डन मिश्र को– अभि प्रचण्ड पण्डित मार्तण्डमण्डिताः मण्डन मिश्र महाभागाः। सम्बोधन से सम्बोधित करते हुए परामर्श दिया कि कुलपति जी को प्रदत्त अभिनन्दन पत्र में प्रयुक्त राजनैतिक पद भी शुद्ध नहीं है क्योंकि राजनीति शब्द का अनुशतिकादि गण में पाठ न होने के कारण उभयपद वृद्धि नहीं हो सकती अतः केवल राजनीतिक शब्द ही व्याकरण सिद्ध है।[3]

<u>**शब्दाभावतापरामर्श :–**</u> दीक्षित जी ने मिश्र जी को विचार दिया कि विद्यापीठ के लोक विश्रुत विद्वानों का शब्द भण्डार कहीं सूखतो नहीं गया कि कुलपति सुरतिनारायण मणि त्रिपाठी तथा पूर्व कुलपति डॉ0 आदित्य नाथ झा (महामहोपाध्याय गंगानाथ झा, के सुयोग्य सुपुत्र वाराणसेय विश्वविद्यालय के पूर्व कुलपति एवं तत्कालीन उपराज्यपाल दिल्ली प्रदेश) को प्रस्तुत अभिनन्दन पत्रों में प्रयुक्त शब्दावली में साम्य एवं एकरूपता है। विद्वानों का शब्द सागर अथाह होता है, अतः अभिनन्दन पत्रों में प्रयुक्त पदावलि में पार्थक्य होना चाहिए।

---

1. अष्टाध्यायी : पाणिनि
2. साप्ताहिक गाण्डीवम् : 19–26 मई 1968 पृ0सं0 4 सं0पं0 रामबालक शास्त्री संस्कृत मुद्रणालय वाराणसी।
3. राजनीति शब्दस्य – अनुशतिकादिगण पाठाभावान्नोभय–पटवृद्धिरतः राजनीतिकः, न तु राजनैतिक :। वही पृ0 4

कविरत्न अमीर चन्द्र शास्त्री से वैचारिक आदान प्रदान :– आचार्य शारदाचरण दीक्षित अपने समकालीन विद्वानों के अग्रबन्धु थे। लालबहादुर विद्यापीठ दिल्ली के साहित्य विभागाध्यक्ष डॉ0 अमीर चन्द्र शास्त्री के पाण्डित्य से संस्कृत जगत के लोग सुपरिचित है। संस्कृत रत्नाकर के शिलान्यास अंक में भावोद्गार शीर्षक छन्दों में, एक श्लोक का अन्तिम पाद इस प्रकार था–

"तं. राजकल्पद्रुममद्भुतमाततान"

दीक्षित जी ने अमीर चन्द्र शास्त्री जी को परामर्श दिया कि आप कविरत्न हैं। विद्यावाचस्पति जैसी भारी उपाधि से समलंकृत है। अपाह्लतपाद में बसन्त तिलकावृत्त की संगति नहीं होती। वसन्ततिलकावृत्त में प्रतिपद में त गण, भ गण दो जगण और दो गुरु होते हैं। कविरत्न जी आपके इस चतुर्थपाद में दो तगण हो गये हैं। तथा गणदोष के कारण छन्दोभंग का दोष उपस्थित हो गया है।[1]

दीक्षित जी का विचार था कि जिस प्रकार सुनार की तुला आधेतिल के भार को भी सहन नहीं कर सकती, उसी प्रकार कानरूपी तराजू छन्द भंग को सहन नहीं करती।[2]

डॉ. वी. राघवन् को दृष्टावृत्ति दोष का वैचारिक अनुदान :– मद्रास वि. वि. का संस्कृत विभाग अपने विभागाध्यक्ष डॉ. वी. राघवन के वैद्वब्य के कारण विद्वानों में आदर का पात्र रहा है। राधवन महोदय षडंगवेदों के अप्रतिम विद्वान हैं। वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय के कुलपति डा. सुरति नारायणमणि त्रिपाठी को प्रदत्त भाव प्रसूनों में डॉ. राधवन् ने निम्नलिखित पादार्ध प्रस्तुत किया– "मद्रासाद्राघवों य सपदि सुरतिनारायणश्चेषं काश्या"

आचार्य दीक्षित ने राधवन महोदय को विमर्श दिया कि "यतिर्विच्छेदः" इस सूत्र के कारण सुरतिना पर विच्छेद होने के कारण रायण शब्द अलग–अलग पड़ जाता है। दीक्षित जी ने कहा कि श्रुति भी छन्दज्ञान से रहित कवियों को क्षमा नहीं करती।[3]

प्रार्थना मिश्रित वैचारिक अभिव्यक्ति :– दीक्षित जी छिद्रान्वेषी न थे। दुष्ट लोग दूसरों के दोष यदि सरसो के बराबर हों तो भी उन्हें देख लेते हैं किन्तु अपने दोष बिल्वफल के बराबर हों तो भी उन्हें वे नजर नही आते।[4]

---

1 अज कविरत्नानां वृत्तस्य चरमेपादे दौ त गणौस्तः । अतो ज गणदोषत्वम्।
गाण्डीवम् 16 से 26 मई 1968 पृ0 सं0 4

2 यथा न सहते कनकतुला तिलतुलितमार्धार्ध्येन।
तथा न सहते श्रवणतुला अपच्छन्दस्कं छन्दोभंगेन।।

3 योहना अविदितार्षेयच्छन्दो वेवतब्रह्मणेन मन्त्रेण याजयति
वाडध्यापयति वा स स्थाणुं वर्च्छन्ति गर्त वा पतति प्रमीयतेवा
पापीयान् भवंति, यातयामान्यस्यच्छन्दांसि भवन्ति।।
गाण्डीवम् 19–26 मई 1968

4 खलः सर्षप मात्राणि परच्छिद्राणि पश्यति।
आत्मनो बिल्वमात्राणि पश्यन्नपि न पश्यति।।

आचार्य जी का उद्देश्य अपने विचारों और परामर्शों से संस्कृत का परिमार्जन, परिशोधन, परिष्करण तथा व्यापक प्रचार प्रसार था। अपनी बात किसी को बुरी न लगे इसके लिए वे प्रार्थना और क्षमायाचना से चूकते न थे। विद्यापीठ के निदेशक डॉ. मण्डनमिश्र से उनकी यही अपेक्षा थी कि वे संस्कृत के हितेषी लोगों के अनुगामी cuā[1]

यह कहना अतिशयोक्तिपूर्ण न होगा कि दीक्षित जी के समकालीन विद्वान उनका मार्गदर्शन पाकर गौरव का अनुभव प्राप्त करते थे।

समकालीन वरिष्ठतम विद्वानों से वैचारिक आदान–प्रदान :– आचार्य शारदाचरण दीक्षित बींसवी शदी के ऐसे कालजयी हस्ताक्षरी हैं, जिनकी समता का दूसरा तदयुगीन एवं तादृशगुणगण सम्पन्न दूसरा संस्कृत विद्वान नहीं मिलता। उनके समकालीन विद्वान उनसे प्रेरणा व वैचारिक ऊर्जा प्राप्त करने को सदैव लालायित रहते थे। सुरभारती के समुपासकों में वैचारिक विद्युत प्रवाह के लिये वे विद्युतगृह के समान थे। वैचारिक आदान–प्रदान के लिये उनके द्वारा कभी अनावृत नहीं होते थे। उपलब्ध पत्र संग्रह के अनुसार जिन लब्धप्रतिष्ठ विद्वानों से उनका वैचारिक आदान–प्रदान हुआ उनकी नामावली प्रस्तुत करने का प्रयास किया जा रहा है। उपलब्ध पत्रों में कतिपय पत्र ऐसे भी हैं, जिनमें केवल सभा–स्थल एवं समय की संसूचना मात्र है, तो कुछ में विचारणीय विषय का संकेतग्रह भी है।

आगरा के विद्वान :– आचार्य पं0 हृषीकेश चतुर्वेदी, डॉ. जयकुमार मुद्गल, पं. ऋषिकेश भट्ट, श्रीराम शर्मा, श्री पदम सिंह शर्मा, श्री रोशन लाल गुप्त करूणेश, श्री देवी प्रसाद "दिव्य", श्री शान्ती प्रसाद पाठक, श्री गणपति चन्द्र, प्रो0 आम्बिका चरण सैण्ट जोंस कालेज आगरा, आचार्य हरिदत्त शास्त्री, श्री द्वारिका प्रसाद द्वारिकेश, श्री प्रयागदत्त शास्त्री, श्री फूल सिंह नीरव, श्री तोतासिंह "पंकज", पं0 हरिशंकर शर्मा, डॉ0 दयाशंकर शर्मा, श्री घनश्याम अस्थाना, डॉ0 श्याम सुन्दर दीक्षित, कविवर सोम ठाकुर, पं0 कैलाश चन्द्र मिश्र, प्रभृति आगरा के विद्वानों से दीक्षित जी का वैचारिक आदान प्रदान विविध विषयों के आलोचन विलोचन, विचार विमर्श एवं परामर्श को लेकर सम्पन्न हुआ।

फिरोजाबाद :– फीरोजाबाद नगर चूड़ी उद्योग के कारण सौभाग्य नगरी के नाम से जाना जाता है। वहीं इस नगरी ने संस्कृत की अपार सेवा की है। इनमें से दीक्षित जी के साथ जिन विद्वानों की भेंट एवं वैचारिक आदान प्रदान होता रहा उनमें आचार्य रामचरण जी दीक्षित प्रधानाचार्य हनुमत् संस्कृत महाविद्यालय फिरोजाबाद, डॉ0 गया

---

1. अतो खिलभारत वर्षीय संस्कृत साहित्य सम्मेलन सम्मान संरक्षणाय, विद्यापीठ व्ययगत प्रतिष्ठा प्रतिष्ठापनाय केषामपि शास्त्रज्ञानैकशरणाना गुरूचरणानामन्ते वासित्वमधि गम्यानुशासनित्वमर्थापयितुमध्ययन मलंकुर्वन्त्वित्येषा मदीया प्रार्थना।

गाण्डीवम् सन् 1968 पृ0 5

प्रसाद उपाध्याय (श्री रामचन्द्र स्नातकोत्तर महा. फिरोजाबाद, पं. बनारसी दास चतुर्वेदी प्रसिद्ध प्रत्रकार) एवं रामजीलाल वैद्य, श्री सुनहरी लाल शर्मा, श्री जगन्नाथ प्रसाद वैद्य, श्री कृष्ण कुमार कुसमाकर, ओंकार मिश्र प्रणव, श्री हरस्वरूप, आचार्य जयनारायण शर्मा, आचार्य रामदत्त शर्मा आदि का नाम प्रमुख है।

हाथरस :– हाथरस नगर संस्कृत एवं संस्कृति से पूर्णतया परिचित नगर है। हाथरस नगर के वे संस्कृत विद्वान जिनका दीक्षित जी से सम्पर्क रहा उनमें प्रमुख हैं– आचार्य रघुवीर प्रसाद त्रिवेदी (प्रसिद्ध आयुर्वेदविद्वान) श्री ओंकार दत्त, श्री निर्भय "हाथरसी", डॉ. प्रदीप, हास्यरस सम्राट श्री काका हाथरसी प्रमुख है।

अलीगढ़ :– अलीगढ़ नगर कें वे विद्वान जिन्हें दीक्षित जी से वैचारिक सम्पर्क करने का सुअवसर मिला उनमें अलीगढ़ विश्वविद्यालय के संस्कृत विभागाध्यक्ष पं0 रामसुरेश त्रिपाठी, पं0 परमानन्द शास्त्री, श्री मनोहर लाल गौढ़ (धर्म समाज कालेज) डॉ. रवीन्द्र "भ्रमर", डॉ. गोवर्धन नाथ शुक्ल (अ.मु.वि.), डॉ. के.सी. भाटिया, डॉ. त्रिलोकी नाथ शुक्ल, श्री रमेश चन्द्र शुक्ल (वा.महा.वि.) आदि का नाम प्रमुख है।

नरवर के विद्वानों से विचार–विमर्श :– श्री सांगवेद सं.म.वि. नरवर बुलन्दशहर जनपद में पुण्यतोया भगवती भागीरथी के तट पर स्थित प्रसिद्ध संस्कृत संस्थान है। नरौरा के प्रसिद्ध परमाणु ऊर्जागृह के समीप स्थित यह विद्यालय अनेक दशकों से अपनी संस्कृत सेवा के लिये विश्वविश्रुत है। आचार्य शारदाचरण जी का इस संस्कृत विद्यालय से गहरा भावात्मक संबन्ध रहा।

अनुसन्धित्सु को अनेकों बार इस विद्यालय के प्रागंण में दीक्षित जी के दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। नरवर विद्यालय के विद्वानों आचार्य विजय प्रकाश शर्मा, पं. बांकेलाल त्रिवेदी (प्रसिद्ध नैयायिक) उद्भट वैयाकरण पं. रामजीत उपाध्याय, पं. शिव प्रसाद वा. (साहित्य विभागाध्यक्ष) आचार्य शिवदत्त शर्मा व्याकरणाचार्य, पं. रामचैतन्य मिश्र प्रभृति संस्कृत विद्वानों से सम्पर्क रहता था।

कानपुर के विद्वानों से वैचारिक विमर्श :– कानपुर के विद्वानों में श्री मुन्शीलाल शर्मा, श्री रामस्वरूप सिंदूर, शास्त्रजयी आचार्य चन्द्रशेखर शास्त्री एवं तदनुज आचार्य बैकुण्ठलाल शास्त्री, पं. कौशल चन्द्र बृहस्पति, श्री विश्वनाथ गौढ़, श्री बिहारी "कंटक", प्रभृति विद्वानों से दीक्षित जी का सम्पर्क रहा।

लखनऊ की विद्वत् मण्डली से :– लक्ष्मणपुर के विद्वानों से दीक्षित जी का सघन सम्पर्क का प्रमुख कारण उत्तर प्रदेश संस्कृत अकादमी रहा। अकादमी में दीक्षित जी का आना जाना प्रायः बना ही रहता था। अखिल भारतीय संस्कृत परिषद महात्मा गांधी मार्ग दीक्षित जी भाग लेते थे। इन गोष्ठियों में दीक्षित जी का सम्पर्क डॉ. सुरेन्द्र नाथ द्विवेदी, आचार्य प्रभाकर पाण्डेय, श्री नरेन्द्र नाथ शास्त्री, डॉ. दयाशंकर बाजपेयी आदि विद्वानों से हुआ। ये विद्वान दीक्षित जी से पत्र व्यवहार कर वैचारिक संबंधों को बनाये रखते थे।

मथुरा वृन्दावन के विद्वानों से :– आचार्य शारदाचरण जी श्रावणभाद्रपद मास में मथुरा वृन्दावन अवश्य पधारते थे। वृन्दावन की रासलीला का वे तन्मय होकर रसास्वादन करते थे। वृन्दावन–मथुरा के विद्वान दीक्षित जी का स्वागत सत्कार करने को लालायित रहते थे। इन विद्वानों में भागवताचार्य द्वारकेश सं० विद्यालय के प्रधानाचार्य पं. श्री श्रीवर शास्त्री, सप्ताचार्य डॉ. वासुदेव कृष्ण चतुर्वेदी डी.लिट्, श्री वंशीधर शास्त्री, (माथुर चतुर्वेद सं.वि. मथुरा) श्री रामादर्श पाण्डेय (प्रधा.रंगलक्ष्मी सं.वि. वृन्दावन), प्रो० जयकुमार मुदगल (प्रधानाचार्य), पं. चक्रपाणि शास्त्री, आचार्य वनमाली शास्त्री, गुरु गंगेश्वरानन्द जी महाराज, रघुनाथ प्रसाद चतुर्वेदी, स्वामी अखण्डानन्द जी महाराज का नाम प्रमुख है।

चतुर्थ अध्याय

आचार्य शारदाचरण दीक्षित की प्रमुख कृतियाँ

कृतित्व :– श्री दीक्षित के व्यक्तित्व एवं वैद्वष्य का प्रतिबिम्बन उनकी कृतियों में स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। सरस्वती साधना में अनवरत लीन उनकी लेखनी से ऐसे ग्रन्थों का प्रणयन हुआ जिन्हें देखकर उन्हें आधुनिक कालिदास कहा जाए तो अत्युक्ति न होगी। उज्जैन के महाकुम्भ पर्व 1968 में संस्कृत विद्वत् सम्मेलन में मंचस्थ विद्वानों ने उनकी कृतियों से प्रभावित होकर उन्हें अभिनव कालिदास की मानद उपाधि से विभूषित किया था।

कृतियों का संक्षिप्त परिचय :– श्री दीक्षित द्वारा लिखित तीन ग्रन्थ इस समय प्रकाश में है। इनमें से एक ग्रन्थ ही उनके वैदुष्य के प्रकाशन में पर्याप्त है। संक्षेप में उनका परिचय इस प्रकार है–

1. मेघदूतोत्तरार्द्धम् :– कवि गणपति की यह रचना महत्वपूर्ण है। स्वप्रकाशित आस्थानी नामक संस्कृत मासिक पत्रिका के जून 1965 के अंक में यह कृति प्रकाशित (मुद्रित) हो चुकी है। इसमें मेघदूत के अस्पृष्ट एवं अवशिष्ट अंश को पूरा किया गया है, ग्रन्थारम्भ में इस तथ्य को इस प्रकार संसूचित किया गया है–

"अथ महाकवि कालिदासा दवशिष्टं कविगणपति प्रणीतं मेघदूतोत्तरार्द्धम्"

मन्दाक्रात्ता 151 छन्दों में निबद्ध यह रचना अत्यन्त रोचक है।

2. पाकचरितम् :– सन् 1971 में हुए भारत पाक युद्ध का सजीव चित्रण श्री दीक्षित ने पाकचरितम् में किया है। इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा आदि 103 श्लोकों में लिखित इस काव्य में पाकिस्तान पर भारत की विजय, बांग्लादेश का उदय एवं शेख मुजीबुर्रहमान द्वारा बांग्लादेश की सत्ता प्राप्ति का मनोरम चित्रण "पाकचरितम्" में हुआ है। पाकिस्तानी शासकों की कुटिल मनोवृत्ति का इस काव्य में सहज चित्रण हुआ है।

अमर शतकम् :– जैन सन्त अमर मुनि के जीवन चरित्र को लेकर एक सौ श्लोकों में निबद्ध यह काव्य श्री दीक्षित के सर्वधर्म समभावता, बहुग्यता एवं उनके पाण्डित्य का परिचायक है। इस ग्रन्थ में शिखरिणी छन्द का मनोरम प्रयोग पाठक के मन को आकृष्ट करने में पर्याप्त है।

मेघदूत उत्तरार्द्धम्

रचनाकाल :– श्री दीक्षित ने मेघदूत उत्तरार्द्धम् की रचना बीसवीं शताब्दी के सातवें दशक में हुई। इसका प्रथम प्रकाशन जून सन् 1965 में आस्थानी पत्रिका के प्रथम अंक मे हुआ। इस पत्रिका के सम्पादक एवं प्रकाशक तथा स्वत्वाधिपति स्वयं कवि गणपति दीक्षित रहे। आस्थानी का प्रकाशन मोतीकटरा नामक स्थान पर होता था।

परिमाण :– मेघदूत उत्तरार्द्धम् 151 पद्यों में निबद्ध रचना है। प्रत्येक छन्द के

चार–चार चरण है।

प्रकाशन :– पूर्व में ही निवेदन किया जा चुका है कि प्रस्तुत खण्डकाव्य का मुद्रण स्वयं आचार्य श्री ने अपनी मासिक पत्रिका आस्थानी के प्रथम अंक में कराया था। साहित्यिक एवं व्याख्यादृष्टि से इस ग्रन्थ का प्रकाशन अद्यावधि नहीं हुआ है।

कांग्रेस वैभवम् :– "कांग्रेस वैभवम्" आचार्य शारदा चरण दीक्षित की अमरकृति है। आचार्य प्रवर कांग्रेस को गांधी से और गांधी जी को कांग्रेस से पृथक न देख सके थे। कदाचित् वे इसी उहापोह में रहे हो कि इस कृति का नाम "गांधी चरितम्" रखा जाये या "कांग्रेस चरितम्"। यही कारण है कि पाण्डुलिपि के कतिपय पृष्ठों पर दोनों शीर्षकों का उल्लेख है। सत्य के धरातल पर यदि देखा जाये तो स्वाधीनता संग्राम के ये वे दिन थे जिनमें कांग्रेस और गांधी एक दूसरे के पूरक नहीं अपितु पर्याय बन गये थे।

स्फुट निबन्धः– आचार्य शारदाचरण दीक्षित विद्वान कवि होने के साथ–साथ उच्च कोटि के निबंधकार भी थे। उनके निबंधों में साहित्यिक, दार्शनिक, सामयिक, राष्ट्रीय एवं सार्वभौमिक चेतना के दर्शन होते है। इन निबंधों में आलोचनात्मकता और कहीं कहीं गवेषणात्मकता निबंध की आत्मा के रूप में परिलक्षित होती है सम्प्रति कुछ निबंधों का दिग्दर्शन कराना अभीष्ट होगा।

संस्कृत भाषा :– आचार्य जी का यह निबंध आचार्य जी की हस्तलिपि में उपलब्ध है। प्रस्तुत निबंध के माध्यम से आचार्य जी ने संस्कृत भाषा के पौर्वापर्य वैशिष्ट्य का उत्कर्षतापादक वर्णन किया है। आचार्य जी का विचार है कि पुरातन काल में संस्कृत भाषा लोकभाषा थी। निम्नस्तरीय अशिक्षित जन भी संस्कृत भाषा में ही वार्तालाप करते थे। आचार्य जी को हार्दिक क्षोभ रहा कि स्वाधीनतोत्तर भारत में हमारे देश के नेताओं ने संस्कृतोद्धार के लिए प्रलाप तो बहुत किया किन्तु संस्कृतज्ञों की उपेक्षा करके वे इसका मूलोचछेद करने के भी उत्तरदायी है।

दीक्षित जी के विचार में संस्कृत के विज्ञजन अगर उपेक्षित होते रहे तो भारतवर्ष इस निधि से वंचित होकर अवनति की ओर चला जायेगा। आचार्य जी का अमूल्य सुझाव है कि राष्ट्रभाषा हिन्दी के लिए आन्दोलनरत लोग अपने कर्तव्य को समझाते हुए संस्कृत और संस्कृतज्ञों की रक्षा के लिए व्यवस्था करें। अप्राप्त को प्राप्त करने के प्रयास के साथ ही प्राप्त की रक्षा भी अत्यावश्यक है। विभिन्न भारतीय भाषाओं के क्षेत्र में चलने वाला विवाद आचार्य जी के मतानुसार संस्कृत छाया में आकर स्वयं शान्त हो जायेगा।

निबंध की अविकल पाण्डुलिपि की छायाप्रति अग्रिम पृष्ठों पर द्रष्टव्य हैं–

निबंध नाम से जिस साहित्यविधा की प्रतीति करायी जाती है, वह वास्तव में लैटिन में "एग्नायर" फेंच के "एसाई" और अंग्रेजी के "एस्से" का पर्यायवाची है। शाब्दिक दृष्टि से पाश्चात्य और भारतीय शब्द भिन्न भिन्न अर्थ देते हैं। फ्रेंस "एसाई"

या अंग्रेजी "एस्से" का अर्थ है प्रयत्न, प्रयोग, अथवा परीक्षण। अर्थात् अभीप्सित विषय के प्रतिपादन या परीक्षण का प्रयत्न। यूरोप में निबंध के जन्मदाता मोन्तेन ने इस शब्द का इसी अर्थ में प्रयोग किया था। निबंध (नि + बंध) का अर्थ बांधना, संग्रह आदि है। अर्थात् किसी विषय को बांधना। इस प्रकार भारती दृष्टि से निबंध उस रचना को कहा जाता है जिसमें विचारों या विषय का तारतम्यपूर्ण संगठन हो।

"निबंध स्वाधीन चिंतन और निश्चित अनुभूतियों का सरस, सजीव और मर्यादित गद्यात्मक प्रकाशन है।"[2]

बाबू गुलाबराय ने निबंध की विशेषताओं का समाहार करते हुए इससे अधिक व्यापक परिभाषा दी है–

"निबंध उस गद्य रचना को कहते हैं जिसमें एक सीमित आकार के भीतर किसी विषय का वर्णन या प्रतिपादन एक विशेष निजीपन, स्वछन्दता, सौष्ठव और सजीवता तथा आवश्यक संगति और सम्बद्धता के साथ किया गया हो।[3]

मानव जीवनं धर्मश्च :– आचार्य शारदाचरण दीक्षित द्वारा लिखित यह निबंध दार्शनिक निबंध की कोटि में आता है। मानवजीवन की असारता एवं उसमें धर्म के सम्मिश्रण की उपादेयता का दिग्दर्शन कराना निबंधकार का प्रमुख लक्ष्य रहा है। यह निबंध भी आचार्य जी की हस्तलिपि में उपलब्ध है। आचार्य जी का विचार है कि इस संसार में कालचक्र के चलते जन्म और मरण की प्रक्रिया सततजारी है। घोर मोहान्धकार से आच्छन्न दृष्टि वाले मूढ़ अपना नाश जानते हुए भी धर्म का अवलम्बन नहीं लेते, कितने आश्चर्य की बात है। इस संसार में दृश्यमान जगत् नाशवान् है जीवन नियत कालिक है, धर्म ही प्राणी का सच्चा मित्र है। पंचतत्व को प्राप्त होने के बाद पुत्र कलत्र साथ नहीं देते।

आचार्य जी ने इस निबंध में धर्म की अनिर्वचनीयता नैकमतता, नैकधारा प्रवहणता एवं गतानुगतिकता का अपवृहण किया है। आचार्य जी ने धर्म को षड्विध बतलाया है वर्ण्य धर्म, आश्रम धर्म, वर्णाश्रम धर्म, गुणधर्म, निमित्त धर्म और साधारण धर्म। मनु के द्वारा निर्दिष्ट साधारण धर्म के दस भेद हैं।[4]

गीता में विनिर्दिष्ट धर्म का परित्याग भगवान श्री कृष्ण ने भी अनुचित कहा है।[2]

---

1. साहित्यिक निबंध : डॉ. कृष्णदेव झारी : पृ0 208
2. हिन्दी निबंधकार : जयनाद नलिन : पृ0 208
3. काव्य के रूप : पृ0 255 बाबू गुलाब राय।
4. घृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रिय निग्रहः।
   धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम् ।। मनुस्मृति ।।
5. श्रेयांन् स्वधर्मोविगुणः परधर्मात्सुनिष्ठितात्।
   स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मोभयावहः ।। गीता ।।

स्त्रीणां कीदृशी शिक्षाऽपेक्ष्यते :– स्त्रियों को कैसी शिक्षा दी जाये ? यह विचारात्मक निबंध सामाजिक एवं सामाजिक निबंध की श्रेणी में आता है। आचार्य जी की बहुमुखी प्रतिभा, प्रतिपाद्य विषय का कितना आलोडन कर सकी है इसका निर्णय तो सुधीजन ही करेंगे किन्तु इतना निश्चय है कि भारतीय नारी प्रज्ञा समस्त आर्य ग्रन्थों में गुम्मित है। संस्कृत साहित्य में नारी को सर्वोच्च पद पर आसीन किया गया है, तभी तो तैत्तिरीयोपनिषद में आचार्यकृत शिष्योपदेश अवसर पर सबसे पहले– "मातृदेवो भव" का उपदेश है। कविकुल गुरु कालिदास ने स्त्री को सचिव, सखा आदि शब्दों से अभिहित किया है।[1]

मनुस्मृति में स्त्रियों के आधार, विचार, आहार, व्यवहार आदि का स्पष्ट उल्लेख है। मनुजी ने सहशिखा को भारतीय मर्यादा के विरूद्ध मानते हैं।[2]"

शारदाचरण दीक्षित की विचारसरणि स्त्रियों को शिक्षा देने की तो है किन्तु इसका रेखांकन परमावश्यक है। उन्हें धर्म, सन्तति, शिल्प, आयव्यय, स्वास्थ्य, संगीत, पाकशास्त्र इत्यादि की शिक्षा अवश्य दी जानी चाहिए।[3] आचार्य शारदाचरण दीक्षित कृत यह समस्या प्रधान निबंध उनकी ही पांडुलिपि में उपलब्ध है।

कालिदासस्य जन्मभू :– महाकवि कालिदास संस्कृत साहित्य के ऐसे कवि हैं जिनकी समता वाला कवि आज तक उत्पन्न ही नहीं हुआ, ऐसे कविकुलगुरु की जन्मभूमि का निश्चय करने में आज भी विद्वान एकमत नहीं है।

आचार्य शारदाचरण दीक्षित ने सदियों से चले आ रहे इस विवाद के सभी आयामों को छूने का सफल प्रयास किया है। आचार्य जी का विचार है कि संस्कृत साहित्य के इस अग्रगण्य महाकवि को अपने–अपने प्रान्त का बता कर तज्जन्य गौरव को प्राप्त करने का लोभ विद्वानों को रहा है। अपने मत के अनुरूप वैसी ही सामिग्री कालिदास कृत काव्यों से जुटा जुटाकर विद्वानों ने अपने मत का समर्थन किया।

बंगदेशवासी विशेषकर काली देवी को पूजते हैं। अतः अपने पक्ष में वे महाकवि के नाम का उपयोग करते हैं। उनक मत है कि मुर्शिदावाद जिले के गंगासिंगरू नामक नगर में कालिदास का जन्म हुआ। उस नगर में कालिदास की स्मृति में एक संस्कृत पाठशाला भी स्थापित है। इसी प्रकार कुछ लोग विदिशा का निवासी सिद्ध

---

1. गृहिणी सचिवः सखी समाः प्रिय शिष्याललिते कलाविधौ।
   करूणाविमुखेन मृत्युना हरता त्वं वद किं नमे हृतम्।। रघुवंश : कालिदास।
2. धृतकुम्भ समानारी तप्तांगार समः पुमान्
   तस्मात् घृतं च वहिनं च नैकत्र स्थापयेत् बुधः।। मनुस्मृति : मनुमहाराज।।
3. धर्म सन्तान शिल्पाय व्यय स्वास्थ्यविधौ तथा।
   संगीतकान्त पाकादौ स्त्रीणां शिक्षा विधीयते।।
   (आचार्य जी के निबंध से अवतरित)

करते है। मेघदूत में विदिशा का वर्णन बाहुल्येन हैं।[1] कुछ विद्वान कालिदास को मैथिल मानते हैं। उनका विचार है कि दरभंगा जनपद के अन्तर्गत उच्चपीठ नाम के नगर में भगवती दुर्गा का मन्दिर है वह चिरकाल से कालिदास पीठ के नाम से कहा जाता है। कुछ विद्वान मेघदूत काव्य में उज्जयिनी के वर्णन वैशिष्ट्य को लेकर उन्हें उज्जैन का मानते हैं।[2]

आचार्य जी ने उन विद्वानों के मत से सहमति व्यक्त की है जो कालिदास की जन्मभूमि कश्मीर मानते हैं। इस पक्ष में उन्होंने अनेक अकाट्य प्रमाणों का उपस्थापन किया है।

काल :– प्रस्तूयमान निबंध "कालः" वाराणसी से प्रकाशित संस्कृत साप्ताहिक गाण्डीवम् के 13 जुलाई सन् 1975 के अंक में प्रकाशित हुआ था। वस्तुतः सम्पूर्ण जगत कालाधीन ही है। कालक्रमानुसार ही वसन्तादि ऋतुएं दिन रात महीना, वर्ष तथा युग युगान्तर एवं आते जाते है।

आचार्य शारदाचरण जी ने इस निबंध को ज्योतिष, तन्त्रशास्त्र एवं आयुर्वेद शास्त्र के बिन्दुओं को लेकर लिखा है। निबंध की वैज्ञानिकता, वैचारिक निकष पर आकर स्फूर्त हो उठती है।

सर्वप्रथम आचार्य जी ने काल को आयुर्वेद के आचार्य सुश्रुत के शब्दों में उदाहृत किया है।[3]

वस्तुतः जो भूत (अतीत) का संकलन कर सके उसे ही काल कहते है। आचार्य जी ने काल को तन्त्र की कसौटी पर भी खरा पाया है।[4] तन्त्र के अनुसार यह विश्व जैसा पहले कभी था आज की तिथि में वह वैसा ही है। ज्योतिषशास्त्र काल का ही नियामक, निर्धारक तथा व्यवस्थापक है। सूर्य, चन्द्र एवं नक्षत्र इस काल के विभाजक है। दिन तथा रात्रि एवं ऋतुओं का परिवर्तन इनके चलन से प्रभावित एवं भावित होता है। चलनकला इन तेज पुंजों की संचालिका है जिसे कोई प्रकृति नहीं तो कोई ईश्वरीय शक्ति के नाम से अभिहित करता है। आचार्य जी के इस निबंध की प्रासंगिकता आज भी बनी हुई है। प्रकाशित निबंध का टंकित रूप प्रस्तुत करते हुए इसके और अधिक समीक्षण एवं चिन्तन की अपेक्षा करना अव्यावहारिक न होगा।

---

1. तेषां दिक्षुप्रथितविदिशालक्षणां राजधानीं। मेघदूत : कालिदास
2. वक्रः पन्था यदपि भवतः प्रस्थितस्योत्तराशाम्।
   सौधोत्संगो प्रणयविमुखो मास्मभूरूज्जयिन्याः।।

   मेघदूत : कालिदास
3. कालोहिनाम भगवान स्वयम्भूरनादिमध्यनिधनः तस्य संवत्सरात्मनो भगवानादित्यो गति विशेषेणाक्षिनिमेषाकाष्ठाकलामुहूर्त्ता होरात्रपक्षमासर्त्वयन संवत्सरयुग प्रविभागं करोति इति सुश्रुताचार्य :।

   निबंध शीर्षक "कालः" से उद्धृत/पृ0 5
4. तंत्रे पि महदाछिगुणान् यः परिणामयति सः कालो महदादिगुण परिणामस्वभावः । वही पृ0 ६

विविध स्तोत्र :– स्तोत्र साहित्य का स्थान आर्ष साहित्य में महत्वपूर्ण है। भूतल पर जब से प्राणी का जन्म हुआ, तबसे स्तुति का प्रचलन हुआ। मानवेतर प्राणी भी मूक भाषा में अथवा अपनी अव्यक्त ध्वनि से एक दूसरे को मनाते तथा स्तुति करते देखे जा सकते है। पक्षी चंचुमेलन से, पशु श्रंगकण्डूयन से, कुछ इसी प्रकार का भाव व्यक्त करते हैं। मनुष्य जाति ही नहीं अपितु देवगण भी स्तुति को अंगीकार करने में पीछे नहीं रहे है।

"स्तोत्रं कस्य न तुष्टये" इस वचन के अनुसार विश्व में ऐसा कोई प्राणी नहीं है जो स्तुति से प्रसन्न न हो जाता हो। राजनीति के चार अंगों, साम, दाम, दण्ड, भेद में साम (स्तुति) की गणना सबसे पहले की गयी है। साम या स्मृति के द्वारा राक्षस आदि भयंकर सत्व भी वशीभूत हो जाते है। पुराणों में स्तोत्र को पापों का नाश करने वाला तथा प्रायश्चितत का साधन बताया गया है।[1]

स्तोत्र कष्टों का निवारक होता है, तथा प्राणी ईशकृपा का पात्र होता है।[2]

एतत्, स्तुति, नुति, प्रणामादि, स्तोत्र के अपर पर्याय हैं।[3] पाणिनीय व्याकरण के अनुसार अदादिगण की उभयपदी स्तुत्यर्थक, "स्टुण्" धातु से "दाग्नीशसयुयुजस्तुतुद सिसिचमिहपतदशनहः करणे" सूत्र 4 से ष्ट्रन प्रत्यय करके स्तोत्रं शब्द निष्पन्न होता है।

आचार्य शारदाचरण दीक्षित ने संस्कृत साहित्य की इस विधा को नया आयाम देने का स्तुत्य प्रयास किया। जैसा कि उनके जीवन परिचय से स्पष्ट किया जा चुका है आचार्य जी आयुर्वेद के निष्णात विद्वान थे। चिकित्साकर्म में उनकी ख्याति सुदूर तक फैली हुयी थी। कर्मव्यापृति के अनुसार आचार्य जी भगवान धन्वन्तरिकी स्तुति करने से भला क्यों चूकते। भगवान् धन्वन्तरि के अतिरिक्त आचार्य जी ने मर्यादा पुरूषोत्तम भगवान श्री राम के स्तवन में रामाष्टकम् स्तोत्रम् की रचना की है। दोनों स्तोत्रों का दिग्दर्शन इस प्रकार है–

धन्वन्तरिस्तोत्र :–

प्रागमृतादवततार तरस्तरन्तम्
सर्वाश्रियावृत पदार्थ चतुष्टयन्तम्
धन्वन्तरिर्हिमनुजेषु कथं ससार
सन्दर्शयन्निह कविः कवितां चकार।।1।।
विष्टम्भितः प्रसभसंभवमीक्ष्यमाणः

---

1. तस्मात् सर्वप्रयत्नेन स्तोत्रं सर्वाघनाशनम्।
   प्रायश्चितमघौघानां पठितव्यं नरोत्तमैः ।। पदमपुराण : पाताल 88 : 91
2. संकष्टनाशनं स्तोत्रमतेद्यस्तु पठेन्नरः।
   सकदाचिन्न संकष्टैः पीड्यते कृपया हरेः।। पदमपुराण : उत्तर 100–5
3. स्तवः, स्तोत्रं स्तुतिर्नुतिः।। अमरकोशः शब्दादिवर्ग : श्लोक ।।
4. अष्टाध्यायीः पाणिनि 3/2/182

नूनं अजस्वमिति विष्णुर हो ब्रुवाणः।
धन्वन्तरेः सकल सिद्धिसमाहितस्य
देवस्यदिव्यतनयस्य अजस्य तस्य।।2।।
प्रोवाच विष्णु रभितः प्रसमीक्ष्यकायम्
तेतुल्यदेवविधि होत्र महर्षि दायम्।
सम्प्रत्यशक्यमिहहोमहवेर्विधानात्
भूत्यां परां सकलमेष्य सिभन्निधानात्।।3।।
गर्भस्थिते वयसि सिद्धि समाहितत्वात्
देवत्ववमेष्यसि तदैव गुणायुध त्वात्
मंत्रैघृतैर्विविध गन्धयुतैश्चगन्धैः
त्वामर्चयन्ति विवुधाः विविध प्रबन्धैः।।4।।
एवं पुनस्तनु विधाष्यति तत्तदायु।
वेंदं चरेषु चरितेषु चरन चिरायुः।।
स्यान्नूनमेवहिससर्जयदब्जयोनिः।
तद्वापरं द्वितयमेष्यसि धर्मयोनिः।।5।।
तस्मैवरं समभिधाय विधायवाचम्।
अर्वाक्सुताय विहिताय हितायं काचम्।।
धन्वन्तरि प्रभुवराय निधायधिष्णुः।
अन्तर्जगाम विहगेशरथेश विष्णुः।।6।।
तेपेतपः स्वसुत कामित सौनहोत्रः।
काशीश्वरः कृचनधर्मणिं सम्प्रवृत्तः।।
प्रोवाच देवमजमीप्सितमीहमानः।
मद्गेहमेहि दयनीय दयां दधानः।।7।।
एवं पुनीतमभिनीत विनीत भावं
अन्वीक्ष्य तं नरपतिं निनदप्रभावं
धन्वतरिस्तु भगवान गमद्विधानात्
सन्तोषतोष समनुज्ञ मनोज्ञदानात्।।8।।
आतंक पंकित कलंक विनाशकरूपः।
आयुर्विदाभरणरूप प्रभूतभूयः।।
धन्वन्तरिस्तदनु जन्म्य तदासदेहात्।
काशीश्वरत्वम भजच्च तदीयगेहात्।।9।।
धन्वन्तरे रात्मजतां दधानः।
य केतुमानवेवहिकेतुमानः।।
तद्दभवोभीमरथो नरेशः।

ख्यातः दिवोदासइतीव शेषः।।10।।
येषां समाचार विचार चायम्।
सद्यः समादाय तरन्तितापम्।।
तेषां दिवोदासनरेश्वराणाम्।
किं वर्णनं वर्णन भूषणानाम्।।11।।
आयुर्विदमादिविवक्षिताय।
चञचच्चरित्राय चिकित्सकाय।।
तस्मैदिवोदास नरेश्वराय
नमोस्तु धन्वन्तरयेऽन्तराय।।12।।
दोषानजीगणदरंस्त विधानतन्त्रम्
अष्टांगमाकलय दामयदुर्नियन्त्रयम्
योऽजागरीदणु गुणं चरितं चिकत्स्यम्
धन्वन्तरिं प्रभुवरं प्रणमाम्यहं तम्।।13।।

समीक्षाः– आयुर्वेद दृष्टा धन्वन्तरि जी की स्तुति एवं यशोगान में वर्णित उपरिलिखित श्लोक आचार्य जी के वैदुष्य के परिचायक है।

श्लोक सं0 एक, दो, तीन, चार, पाँच, छः, सात, आठ, नौ तथा तेरह इनमें वसन्ततिलका वृत्त है। जिसका लक्षण है–

"उक्ता बसन्ततिलका तभजा जगौगः।"

श्लोक सं0 10, 11 तथा 12 में इन्द्रवज्रा वृत्त है।

भगवान् धन्वन्तरि अनामय प्रदाता एवं स्वास्थ्य के देवता है। लालित्य एवं गाम्भीर्य से परिपूर्ण पदावली में प्रोत उपरिलिखित पद्य आचार्य जी के प्रकाम पाण्डित्य के परिचायक हैं। पदावली में अनुप्रास, श्लेष, रूपकादि अलंकारों का ललित प्रयोग हुआ है।

"स्फुट स्तोत्र पद्य" :– आचार्य प्रवर कविगणपति श्री शारदाचरण दीक्षित अध्यात्म के अनुयायी रहे। उनकी हस्तलिपि में देवी देवताओं की स्तुतियों के अनेक स्फुट पद्य उपलब्ध होते है। पद्यों की पांडुलिपि में यत्र, तत्र संशोधनों को देखकर उनकी रचनाकर्तृता पर दीक्षित जी की मुहर लग ही जाती है। ऐसे कुछ स्फुट स्तोत्र पद्यों का विवरण इस प्रकार है –

विनायक स्तुति :– देवताओं में भगवान् गणेश विघ्न बाधाओं को दूर करने वाले तथा बुद्धि प्रदाता कहे जाते है। आचार्य जी ने अनुप्रास का सुनहरा पुट देकर वसन्ततिलका वृत्त में अतीव सुगम पद्य की रचना की है। "महता" "सहसा" "धीनायक" "विनायकः" पदों में शब्दलहरी की समता कर्णविवरों को प्रिय लगने लगती

है ।[1]

शिवस्तुति :– भगवान् शिव और पार्वती इस जगत के माता पिता है। महाकवि कालिदास ने शिव और पार्वती को शब्द और अर्थ की तरह सम्पृक्त एवं जगत का माता पिता माना है ।[2]

आचार्य जी ने इन दोनों शक्तियों का वर्णन पृथक्–पृथक् श्लोक में करके अपने भाव प्रसून समर्पित किये हैं। भगवान् शिव को उन्होंने आनन्दवन में गुफा में बैठा हुआ, तेजपुंज से समस्त विश्व को प्रपूरित कर देने वाला सम्पूर्ण तापों को हरने वाला तथा सद्यः प्रसन्न हो जाने वाला कहा है। वसन्ततिलका वृत्त में लिखा हुआ पद्य दोष व मोषम्, रोषम् तथा तोषम् जैसे शब्द साम्य को पाकर अनुप्रास का सुन्दर उदाहरण बन गया है। वैसे रूपक अलंकार भी स्पष्ट उद्भासित हो रहा है ।[3]

पार्वती स्तुति :– आचार्य शारदा जी ने पुरातन परम्पराओं का निर्वहन करते हुए भगवान शिव की स्तुति के साथ जगत्माता जगदम्बा की स्तुति की है। पार्वती के साथ सतत सामीप्य संबंध होने के कारण उन्हें अर्धनारीश्वर का स्वरूप अतीव प्रिय है। इसमें आधा–शरीर शिव का और आधा पार्वती का होता है। पार्वती एवं शिव की निरन्तर नैकट्य शास्त्र सम्मत है ।[4]

दीक्षित जी ने भगवती जगदम्बा को वेदत्रयी स्वरूपा विविध देववन्दित, अशरण–शरण्य एवं दया की सागर निरूपित किया है ।[5]

---

1. अन्तर्दुरूह उतमीमतमस्समूहो।
   विघ्नश्च शाश्वतिक साधु विधाननिघ्नः।।
   देवस्ययस्य महसा सहसाऽस्तमेति।
   धीनायको मम स एव विनायकोऽस्तु।।
   आचार्य लिखित पुस्तिका में से उद्धृत
2. वागर्थाविव सम्पृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये।
   जगतः पितरौ वन्दे पार्वती परमेश्वरौ।।
   रघुवंश महाकाव्यम्: कालिदास कृत श्लोक।
3. आनन्दकानन गुहाश्रितमद्वितीय।
   स्वीयप्रभापटल पूरित विश्वकोषम्।।
   दोष निरस्य विहितारिवल ताप मोषम्।
   वन्दे सदैवतमरोषमिहाशुतोषमः।। डायरी से
4. गंगातरंगमणीय जटा कलापम्।
   गौरी निरन्तर विभूषितवाम भागम्।।
   स्तौत्ररत्नावली : विश्वनाथाष्टकम् : श्लोक सं0 । पृ0 53 गीता प्रेस
5. त्रयीगुण्यापुण्याश्रु तितति शरण्या चिदचिदां
   समाराध्यासाध्या विधि हरि हराघाड्मदयमृतां।।
   कृपापारावाराहितविहित धारा वसुमतैः।
   निरालम्बालम्बा जयतु जगदम्बा मनसि मै।।
   आचार्य विलिखित डायरी से अवतरित : पृ0सं0 25

सरस्वती स्तुति :– विद्या की अधिष्ठात्री देवी सरस्वती है। शारदा, वींणावादिनी, मेधाप्रदा आदि उनके अपर नाम हैं। सरस्वती को जाड्यापहा की संज्ञा से अभिहित किया जाता है। आचार्य दीक्षित जी ने माँ शारदा की स्तुति करते हुए प्रार्थना की है कि हे देवि! मेरा भारत देश नानाधिकारों से ग्रस्त है। अनेक कुरीति कलंकों से उसकी प्राचीर भित्तियों की अन्तः एवं बाह्य सुन्दरता नष्ट हो चुकी है। अतः सुधार रूपी चूने की पुताई से उसे एक नव्य एवं भव्य स्वरूप प्रदान करो। आचार्य जी की यह उदात्त राष्ट्रीय भावना राष्ट्रप्रेम की प्रबल परिचायिका है।[1]

गुरुस्तुति :– भारतीय आर्ष साहित्य में गुरु महिमा का विषद् गायन हुआ है। गुरु को माता और पिता के समकक्ष स्थान दिया गया है।[2]

दीक्षित जी ने गुरु को समस्त समाधानों का भंडार, नवनिधियों का निधान, ऋषियों एवं सिद्धियों का आकर, गुणों का आधार, गुणवानों का आश्रय और मार्गदर्शक समेकित किया है।[3]

शिखरिणी छन्द में बद्ध की गयी स्तुति अतीव मार्मिक सजीव एवं रसपेशल है।

आचार्य जी द्वारा रचित अनेक स्तुति पद्य स्फुट रूप में उपलब्ध हैं। इन स्तुति पद्यों में दीक्षित जी बे0वाग्वैदग्ध का अद्भुत प्रदर्शन किया है। अलंकारों की मनोरम आभा प्रतिपद्य में विकसित हुई है। भक्ति रस की स्रोतस्विनी अखण्डरूप से प्रवाहित होती हुई पाठक को अलौकिक सुखानुभूति कराने में सफल होती है।

आचार्य शारदाचरण दीक्षित जी द्वारा रचित स्तोत्र साहित्य का पृथक् से आलोडन विलोडन एवं अनुसंधान अपेक्षित है।

---

1. हे शारदे जनतया नतयार्चितेहे।
   हे देवि तत्रभवतीभवती प्रसद्य।।
   वर्ष प्रसिद्धिमिह भारत भारतस्व।
   सद्यस्सुसिंचतु सुधार सुधारसेन।।
   आचार्य जी की डायरी से उधृत : पृ0 37
2. मातृदेवो भव। पितृदेवो भव। आचार्य देवो भव। उपनिषदः
3. समाधानाधानं नवनिधि निधानं नयवतां।
   प्रसिद्धिं सिद्धीनाममयमि भावं विभवताम्।
   गुणाधारं धारं गुणिगणमुदारं दर दरम्।
   सतां बन्धं वन्दे गुरू चरण पंकेरूहरम्।। डायरी से

पंचम अध्याय
खण्ड काव्य : मेघदूतोत्तरार्द्धम्

संस्कृत में दूतकाव्यों का महत्वपूर्ण स्थान है। और इस पर अनेक शोधकार्य भी हो चुके है। दूतकाव्यों का प्रारम्भ कहाँ से हुआ यह आज भी विद्वानों की तर्कना को प्रभावित और आकृष्ट करता है, अतः इसकी गहराई में जाना मेरे शोध प्रबंध से सम्बन्धित नहीं है, पर मैं इतना निर्विवाद रूप से कह सकता हूँ कि दूतकाव्य शब्द की परिकल्पना ही महाकवि कालिदास के मेघदूत से हुई है। और चैतन्य सम्प्रदाय की भक्तिभावना में दूतकाव्य परम्परा को परम विकास मिला है। चैतन्य सम्प्रदाय की रसोपासना वस्तुतः रसिकोपासना ही है, इसीलिये वहाँ स्वकीया के स्थान पर परकीया की स्थापना की गयी है, विरह और मिलन की आतुरता के जैसे चित्र परकीया भाव में सम्भव है वैसे अन्यत्र नहीं। दूतकाव्य की मुख्य वस्तु विरहातुर प्रेमी, अपनी प्रेमिका को असामान्य माध्यम से सन्देश भेजता है, चैतन्य सम्प्रदाय में प्रेमिका द्वारा प्रेमी को सन्देश देने की प्रवृत्ति मिलती है। इसीलिए दूतकाव्य को सन्देशकाव्य भी कहा जाता है। ब्रज के भक्ति साहित्य में ऐसी काव्य श्रृंखला सुदीर्घता को प्राप्त होती रही है।

आचार्य प्रवर शारदाचरण कविगणपति ने "मेघदूतोत्तरार्द्धम्" काव्य की रचना की है, अपनी रचना के सम्बन्ध में आचार्य दीक्षित ने स्वयं लिखा है –

"महाकविकालिदासादवशिष्टं मेघदूतोत्तरार्द्धम्"

इस प्रकार आचार्यवर ने सम्पूर्ण मेघदूत को पूर्वार्द्ध मानकर अपनी रचना को अवशिष्ट और उत्तरार्द्ध कहा है। यहां विचारणीय यह है कि विद्वानों की मान्यता के अनुसार महाकवि कालिदास ने मेघदूत के रूप में जिस काव्य की सृष्टि की थी वह वर्तमान मेघदूत का पूर्वरूप ही है। सम्भवतः इतने से महाकवि को सन्तुष्टि नहीं हुई थी और उन्होंने उत्तरमेघ की रचना की, इस प्रकार वर्तमान मेघदूत का उत्तरमेघ स्वयं ही मेघदूत का उत्तरार्द्ध है। परन्तु आचार्यवर ने एक कवि की ही रचना होने के कारण सम्पूर्ण मेघदूत को पूर्वार्द्ध के रूप में स्वीकार किया है। यह स्वयं में एक विशिष्ट परिकल्पना है। स्तुत्य प्रयास है, और सर्वथा अभिनन्दनीय है। और इस मेघदूतोत्तरार्द्ध के कुछ श्लोक अवश्य ही कालिदास के मेघदूत की समता में रखे जाते है। यदि उनसे श्रेष्ठ नहीं है तो उनके समतुल्य अवश्य कहे जा सकते हैं। कालिदास के मेघदूत पर शोध करने वाले विद्वानों ने बाल्मीकि रामायण के एक श्लोक से स्वीकार किया है– परन्तु मैं इस प्रकरण में कुछ नवीन तथ्यों को उद्घाटित करना चाहता हूँ– मेरी अपनी मान्यता है कि मेघदूत की रचना के समय कालिदास का आदर्श "योगवाशिष्ठ्य" रहा है। योगवाशिष्ठ्य को ही महारामायण कहा जाता है, सम्भवतः ऐसी भ्रान्ति प्रचलित हो गयी।

मेरी दृष्टि "योगवाशिष्ठ्य" के निर्वाण प्रकरण पर पड़ी तो उसके उत्तरार्द्ध के 119 वें सर्ग में मुझे अचानक वशीभूत कर लिया। उस सर्ग में प्रारम्भ में दूत की परिकल्पना की गयी–

"कथयत्येष पथिकः पश्य मन्दर गुल्मके।
प्रियायाश्चिरलब्धाया वृत्तां विरहसंकथाम्।।1।।
एकत्र पूर्ण किं वृत्तमाश्चर्यमिदमुत्तमम्,
दातुं त्वन्निकटे दूतमहं चिन्तान्वितोऽवदम्।।2।।
अस्मिन् महाप्रलयकालसमे वियोगे योमां मम यात्रि गृहं सकः स्यात्,
नैवास्त्यजौ जगति यः परदुः खशान्त्यै प्रीत्या निरन्तरतरं सरलं यतेत्।।3।।
आ एष शिखरे मेवः स्मराश्व इस संयुतः।
विद्युल्लता विलासिन्या वलितो रसिकः स्थितः।।4।।
भ्रातर्मेघ महेन्द्रचापमुचितं व्यालम्ब्य कण्ठे गुणं,
नीचैर्गर्ज मुहूर्तकं कुरूदयां सा वाष्पपूर्णेक्षणा।
बाला बालमृणाल कोमलतनुस्तन्वी न सोदुं क्षमा,
तां गत्वा सुगते गलज्जललवैराश्वासयात्मानिलैः।।5।।
चित्ततूलिकया व्योम्नि लिखित्वाऽऽलिगिंता सती।
न जाने क्वाधुनैवेतः पयोद दयिता गता।।6।।

यह पथिक मन्दर पर्वत के गुल्म में चिरकाल से वियुक्त पत्नी को पाकर उससे अपने पूर्वकाल के विरह की कथा इस प्रकार कहता है– इस मेरे एक दिन के उत्तम तथा आश्चर्यजनक वृतान्त को सुनो। एक दिन तुम्हारे निकट अपना वृतान्त भेजने के लिए दूत की चिन्ता करते हुए मैंने यह कहा कि इस महाप्रलय को काल के समान वियोग के दुःख में ऐसा कौन सा दूत है जो मेरे इस वृतान्त को मेरे घर जाकर मेरी प्रिया से कहे, क्योंकि इस संसार में ऐसा कोई मनुष्य नहीं है जो प्रीति से दूसरे के दुःख की शान्ति के लिए सरल भाव से प्रयत्न करे। इतने में मुझे स्मरण हो आया कि इस पर्वत के शिखर पर दूसरे के दुःख को शान्ति देने वाला, रसिक मेघ अपनी विलासिनी विद्युत रूपी प्रिया से संयुक्त स्थित है। इसलिये उससे मैंने कहा कि हे इन्द्रधनुष–रूपी सुन्दर माला अपने गले में पहने हुए भाई मेघ। मेरी जिस पत्नी की आंखों में जल भरा हुआ हैं, उसके पास जाकर धीरे गरजना, क्योंकि वह कमल की नाल के समान कोमल शरीरवाली कृश बाला है, और तुम्हारा कठोर या ऊँचा गर्जन सुनने में असमर्थ है। उसे अपने जलकणों से युक्त मन्द मन्द पवन के झोकों से जगाना। मैंने अपनी प्रिया के हृदयाकाश में चित्तरूपी लेखनी से लिखकर जो आलिंगन किया तो न जाने हे मेघ। वह तत्क्षण कहां चली गयी।

योगवाशिष्ठ्य : निर्वाण प्रकरण ।। 9 वां सर्ग श्लाक सं0 1,2,3,4,5,6

(क) **<u>दूतकाव्य एवं सन्देश काव्यों की परम्परा :–</u>**

लघुकाव्य का उत्कृष्ट विलासवैभव दूतकाव्यों एवं सन्देशकाव्यों में उत्तुंग शिखर को प्राप्त हुआ है। सन्देश काव्यों में दूत प्रायः प्रेमी एवं प्रेमिका का सन्देश वहन करता है। अतः सन्देशकाव्यों का श्रृंगार रस सेसिक्त होना स्वाभाविक है। श्रृगार रस का प्राधान्य होने के कारण सन्देशकाव्य प्रायः लोकरंजक, तथा चित्तापकर्षक रहे हैं।

दूतकाव्यों में दौत्यकर्म की प्रधानता होती है, किन्तु सन्देशकाव्य की भांति उनमें श्रृंगार प्रधानता नहीं होती।

चीनी कवि स्यूकांग ने 200 ई. में मेघ को दूत बनाकर संदेश भेजने की कल्पना की है। संस्कृत साहित्य में पशुपक्षिओं के द्वारा दूतकर्म के अनेक उदाहरण सुलभ हैं। ऋग्वेद में सरमा नाम की शुनी दूती है। महाभारत के नलोपाख्यान में हंसदूत है। रामायण में पवनतनय हनुमान दूत है। मेघदूत में कालिदास ने जिस दूत का चयन किया हैं, वह अचेतन है किन्तु वह चर है। सम्भव है कि कालिदास को अपने पूर्ववर्ती कवियों के पशुपक्षिओं के दौत्यकर्म से मेघ को दूत बनाने की प्रेरणा प्राप्त हुई हो।

संस्कृत साहित्य में उपलब्ध संदेशकाव्यों तथा दूतकाव्यों का संक्षेप में अवलोकन कर लेना उचित होगा–

<u>कविराजधोयी का पवनदूत :–</u> बंगाल के राजा मंगलसैन के आश्रित कवि धोयी ने पवनदूत की रचना की। पवनदूत की कथा के अनुसार राजा लक्ष्मणसैन दिग्विजय करता हुआ मलयगिरि प्रदेश में पहुँचा। वहाँ कुवलयवती नामक गन्धर्वकन्या राजा के प्रेमपाश में आबद्ध हो गयी। राजा स्वदेश बंगाल लौट आया। वसन्त ऋतु के आने पर विरहाग्नि से पीड़ित होकर वासन्तिक पवन को अपना दूत बनाकर सन्देश देने के लिए गौढ़ देश की ओर भेजती है। इस अवसर पर वह पवन को मलयगिरि से बंगाल तक का मार्ग बतलाती है एवं महत्वपूर्ण स्थलों का वर्णन करती हैं। कुछ महत्वपूर्ण स्थलों का परिचय भूगोल व इतिहास की दृष्टि से अत्यन्त उपयोगी है–

पवनदूत का पवन संदेश देता है–

''श्रीखण्डाद्रेर्वसति शिखरे कोऽपि गन्धर्वलोक–
स्तत्रास्त्येका कुवलयवती नाम मान्यांगनानाम्।
दूत कथ्याः कलय मलयोपत्यकामारूतं मां
कामिद्वन्दं घटयति मिथो विप्रयुक्तं य एकः।।[1]

<u>''कविवर लक्ष्मीदास का शुक सन्देश''</u> कविवर लक्ष्मीदास केरल के नाम्बूतिरि ब्राहमण थे। इन्होंने प्रायः 13वीं और 14वीं शताब्दी के सन्धि काल में शुकसन्देश का प्रणयन किया। शुकसन्देश का उपजीव्य मेघदूत है। इसका नायक नायिका के साथ सुखी होने पर भी स्वप्न में रामेश्वरम् जा पहुँचता है। वह तृक्कणामलिलकम् में रहने

---

1. पवनदूत : कविराजधोयी : 62वां श्लोक।

वाली नायिका के पास शुक के माध्यम से सन्देश भेजता है। रामेश्वर से शुक केरल होकर नायिका के पास पहुँचता है। बीच में कुमारी अन्तरीप और शुचीन्द्र पड़ते है। वहाँ से जयसिंहनाइ होते हुए दो नदियों को पार करके वह फुल्ला में जा पहुंचता है। मार्ग में पड़ने वाले त्रिवेन्द्रम्, वयत्तिल, तृक्करूर आदि के विष्णु, सुब्रह्मण्य, और शिव के मन्दिरों का भव्य वर्णन है। कवि ने चूर्णी नदी का और महोदयपुर की रमणियों की क्रीड़ा का वर्णन किया है। सम्पूर्ण ग्रन्थ द्वादश अध्यायों में वर्णित है।

शुक्सन्देश की लोकप्रियता इसकी सात टीकाओं से व्यक्त होती है। शुकसन्देश गीतिकाव्य के लिए रूचिकर विषय रहा है शुकसन्देश की एक कविता में संदेश इस प्रकार समुपवर्णित है–

"लक्ष्म्या रंगे शरदि शशिनः सौधश्रृंगे कयोश्चित्।
प्रेम्णा यूनोः सह विहरतोः पेशलाभिः कथाभिः।
द्वारासेधः क्वनु हतविधेर्दूरनीतः स तस्याः
श्रान्तः स्वप्ने शुकमिति गिरा श्राव्यया सन्दिदेश।।1।।

वेदान्तदेशिक हंस सन्देश :–

वेदान्तवेशिक दक्षिण भारत के वैष्णव सम्प्रदाय के सर्वोच्च उन्नायक थे। इन्होंने हंससन्देश की रचना 14वीं शताब्दी में की।

आध्यात्मिक दृष्टि से लिखे गये दो आश्वासों की इस काव्य में शरदऋतु में हंस ही परमहंस आचार्य है। इसके दो पक्ष ज्ञान और अनुष्ठान हैं। इसमें परमात्मा का आत्मा विषयक वियोग वर्ण्य विषय है, इसमें सीता जीव है एवं राम परमात्मा है। रावण बुद्धि है। हंससन्देश रमणीय है।

"तस्मिन् सीतागतिमनुगत्रे तदनुकूलांकमूर्तो।
तन्मंजीर प्रतिमनिनदे न्यस्तनिष्पन्द दृष्टिः।
वीरश्चेतो विलयमगमत्तन्मयात्मा मुहूर्तं
शंके तीव्रं भवति समये शासनं मीनकेतोः।।[1]

पूर्ण सरस्वती : हंससन्देश :– पूर्णसरस्वती ने हंस सन्देश का प्रणयन किया 14वीं शताब्दी में। सरस्वती जी केरल के ब्राह्मण थे। इनके गुरु ज्योति थे।

हंससन्देश दूतकाव्य है। इसमें 102 पद्य मन्दाक्रान्ताछन्द में हैं, इसे हंसदूत भी कहते हैं। इसमें कांचीपुर की एक प्रेमिका वृन्दावनवासी कृष्ण को अपना प्रणयसन्देश भेजती है। सन्देशवाहक है एक हंस। हंस के मार्ग में मध्य में चाले देश श्रीरंगम्, ताम्रपर्णी नदी, त्रिवेन्द्रम, त्रिचूर, त्रिक्कमराम, कालिन्दी आदि पड़ते हैं। इसमें श्रृंगार और भक्ति का रमणीय सामंजस्य है।

---

1. शुकसन्देश : लक्ष्मीदास जी
2. हंससन्देश : वेदान्तदेशिकः श्लोक 48

उद्वदण्डशास्त्री द्वारा प्रणीत कोकिलसन्देश :– कोकिलसन्देश के रचयिता उद्वदण्डशास्त्री तमिल ब्राह्मण थे, कवि ने 15वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में कोकिल सन्देश का प्रणयन किया। कवि के आश्रयदाता महाराज मानविक्रम थे।

कोकिलसन्देश का स्थान दूतकाव्यों में उच्च है। इसमें गीतिकाव्य के तत्वों का पर्याप्त परिपोष हुआ है। ताम्रचूडनगर का वर्णन देखते ही बनता है–

यत्र ज्ञात्वा कृतनिलयनामिन्दिरामात्मकन्यां
मन्ये स्नेहा कुलितहृदयो वाहिनीनां विवोढा।
तत्वद्वीपान्तरशतसमानीतरत्नौघपूर्ण
नौकाजापलं मुहुरूपहरन् वीचिभिः श्लिष्यतीव।।[1]

मयूर सन्देश में महाकवि उदयन ने उद्दण्ड की प्रशस्ति में कहा है–

उद्दण्डाख्यः सुरभिकविता सागरेन्द्रः कवीन्द्र–
स्तुण्डीरक्ष्मावलयतिलकस्तत्र चेत् सन्निधत्ते।
श्राव्यामुष्य त्रिदशतहिनी वेगवैदग्ध्यदोगध्री
वाग्घाटी सा विजितरयसम्फुल्लमल्लीमधूली।।2।।

कोकिलसन्देश संस्कृतकवियों का प्रिय शीर्षक रहा है। यही कारण है कि वरदाचार्य, गुणवर्धन और नरसिंह आदि कवियों ने कोकिल सन्देश का प्रणयन किया है। इनके अतिरिक्त पिकसन्देश की रचना रंगनाथाचार्य ने, पिकदूत की रचना आशुतोषसैनगुप्त और रूद्रन्यायवाचस्पति ने की है। कोकिल बसन्तागमन की सन्देशवाहिका होती है। अतः कवियों को कोकिल का नाम सन्देशप्रेषण के लिए अच्छा लगा।

महाराजउदय का मयूर सन्देश :– मयूरसन्देश के रचयिता महाराज उदय पन्द्रहवीं शताब्दीं के कवि हुए हैं। ध्वन्यालोकलोचन की कौमुदी टीका के लिए अति विशेष प्रसिद्ध है। इन्हें उत्तुंगोदय के नाम से भी अभिहित किया जाता है। महाराज उदय श्रीकण्डोर्वीपति उपाधि से विभूषित थे। उनका राज्य मलाबार जिले के एक भाग में था, जो पोननि नदी और अरबसागर का मध्यवर्ती प्रदेश है।

मयूर सन्देश पर सन्देशकाव्य के प्रथमरत्न मेघदूत की, लक्ष्मीदास के शुकसन्देश की, और उद्दण्ड के कोकिल सन्देश की छाया है। इनके अतिरिक्त मयूर सन्देश पर मलयालम के उण्णूनीली–सन्देश की छाया प्रतीत होती है। मयूरसन्देश की कथा के अनुसार नायक और नायिका राजमहल की छत पर विहार कर रहे थे। उसी समय कुछ गगनचारी विद्याधर वहाँ से निकले, उन्होंने दोनों को शिव और पार्वती समझकर उनकी स्तुतिपूजा कर डाली। नायक विद्याधरों की भ्रान्ति को देखकर उनका उपहास करने लगा, तब विद्याधरों ने उसे शाप दिया और मूर्ख। एक मास तक पत्नी से विमुक्त

---

1. कोकिलसन्देश : उद्दण्डशास्त्री
2. मयूर सन्देश : महा. उदयशास्त्री अपरनाम उत्तुंगोदय

रहो। नायक त्रिवेन्द्रम जा पहुँचा और वहाँ से अन्नकर में रहने वाली प्रेयसी के पास मयूर के द्वारा सन्देश भिजवाया।

यात्रापथ में आरम्भ में त्रिवेन्द्रम् के मन्दिरों का वर्णन है। वहीं बलिमहोत्सव के दर्शनार्थियों का तांता लगा रहता था। यात्रा के लिए प्रस्थान करते समय प्रातः काल का वर्णन है, पुनः वहाँ से यात्रा करते हुए मयूर समुद्रतट पर पहुँचता है। समुद्रतट से उड़ते हुए उसको एक शिवमन्दिर मिलेगा, जो चारों ओर समुद्र से घिरा है, फिर वहां से वर्कल में उसे विष्णुमन्दिर के पास पहुंचना है। वहाँ के सरोवर में स्नान करके उसे कोलम्ब में जाना है। वहाँ से थोड़ा पूर्व की ओर चलकर मयूर को कोट्यं पहुँचना है।

यात्रा का दूसरा क्रम कोट्टयं से उत्तर की ओर उड़कर एत्तुमानूर तक पहुँचने का है। फिर वहाँ से सिन्धुद्वीप फुल्लानदी, और रविपुर के मन्दिर तक जाना है। रविपुर से आगे मयूर सुब्रह्मण्य–मन्दिर पहुँचेगा। वहाँ से चूर्णी नदी होकर सहोदयपुरी और कुरूम्बप्रदेश में जाना है।

कवि ने कालिदास के मेघदूत का अन्तस्तम पर्यालोचन करके उसे अपने काव्य में उतारा है। कवि की दृष्टि से समुद्र की नागरिकता और श्रृंगारित वृत्ति का दर्शन करें –

"फेनश्रेणीहसितसुभगः संलपन्नुल्लसद्भिः
हंसीनादैर्मणिगणरूचा कल्पितोदारवेषः।
वीचीदोर्मिर्जलनिधिरयं कामिवृत्यानुवेलं–
वेलामालोक्य रसभराद् गाढमालिंगतीव।।"[1]

इस काव्य में अनुप्रासात्मक ध्वनियों से संगीत का वातावरण अनुनादित हैं–

"तामुत्तीर्य त्वरितगतिमानुत्तराशवलम्बी
लोलम्बालीलुलितलतिका लोभनीयोपशल्यान्।
पश्यन् प्रौढैर्द्विजपरिवृढै' शश्वदध्यास्यमानान्
मध्ये मध्ये पत परिचित ब्रह्मघोषान् प्रदेशान्।।"[2]

प्रस्तुत काव्य में द्राविड़ी भाषा का अनुप्रास अवलोकनीय हैं–

धारारूढो विरहदहनश्चैष पाटीरपाथो–
धोरण्याशु स्नपयत सखीमापदम्भोजचूडम्।
धीरा यूयं भवत शनकैर्धारयित्वांगमेनां
धारागारं नयत न चिरादेव नान्योभ्युपायः।।[3]

इसमें सभी पादों में थ, रम, का अनुप्रास है। कई अन्य प्रकार के द्राविड़ी अनुप्रासों का भी इसमें प्रयोग हुआ है।

---

1. मयूर सन्देश : महाराज उदय श्लोक सं0 49
2. वही : महाराज उदय श्लोक सं0 63
3. मयूर सन्देश : महाराज का उदय श्लोक सं0 55

घटकर्पर विरचितः मेघदूत :– घटकर्पर काव्य के रचयिता घटकपर का वास्तविक नाम कुछ और ही रहा होगा। यह नाम तो इनके अभिमानोचित इस उक्ति से प्रचलित हुआ कि मेरी रचना से उच्चतर यदि कोई रचना करे तो मैं उसके घर घट के कर्पर (फूटे घड़े) से पानी भरूंगा। सम्भव है उनको इस प्रकार अपनी प्रतिज्ञा पूरी करनी पड़ी। घटकर्पर कब हुए, यह अज्ञात ही है। अनुश्रुति के अनुसार वे कालिदास के समकालीन थे और विक्रमादित्य के नवरत्नों में से एक थे। दशवीं शती से पहले घटकर्पर का जन्म हुआ था, क्योंकि अभिनव गुप्त ने घटकर्पर की टीका दशवीं शताब्दी में लिखी है। घटकर्पर में मात्र 22 पद्य हैं। इसमें नायिका मेघ को दूत बनाकर नायक के पास सन्देश भेजती है। इस प्रकार इस नाटक पर कालिदास के मेघदूतम् की छाया प्रतीत होती है। घटकर्पर के मेघदूत का प्राचीन भारत में प्रचुर सम्मान था। अभिनवगुप्त जैसे महान् पण्डित ने इसकी टीका लिखी– यही इसकी उच्च लोकप्रियता का प्रमाण है। इसकी दशाधिक टीकाएं उपलब्ध है। घटकर्पर में यमक और अन्य शब्दालंकारों की जो विशेषता हैं, उसका प्राचीन काव्य मर्मज्ञों के बीच समादर था।

''सर्वकालमवलम्ब्य तोयदा आगताः स्थ दयितो गतो यदा
निर्घृणेन परदेशसेविना मारयिष्यथ हितेन मां विना।।
निचितं समुपेत्य नीरदैः प्रियहीना हृदयावनारदः।
सलिलैर्निहितं रजः क्षितौ रविचन्द्राविव नोपलक्षितौ।[1]

कालिदास की काव्यचारूता का घटकर्पर में अभाव है। 1624 ई0 में मण्डन ने कृष्णलीला नामक काव्य में घटकर्पर के पदों को अपने पद्यों में क्रमशः समाविष्टा किया है।

जैनसन्देश काव्य : विक्रम कृत नेमिदूत :– नेमिदूत के रचयिता विक्रम का प्रादुर्भाव 15वीं शताब्दी में हुआ था। कवि के पिता सांगण थे। इसमें कालिदास के मेघदूत के चौथे चरण को प्रत्येक पद्य का चौथा पद्य बनाया है। विक्रम की विद्वता असाधारण थी–

''वन्याहारा घृतमुनिजनाचारसाराः सदारा
यां नाथन्ते वयसि सुधियः क्षत्रियाः संश्रयन्वि।
किं तारूण्ये गिरिवर भुवं सेवसे तां तपोभिः
क्षीणः क्षीणः परिलघुपयः स्रोतसां चोपभुज्य।।[2]

अभिनव भारवि की समर्थ अर्थवतता :– भारवि की रचनाओं में अर्थगौरव की विशेषता का निदर्शन करना एक पुरानी परिपाटी है–

''भारवेरर्थगौरवम्''। अर्थ गौरव प्रस्तुत करने का तात्पर्य पाठक के मानस पटल

---

1. नेमिदूतः विक्रम कृतः श्लोक सं0 13
2. जैन सन्देश काव्यः विक्रमकृत नेमिदूत

पर कवि अभीप्सित विचारों को अंकित कर देता है। जिससे साधारण मानवीय भावनायें तुच्छ वृत्तियों को तिलांजलि देकर उदात्त रूप धारण कर सकें। अर्थगौरव की उद्भासना प्रायः सूक्तियों के माध्यम से होती है। इन सूक्तियों में उन शाश्वत सत्य मूल्यों का निश्चयोतन होता है जो मानव को संसार महासमर में प्रतिष्ठा प्राप्त कराते हैं। पद्यों में छोटे–छोटे सनातन सिद्धधवाक्य डालकर भावगाम्भीर्य उत्पन्न किया जाता है।

न्यून शब्दों से अधिकाधिक अर्थ की अभिव्यक्ति करना भी अर्थ–गौरव का दूसरा सबल पक्ष है। महाकवि भारवि अपने इस अर्थ गौरव के कारण संस्कृत साहित्य के महान् कवि माने जाते हैं।

आचार्य शारदाचरण दीक्षित की रचनाओं में महाकवि भारवि जैसी प्रभावकारी, समर्थ अर्थवत्ता का दर्शन होता है।

मेघदूत का उत्तरार्ध समर्थ अर्थवत्ता का प्रबल परिचायक है। दीक्षित जी की सूक्तियों में अनुपम वक्तृता है, वे कुछ ऐसे ढंग से कही जाती है कि हृदय तक पहुंचे बिना उनकी गति अवरूद्धध नहीं होती। यक्ष–मेघ से कहता है कि तुम यह न कहना कि मैं निस्तार हूँ अतः उपकार नहीं कर सकता बड़े लोग निर्धन होने पर भी कहीं अपने स्वभाव को थोड़े ही छोड़ देते हैं।[1]

दीक्षित जी ने अपनी इस रचना को सम्बोधनात्मक बनाया है। मार्ग में यह वही धन है, ऐसा तर्जनी अंगुलि से संकेत करने वाली कृषकवनितायें तुमको देखेंगी, इससे तुम्हारी थकान मिट जायेगी– रास्ते में राहगीरों से हुआ परिचय किसको प्रसन्नता नहीं देता हैं ?[1]

अर्थगौरव की अभिव्यक्ति में अर्थान्तरन्यास अलंकार की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। दीक्षित जी ने इसका प्रचुर प्रयोग किया। धैर्यशाली लोग विषय में लापरवाह नहीं होते।[2]

मार्ग में मेघ को देखकर निश्चित ही मयूर एकत्रित हो जायेंगे और केकारव करेंगे। बन्धु प्रेम से मेघ को वहाँ रूकना नहीं है क्योंकि रूकने का कारण यह हो सकता है कि लोग स्वजनों के मिल जाने पर अन्य बातों को भूल जाते हैं–

---

1. निस्सारेणाडण्वपि बत मया शक्यते नोपकर्तुं।
मैवं ब्रूहि प्रकृतिमघनोऽप्युन्नतः किं जहाति।।
मेघदूतोत्तरार्धम् : आ. शारदा चरण दीक्षित श्लोक 5

2. नो जायन्ते पथिपरिचयाः कस्य कस्योत्सवाय।।
मेघदूतोत्तरार्धम् : आ. शारदाचरण दीक्षित

3. पाथोद त्वं कथमपिशनैर्गच्द लब्धावकाशः।
प्रायो धीरा विदितविषयेऽप्यप्रभत्ता भवन्ति।।
मेघदूतोत्तरार्ध : श्लोक 14

"प्रायो लोकाः स्वजनमिलिताः नेतरायं स्पृशन्ति।।"

यक्ष ने मेघ को निर्दिष्ट किया है कि वह अपनी थकान को मिटाने के लिये रात को पर्वतों पर विश्राम करे– लगातार चलने से तो वह थक जायेगा और थोड़ा भी उपकार न कर सकेगा जिससे लक्ष्य प्राप्ति न हो सकेगी। झटिति सम्पूर्ण लाभ न होने पर थोड़ा थोड़ा धीरे–धीरे हुआ लाभ भी आनन्ददायक होता है।

"सर्वालाभे भवति हि मनाग्लब्धमप्युत्सवाय।।"

प्रयागराज जाकर गंगा–यमुना का पवित्र संगम मेघ को पवित्र कर देगा। मेघ ! मैं तो पवित्र हूँ– मुझे और पवित्रता से क्या लेना ऐसा मत कहना– सुखी आदमी और अधिक सुखी होना क्या नहीं चाहता ? अर्थात् अवश्य चाहता है।[1]

मेघ को तीर्थस्थलों में नागरिकाओं की भाव–भंगिमाओं से सावधान रहने की आवश्यकता है, क्योंकि स्वच्छन्दचारी लोग भी तीर्थों में जाकर सावधान बुद्धि धारण कर लेते हैं–

"प्रायस्तीर्थे सुभगमतयः सावधाना भवन्ति।।"

महाकवि दीक्षित मेघदूत उत्तरार्धमं में विरहवेदना की ऐसी वीथी का निर्माण कर सके हैं जिसमें होकर भावना में भटकी यक्ष ग्रहिणी मारी मारी फिरती है और अपनी सखियों से पूंछती है– अरी सखियों! सच–सच बताओ मेरे प्राणनाथ इस आंगन में लगातार आना जाना और फिर जाना और आना कब करेंगे। शाम तक इसी प्रकार प्रलाप करती वह यक्षिणी चारों दिशाओं को विस्फारित नेत्रों से देखती रहती है।[2]

दीक्षित जी का जीवन दर्शन "मेघदूतोत्तरार्धम्" की सूक्तियों में मिलता है। सूक्ष्म पर्यवेक्षणीय बुद्धि का परिचय पदे–पदे उनकी सभी रचनाओं में मिलता है। चन्द्रमा एक ओर तो अमूर्त लुटाकर लोगों को आनन्दित करता है वहीं दूसरी ओर कलारूपी भालों के ढाल से घायल भी कर डालता है। चन्द्रमा के साथ द्विजेश और द्विवजरायज के सम्बोधन जुड़े हुए हैं फिर राजा होकर ऐसी भेदुबुद्धि क्यों। राजा तो सौम्यप्रकृति वाले प्राणियों के प्रति तुल्यतोषी (समान व्यवहारी) होते है।[3]

---

1. गच्छ स्वैरं जदल । पवनारूढ। गूढामवन्तीं–
   हासैः शम्भोश्चिरमुपचितैरन्वहं ताण्डवेषु।
   तत्रासीनो हरिहयहरिद्वर्त्म विन्यस्तचक्षु–
   र्नत्वा गंगातपनतनये याहि काशीं क्रमेण।। वही : श्लोक – 20
2. सख्यः । सत्यं कथयत कदा संविधास्यत्यजस्त्रं,
   यातायातं प्रणयविबशः प्राणनाथोऽगणेशु।
   इत्थं हन्त प्रलपनपरा कातराक्षी दिनान्ते–
   पन्थानं ते दिशि दिशि मृशं । लक्षी करोति।। वही : श्लोक 91
3. एकानुच्चैर्मदयति सुधादानतोऽन्तर्द्विजौधान्
   दीनानन्यान् वितुदति कलाकुन्तघातैर्मृगांकः।
   तस्यादेषप्रिय। वद कथं कथ्यतां द्राम् द्विजेशः
   प्रायः सौम्यप्रकृतिषु नृपास्तुल्यतोषा भवन्ति।।
   आचार्य शारदाचरण दीक्षित कृत मेघदूतोत्तार्धन श्लोक 124

मेघदूत उत्तरार्धम् संस्कृत गीतिकाव्य का परम उज्जवल रत्न है। उपमानों और उत्प्रेक्षाओं का अत्यन्त सुन्दर एवं समुचित प्रयोग इसमें हुआ है। दीक्षित जी ने इस रचना में बाह्य प्रकृति और अन्तः प्रकृति दोनों का बड़ा ही मार्मिक चित्रण प्रस्तुत किया है। इस रचना की पद्धति पर दीक्षित जी महाकवि कालिदास और समर्थ अर्थवत्ता के आधार पर भारवि की कोटि में आते हैं।

षष्ठ अध्याय
प्रकीर्ण खण्डकाव्य एवं अन्य रचनाएँ

काँग्रेस वैभवम् :– कांग्रेस शब्द आज विश्व के कोने–कोने में प्रसिद्ध है। वस्तुतः यह शब्द अंग्रेजी भाषा में लैटिन कौंग से विकसित हुआ है। रोमन भाषा में कोन्ग्रेगेशन सामूहिक प्रार्थना सभा के लिए प्रयुक्त होता था। धीरे–धीरे प्रार्थना सभा के अतिरिक्त सभी जगह एकत्रीकरण या सामूहिक सभा को इसी शब्द से अभिहित किया जाने लगा। जो कोन्ग्रेगेशनल वर्शिप का ही संक्षिप्त रूप था, परन्तु भाषा निरन्तर अपने रूप का विकास करती है और शब्दों के अर्थों को सीमाबद्ध करती है के सिद्धान्त के आधार पर इसका और संक्षिप्त रूप केवल कांग्रेस रह गया, जिसका अर्थ है महासभा अर्थात् किसी विशिष्ट उद्देश्य के लिए समवेश व्यक्तियों का संगठन "कांग्रेस" नाम से प्रसिद्ध हुआ। तथा यह शब्द विश्व के सभी देशों में विकसित हुआ। अमेरिका की पार्लियामेन्ट का तो नाम ही काँग्रेस है, भारतवर्ष में भी एक सुधारवादी अँग्रेज सर ए.ओ.ह्यूम ने राष्ट्रीय महासभा के रूप में एक संस्था को जन्म दिया जिसका नाम इण्डियन कांग्रेस रखा गया। प्रारम्भ में अंग्रेजी शासन के समर्थक और प्रशंसक ही इसके प्रमुख रहे थे। मोहनदास कर्मचन्द्र गाँधी के दक्षिण अफ्रीका से वापस आने पर उनके कांग्रेस में सम्मिलित होने पर इसके रूप में परिवर्तन हुआ, यह ऐसा संक्रान्तिकाल था, कि श्री गोखले, श्री रानाडे, दादाभाई नौरोजी, सर, आशुतोष मुखर्जी, सी.आर.दास, लाला लाजपतराय जैसे विचारशील लोग, भारतीय स्तंत्रता के पक्षधर बन गये। और स्वतंत्रता के इतिहास में केवल दो शब्द गूँजे काँग्रेस और गाँधी। इन शब्दों के साथ जनमानस का सहज तादात्म्य हो गया।

बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में इस ध्रुवान्तर से भारत को नई चेतना मिली, बंगला, मराठी, और हिन्दी के ही नहीं सभी भाषाओं के साहित्य पर स्वतन्त्रता, गाँधी और कांग्रेस छा गये। कालान्तर में कांग्रेस शब्द के साथ गाँधी और स्वतन्त्रता दोनों शब्दों का समावेश हो गया। परन्तु संस्कृत के विद्वानों की लेखनी प्रायः इस दशा में प्रस्फुरित नहीं हुई। जनसामान्य ने मान लिया कि संस्कृत कवि सदा से ही स्तुतिगायक रहा है। "दिल्लीश्वरो वा जगदीश्वरो वा" को आदर्श मानने वाला संस्कृत कवि प्रायः इस दिशा से विमुख रहा। सौभाग्य से सरस्वती के वरदपुत्र प्रबुद्धचिन्तक और मनीषी समाज सेवी विद्धद्वर्य आचार्य शारदाचरण दीक्षित ने अपनी ओजस्विनी लेखनी से कांग्रेस वैभवम् नामक काव्यरचना प्रस्तुत कर शारदा के चरणों में अर्पित कर अपने नाम को सार्थक किया। यहाँ यह स्मरणीय है कि स्वतंत्रता के बाद तो, स्वतन्त्रताविजयम्, गांधिचरितम्, युगपुरूषवन्दनम् जैसी असंख्य रचनाएं दृष्टिगत होती हैं परन्तु स्वतंत्रता से पूर्व कांग्रेस के नाम से ही "कांग्रेस वैभवम्" जैसे खण्डकाव्य की रचना वस्तुतः

साहसिक कार्य था। भूमि, भवन और सम्पत्ति की कुर्की ही नहीं, जेल की यातनाओं से संत्रस्त न होते हुए भी ऐसी, सामयिक प्रेरक, भावोत्तेजक और स्वाभिमान को जाग्रत करने वाली राष्ट्रीयकृति के रचनाकार आचार्यवर शारदाचरण दीक्षित जैसे वरिष्ठ साहित्यकार का यह स्तुत्य एवं साहस पूर्ण कार्य है।

कॉंग्रेस वैभवम् :– कांग्रेस वैभवम् आचार्य शारदाचरण दीक्षित की एक अमर कृति है। आचार्यप्रवर कांग्रेस को गांधी जी से गांधी जी को कांग्रेस से पृथक न देख सके थे। कदाचित वे इसी ऊहापोह में रहे हों कि इस कृति का नाम "गांधीचरितम् रखा जाय या कांग्रेसचरितम्" यही कारण है कि पाण्डुलिपि के कतिपय पृष्ठों पर दोनों शीर्षकों का उल्लेख है। सत्य के धरातल पर देखा जाये तो स्वाधीनता संग्राम के ये वे दिन थे, जिनमें कांग्रेस और गांधी एक दूसरे के पूरक नहीं अपितु पर्याय बन गये थे।"

"तत्कालीन राजनयिक परिस्थितियाँ" तत्कालीन सामाजिक, राजनैतिक, तथा प्रशासनिक गतिविधियों ने आचार्य जी को निश्चय ही प्रभावित किया होगा, तथा उनके मानस को आन्दोलित किया होगा। तत्कालीन राजनयिक परिस्थितियों का अध्ययन करना विशेषकर आलोच्य कृति के सम्बन्ध में सर्वथा समीचीन ही रहेगा।

20वीं शताब्दी का दूसरा दशक स्वाधीनता आन्दोलन का महत्वपूर्ण अध्याय है। जैसा कि पूर्व में निवेदन किया जा चुका है, परमपूज्य आचार्य जी का जन्म सन् 1911 में आगरा के मोतीकटरा मोहल्ले में हुआ था। एक शिशु में अवगम की भावना, तथा अपने चारों और के वायुमंडल को जिघ्रण करने की क्षमता प्रायः होती है। कुछ घटनाएं इतनी विक्रान्त, भयावह, तथा रोमांचकारी होती हैं जो कई वर्षों के बाद तक चर्चित रहती है।

इन घटनाओं का जानना इसलिए भी आवश्यक है क्योंकि ये घटनाएँ ही कवि के कवित्व को प्रस्फुटित करनें में कारण बनती है।

जलियावाला बाग काण्ड :– 13 अप्रैल 1919 को जो कि हिन्दुओं के नवसंवत्सर का दिन था अमृतसर के जलियांवाला बाग में एक सार्वजनिक सभा हुई, इस सभा में चार दिन पूर्व गिरफ्तार किए गये महात्मा गांधी की गिरफ्तारी का विरोध करना था, यह खुला हुआ स्थान शहर के मध्य में है, शहर के मकान ही इसकी चहार दीवारी बनाये हुए हैं, इसका दरवाजा बहुत की संकीर्ण था। बाग में जब बीस हजार आदमी इकट्ठे हो गये तब जनरल डायर ने उसमें प्रवेश किया उसके पीछे सौ हिन्दुस्तानी सिपाही और पचास अंग्रेज सैनिक थे। सभी सशस्त्र थे, जनरल डायर ने घुसते ही निहत्थे लोगों पर गोली चलाने का आदेश दे दिया। कुल सोलह सौ फायर किये गये। गोली हिन्दुस्तानी फौजियों से चलवाई गयी थी, हजारों लोग मरे और हजारों घायल। मृतकों और घायलों को वहीं पड़े रहने दिया गया। अमृतसर में जो भी आदमी घूमता–फिरता नजर आया उसे पेट के बल सड़कों पर रैंगाया गया। यदि कोई व्यक्ति

शाम को 6 बजे के बाद घर से निकलता उसे गोली से मार दिया जाता।

भीषण दमन चक्र :– कालेज के विद्यार्थियों के लिए यह आज्ञा थी कि वे दिन में चार–चार फौजी अधिकारियों के समक्ष उपस्थिति दिया करें। भारतीय नागरिकों के मोटर आदि वाहन जब्त कर लिए गये। जिनके पास बिजली के पंखे आदि उपकरण थे, उन्हें उतरवा लिया गया। वकीलों को आज्ञा थी कि वे शहर से बाहर कहीं न जायें। 16 से 20 की उम्र के विद्यार्थियों पर विशेष बड़ी नजर थी।

जिन नागरिकों के घर के बाहर फौजी आर्डर चस्पा किये जाते थे, उन आर्डर की रक्षा करना मकान मालिक का कर्तव्य था। आर्डर फट जाने पर सड़क पर खड़े कर बेंत तोड़ें जाते थे। अतः नागरिक उन चिपके हुए आडरों की रक्षा करते थे। लाहौर के एक कालेज की दीवार से फौजी कानून का एक आदेश फाड़ दिया गया तो कालेज के प्रधानाचार्य, अध्यापक एवं कर्मचारियों को दंडित किया गया तथा 3 दिन तक कैद में रखा गया। तत्कालीन कर्नल ओब्रायन ने एक आदेश जारी किया था कि जब कोई हिन्दुस्तानी किसी अंग्रेस अफसर को मिले तो वह उसको सलाम करे, किसी सवारी में, या घोड़ें में सवार हो तो उतर जाए, अगर छाता लगाए हो तो उसे नीचे झुका ले। लाहौर के रेलवे स्टेशन के पास एक बड़ा पिजड़ा बनवाया गया था जिसमें 150 आदमी रखे जा सकते थे, जिन लोगों की अंग्रेज भक्ति संदिग्ध होती थी उन्हें इसमें बन्द कर दिया जाता था। ताकि आम जनता उन्हें देख सके।

एक बार नंगा करके पिटता हुआ देखने के लिए शहर की वेश्याओं को लाया गया। स्कूल के छात्रों को बाध्य किया जाता था कि वे यूनियन जैक झण्डे को सलामी दें।

अंग्रेज भारत में व्यापारी के रूप में आये थे और भारतीय नरेशों से आज्ञा पत्र प्राप्त करके यहां व्यापार करते थे। अंग्रेजों ने भारत की शोचनीय राजनयिक स्थिति से लाभ उठाने का प्रयत्न किया, और भारत में अपना साम्राज्य स्थापित करने का निश्चय कर लिया। धीरे–धीरे उन्होंने सम्पूर्ण भारत में अपनी राजसत्ता स्थापित कर ली, परतन्त्रता की बेड़ियों में बांधने में अंग्रेजों को पूरे 100 वर्ष लग गये, इन बेड़ियों को तोड़ने में भी हमें 100 वर्ष लगे।

कांग्रेस की सक्रिय भागीदारीः– स्वाधीनता संग्राम में कांग्रेस की बहुत बड़ी भूमिका रही है। सन् 1907 ई. में सूरत के अधिवेशन में कांग्रेस में दो दल हो गये, गरमदल तथा नरमदल। उग्रदल के नेता लोकमान्य बालगंगाधर तिलक थे, तो नरमदल के नेता गोपाल कृष्ण गोखले। सन् 1915 में नरमदल के नेता गोपालकृष्ण गोखले का निधन हो गया और गरमदल के नेता तिलक जेल से मुक्त कर दिये गये।

कांग्रेस का इतिहास : ले पट्टाभिसीतारमैया : पृष्ठ 133–138,
सस्तासाहित्यमंडल नई दिल्ली 1948

तीसरे दशक को गांधी युग के नाम से पुकारा जाता है क्योंकि जब गांधी जी ही राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रधान संचालक बन गये। गांधी जी कोई नये सैनानी न थे, दक्षिण अफ्रीका में थे सत्याग्रह आन्दोलन कर चुके थे। भारत में उन्होंने उसी अस्त्र के प्रयोग करने का निश्चय किया।

10 सितम्बर 1920 को कांग्रेस के कलकत्ता के अधिवेशन में असहयोग आन्दोलन चलाने का प्रस्ताव पारित हो गया, लोगों से अपेक्षा की गयी कि वे सरकारी उपाधियों तथा अवैतनिक पदों को त्याग दें। सरकारी तथा सरकारी सहायता प्राप्त विद्यालयों का बहिष्कार करें।

आन्दोलन मार्ग :– असहयोग आन्दोलन चलाने के लिए गांधी जी ने सम्पूर्ण देश का भ्रमण किया। गांधी जी के नेतृत्व में स्वदेशी आन्दोलन बड़े जोरों से चला, विदेशी वस्त्रों की होली जलायी गयी और देशी वस्त्रों का प्रयोग आरम्भ हो गया। खादी राष्ट्रीय वस्त्र बन गया।

गाँधी जी अपने असहयोग आन्दोलन को अहिंसात्मक रूप में चलाना चाहते थे। परन्तु वे इसमें सफल न हो सके। 4 फरवरी 22 को जनता की भीड़ में गोरखपुर जिले में चौरीचौरा नामक स्थान पर पुलिस चौकी में आग लगा दी। अन्य स्थानों पर भी दंगे हुए, गांधी जी ने असहयोग आन्दोलन स्थगित कर दिया। गांधी जी को बन्दी बना लिया गया और उन्हें छः वर्ष का कारागार दण्ड मिला। सन् 1922–27 तक का काल हमारे राष्ट्रीय जीवन में घोर अशान्ति का काल था। इस काल में साम्प्रदायिकता भयंकर रूप धारण कर चुकी थी। हिन्दुओं तथा मुसलमानों में भीषण दंगे प्रारम्भ हो गये।

रोगग्रस्त हो जाने के कारण गांधी जी को कारागार से 5 जनवरी सन् 1924 को मुक्त कर दिया गया। साम्प्रदायिक दंगों से गांधी जी की आत्मा को बड़ा कष्ट हुआ, उन्होंने हिन्दू मुस्लिम एकता के लिए प्रयास भी किए किन्तु कोई अच्छा परिणाम नजर नहीं आया।

पूर्ण स्वराज्य प्राप्ति का संकल्प :– 1929 के लाहौर अधिवेशन में कांग्रेस में पण्डित जवाहर लाल नेहरू के सभापतित्व में पूर्ण स्वराज्य का लक्ष्य निर्धारित किया, इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए अहिंसात्मक सविनय अवज्ञा आन्दोलन तथा सत्याग्रह को लक्ष्य साधन बनाया गया। 01 दिसम्बर 1929 को आधीरात के समय रावी नदी के तट पर पं0 जवाहर लाल नेहरू ने स्वतंत्रता का झंडा फहराया। 26 जनवरी सन् 1930 को स्वाधीनता दिवस मनाया गया तथा पूरे देश में सभाएं कर स्वतंत्र होने की प्रतिज्ञा की गयी।

12 मार्च 1930 को 89 सत्याग्रहियों के साथ गांधी जी ने साबरमती आश्रम से अपनी प्रसिद्ध डांडी यात्रा आरम्भ की ओर समुद्र के किनारे जाकर नमक नियम को भंग किया। नमक बनाने का एकाधिकार केवल सरकार को था। गाँधी जी ने नमक बनाकर सरकारी नियम को तोड़ा। सरकार ने अपना दमन चक्र आरम्भ कर दिया

और सत्याग्रहियों को जेल में ठूंसा गया। सन् 1931 में गांधी इरविन समझौता होने के कारण गांधी जी ने कांग्रेस प्रतिनिधि के रूप में लन्दन सम्मेलन में भाग लिया। इस सम्मेलन का परिणाम साम्प्रदायिक अलगाव रहा। जनवरी 1932 ईसवीं में राष्ट्रिय आन्दोलन को दबाने के लिए गांधी जी को जेल में बन्द कर दिया गया। सितम्बर 1939 में द्वितीय विश्वयुद्ध आरम्भ हो गया और ब्रिटिश सरकार बहुत बड़े संकट में फंस गयी। ब्रिटिश सरकार केन्द्र में राष्ट्रीय सरकार बनाने के लिए तैयार न थी। अतएव कांग्रेसी मन्त्रियों ने 8 प्रान्तों से त्यागपत्र दे दिया। इन प्रान्तों में गवर्नर का शासन स्थापित हो गया। इधर सरकार सत्याग्रहियों को जेल भेज रही थी, तो दूसरी ओर वह समझोते का भी प्रयास कर रही थी। बम्बई में कांग्रेस की बैठक 8 अगस्त 1942 को हुई जिसमें "अंग्रेजों भारत छोडो" नामक प्रसिद्ध प्रस्ताव पारित किया गया। अंग्रेज सरकार सतर्क थी, अतः 9 अगस्त सन् 42 को गांधी जी तथा कांग्रेस समिति के सभी सदस्यों को बन्दी बनाकर जेल में डाल दिया गया। प्रान्तीय तथा स्थानीय कांग्रेसियों को भी जेल में बन्द कर दिया गया। परिणाम स्वरूप देशव्यापी हिंसा फूट पड़ी। रेलों की पटरियां उखाड़ी जाने लगीं, टेलीफोन के तार काट दिए गये। सरकारी दफ्तरों में आग लगायी जाने लगी। जिस भीषणता के साथ जनसाधारण का राष्ट्रीय आन्दोलन चल रहा था, उसी कठोरता के साथ सरकारी दमन चक्र भी चल रहा था। सामूहिक तथा व्यक्तिगत जुर्माने लगाए जा रहे थे।

इसी समय श्री सुभाष चन्द्र बोस ने मलाया में अपने देश को स्वतंत्र बनाने के लिए आजाद हिन्द फौज का गठन किया।

महायुद्ध बीत जाने पर इंग्लैण्ड की राजनीति में बहुत बड़ा परिवर्तन हो गया। वहाँ पर चुनाव में मजदूर दल की सरकार बनी, इस दल की भारतीयों के साथ सदैव सहानुभूति रही है, फलतः इग्लैण्ड के प्रधानमंत्री मैजर एटली ने भारत को आजाद करने का निश्चय कर लिया।

स्वाधीनता का अरूणोदय :– परिवर्तन की इस वेला में लार्डमाउन्टबेटन भारत के वायसराय होकर आये। भारत आते ही लार्ड माउन्टबेटन ने भारतीय समस्या को सुलझाना आरम्भ किया। वह इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि भारत का विभाजन अनिवार्य है। कांगेस ने भी अपनी अखण्ड भारत की मांग को त्यागकर खण्डित भारत की योजना को स्वीकार कर लिया। इस प्रकार दो सौ वर्ष की अंग्रेजी दासता के बाद हमारा देश आजाद हो गया।

आचार्य शारदाचरण दीक्षित ने स्वाधीनता के इस महासमर को निकट से देखा, और इसमें सक्रिय भाग लिया। आगरा तो वैसे भी क्रान्तिकारियों की उदभवस्थली रहा है। यही कारण है कि आचार्यप्रवर कांग्रेस के कार्यों से प्रभावित हुए तथा कांग्रेस से जुड़े रहे।

भारतवर्ष का सम्पूर्ण इतिहास : नेत्रपाण्डे पृ0 512

अपने मनोगत भावों, विचारों, तथा दृढ़ आस्थाओं को मूर्तस्वरूप प्रदान करने के लिए उन्होंने "कांग्रेस वैभवम्" का प्रणयन किया। आचार्य जी की दृष्टि में कांग्रेस ही ऐसी संस्था है जो देश की नाव को भीषण झंझावतों से निकाल लायी।

स्वातन्त्रय आन्दोलन में संस्कृत कवियों का योगदांन :–

संस्कृत साहित्य में राष्ट्रीय भावना एवं राष्ट्रप्रेम की समुज्ज्वल एवं पुनीत सरिता प्रवाहित हुई है। स्वाधीनता को सुखमय तथा पराधीनता को दुखमय कहा गया है–

सर्वं परवशं दुखं सर्वमात्मवशं सुखम्।
एतदविद्यात् समासेन, लक्षणं सुख दुखयोः।।

स्वाधीनता आन्दोलन को गति प्रदान करने में समस्त भारतीय वाङ्मय मुखर हुआ है। संस्कृत वाङ्मय की इसमें अग्रवी भूमिका रही है।

निम्नलिखित संस्कृत कवियों का स्वाधीनता आन्दोलन की अग्निशिखा को दीप्त एवं प्रखर करने में महत्वपूर्ण योगदान रहा है –

पण्डिताक्षमाराव :– स्वाधीनता आन्दोलन को अपनी रचनाओं द्वारा मूर्तस्वरूप प्रदान करने वाले कवियों में कवयित्री महापण्डिताक्षमाराव का महत्वपूर्ण योगदान है। पाण्डिता जी का जन्म पूना के प्रसिद्ध संस्कृत विद्वान् श्री शंकर पाण्डुरंग के घर में 4 जुलाई सन् 1890 को हुआ था। इनका निधन 22 अप्रैल 1954 को हुआ। इनकी शिक्षादीक्षा बम्बई के विल्सन कालेज में हुई। आप में राष्ट्रप्रेम की पुनीत प्रवृत्ति प्रारम्भ से ही पनपती रही। तभी तो सन् 1926 में गांधी जी के पास साबरमती के आश्रम में पहुंचकर पण्डिता जी ने स्वतंत्रता संग्राम में सक्रिय कार्य करने की अनुमति मांगी, परन्तु आपकी शारीरिक एवं पारिवारिक स्थिति को देखते हुए बापू ने आपको आज्ञा न दी। पण्डिता जी के हृदय में धधकती राष्ट्रप्रेम की आग साहित्य के माध्यम से प्रस्फुटित हो उठी।

पण्डिता जी ने स्वाधीनता आन्दोलन का विशदवर्णन सत्याग्रह गीता उत्तर सत्याग्रह गीता और स्वराज्य विजयम् नामक काव्यों में किया है। सत्याग्रह गीता में 659, उत्तर सत्याग्रहगीता में 1989 तथा स्वराज्यविजयम् में 1740 पद्य है। तीनों रचनाओं में कुल मिलाकर राष्ट्रीय स्वाधीनता आन्दोलन से सम्बन्धित 4388 वद्य तथा 110 अध्याय है।

सत्याग्रह गीता :– सत्याग्रह गीता का प्रतिपाद्य राष्ट्रीय सत्याग्रह आन्दोलन है। अफ्रीका में महात्मा गांधी द्वारा वर्णभेद की नीति के विरूद्ध चलाए गये आहंसात्मक आन्दोलन से लेकर 1931 के गांधी इरविन समझौता तक के सत्याग्रह का वर्णन पद्यबद्ध है। विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार तथा करों का भुगतान न करना सत्याग्रह का सूत्र हैं–

"ऑग्लवस्त्र बहिष्कारः, प्रत्याख्यानं करस्य च।
थिक्कारो राजभूत्यानां धृतमेतव्वृतत्रयम्।।"[1]

---

1. सत्याग्रहगीता 5/40

पण्डिता जी ने दासता को परिहार्य बताया –

"बलात्कारोऽपि सौढव्यः पृथिव्यामश्रृतोऽपि सन्।
दासत्वग्रस्तदेशस्य क्षमाया नापरा गतिः।।"[1]

महात्मा गांधी का भारत की भूमि पर प्रादुर्भाव साक्षात् नारायण के अवतार लेने के समान हैं–

"तस्मादधर्मनाशाय प्रशान्तेः स्थापनाय च।
गान्धिरूपेण भगवान् अवतीर्णः किमु स्वयम्।।"[2]

स्वराज्यविजय :– इसमें 1945 से 1949 तक के राष्ट्रीय जीवन तथा गांधी जी के मृत्युपर्यन्त चरित्र का चित्रण है। 45 अध्याय वाले इस महाकाव्य में 1740 पद्य है।

उत्तर सत्याग्रहगीता :– 17 अध्याययुक्त इस काव्य में 1989 पद्य हैं। 1931 के गांधी इरविन पैक्ट के बाद से लेकर स्वातन्त्रय संग्राम समापन एवं स्वाधीनता प्राप्ति तक का वर्णन कथ्य का आधार है।

ग्रामज्योति :– महापण्डिता क्षमाराव ने भारतीय स्वातंत्रय संग्राम में गुजरात के ग्रामीण नागरिकों द्वारा किये गये त्याग और बलिदान की कथाओं को 604 पद्यों में निबद्ध किया है। इन कथाओं में राष्ट्रीय प्रेम का उदान्त्त और उद्दाम स्वरूप भासित हुआ है। स्वातन्त्रय आन्दोलन को अपनी साहित्य साधना के द्वारा मुखरित करने वाले संस्कृत कवियों में क्षमाजी का प्रशंसनीय योगदान है।

द्विजेन्द्रनाथ :– राष्ट्रीय भावनाओं से ओत–प्रोत साहित्य का सृजन करने वाले संस्कृत कवियों में श्रेष्ठ श्री द्विजेन्द्रनाथ का जन्म पिता पं0 जानकी नाथ, और माता गंगादेवी के घर में जिला मुजफरनगर के पारसौली नामक ग्राम में सन् 1892 ईस्वी में हुआ। आपकी शिक्षा दीक्षा गुरुकुल विश्वविद्यालय वृन्दावन में हुई। "स्वराज्य विजयम्" नामक महाकाव्य के रचयिता संस्कृत भाषा के राष्ट्रीय उपासक श्री द्विजेन्द्रनाथ 31 मई सन् 1963 को बैकुण्ठधाम सिधार गये।

स्वराज्यविजयम् महाकाव्यम् :– इस महाकाव्य में भारतवर्ष का प्राचीन गौरव, आपसी फूट के कारण देश की अधोगति, वैदेशिकों का आक्रमण, विदेशी शासन के अत्याचार, स्वराज्य प्राप्ति के सम्पूर्ण प्रयत्नों तथा महात्मा गांधी के असहयोग आन्दोलन से लेकर स्वातन्त्रय प्राप्ति तक के इतिहास का सजीव और सचित्र वर्णन है। 20 सर्गों और 945 श्लोकों में आबद्ध यह महाकाव्य भारतीय पुनर्जागरण काल से लेकर स्वराज्य प्राप्ति तक के समस्त इतिवृत्त को आकर्षक एवं चित्तापहारी शैली में समेटे हुए है। ऐसा लगता है कि स्वयं कवि समस्त घटना क्रमों का साक्षी दृष्टा रहा है। कवि की दृष्टि में स्वाधीनता के लिए मरने वाले लोग अमरत्वपद को प्राप्त करते हैं –

---

1. सत्याग्रहगीता 17 / 770
2. सत्याग्रहगीता 18 / 20

"अमृतास्तेहि संजाता, ये स्वातन्त्रयकृते मृताः।
यतः परोपकाराय न भवन्ति मृताः मृताः ।।"[1]

स्वराज्य का सुख भावी पीढ़ी ही पाती है।

"मृत्युः स वा स्यात् यदिराष्ट्रहेतोः, सः नः कृते स्यादमृतत्वमेव।
स्वराज्यसौख्यं तु भावि सन्ततिः, फलत्वरूपेण लप्स्यते तत्।।"[2]

श्री शिव गोविन्द त्रिपाठी जी :– आप स्वाधीनता आन्दोलन के पुरोधा लेखक हैं। आपके द्वारा लिखित गांधी गौरवम् नामक महाकाव्य 8 सर्गों में विभक्त हैं–

श्री गान्धिगौरव महाकाव्य :– यह काव्य इतनी सरल और सुललित भाषा में लिखा है कि जिसका कोई प्रतिदर्श नहीं। गांधी जी के जन्म का वर्णन कुछ इस प्रकार हैं–

"श्री गुर्जरं पोरयुतेऽथबन्थे, नाम्नः सुदाम्नः सुहृदश्च पुर्याम्।
श्री मोड वंशे वणियानां समाजे, जातो महान् उत्तमचन्द्र गाँधी।
गन्धस्य कार्ये नितरां हि लग्नाः, गान्धीति संज्ञामलभन्त पूर्व।
धीमानकार्ये स तु लब्धकीर्तिः श्री कर्मचन्द्रं सुखमेव लेभे।।"[3]

गाँधी जी ने नमक कानून का विरोध कर विदेशी शासन का असहयोग किया–

"लवणकर विनाशो मेस्तिकायं स्तिकायं प्रधानं।
धनरहितजनानां भोजने तत्सहायम्।।
बसुशतमितरूप्यै क्रीयते वर्षमध्ये।
लवणकर विनाशो राज्यलब्धिः स्वहस्ते।।"[4]

नौआरवाली में मुसलमानों ने हिन्दुओं का भारी नरसंहार किया और औरतों का अपहरण कर लिया तब बापू ने दोनों पक्षों को समझाते हुए सम्प्रदायिक एकता और सदभाव का समुपदेश दियाः

"एको हि रामोऽथ, मुहम्मदो वा, द्वावेव नित्यं हृदि संजयामः।
परस्परभेदकरा न मान्या गृहणन्तु शिक्षां श्रुतिसम्मतां ताम्।।"[5]

आचार्य ब्रह्मानन्द शुक्ल :– राष्ट्रीय चेतना की उदभावना में अपना अमूल्य योग देने वाले मनीषियों में अचार्य ब्रह्मानन्द शुक्ल प्रधानाचार्य राधाकृष्ण संस्कृत महाविद्यालय खुर्जा का गौरवपूर्ण एवं महनीय स्थान है। उनके द्वारा प्रणीत गाँधीचरितम् तथा नेहरू चरितम् दोनों महाकाव्य जनतामान्य के हृदय में राष्ट्रप्रेम की निर्झरिणी बहाने में सामर्थ्यवान् हैं। इन दोनों ग्रन्थों में इतिहास और कल्पना का मणिकांचन संयोग हुआ है। इन ग्रन्थों ने जनता के हृदयों में राष्ट्रप्रेमी की अलख जगाने का स्तुत्य कार्य किया। कविवर ब्रहमानन्द शुक्ल ने राष्ट्र की उन्नति में अपना सर्वस्व

---

1. स्वराजविजयमहाकाव्यम् : द्विजेन्द्रनाथ कृत : श्लोक 1/45
2. वही : श्लोक 15/35
3. श्री गान्धिगौरवमहाकाव्यम् : शिवगोविन्द त्रिपाठी 1/8/9
4. वही : 3/19
5. वही : 8/22

लगाने वाले मनुष्यों को वन्दनीय बताते हुए जनतामान्य को राष्ट्रदेव के आराधन के लिए प्रेरित किया है–

"ये मानवामनुजतां परिपालयन्तो, राष्ट्रोन्नतो निजधियम् विनियोजयन्ति
ते वन्दनीय चरणा उभयत्रनूनं, लब्ध्वाऽतिविमलं सततं जयन्ति।।"

यह कहना समीचीन होगा कि शुक्ल जी के ग्रन्थद्वय ने स्वाधीनता आन्दोलन में कूद पड़ने के लिए असंख्य भारतीयों को प्रेरित किया।

पण्डित लक्ष्मीनारायन द्विवेदी :– श्री द्विवेदी संस्कृत साहित्य के उपासक कवि हैं। आपका जन्म चैत्र कृष्णा अमावस्या दिन सोमवार संवत् 1955 तदनुसार 10 अप्रैल सन् 1899 ईसवी में फर्रूखाबाद जनपद के तिर्वा नामक स्थान पर हुआ। 14 अगस्त सन् 1980 को आपका भौतिक शरीर पंचत्व में विलीन हो गाया।

पुरूसिकन्दरीयम् :– यह महाकाव्य ऐतिहासिक तथ्यों पर आधारित है। वीररस से पर्ण इस महाकाव्य में 18 सर्ग है। लगभग 1100 पद्यों का यह महाकाव्य साहित्य, कला, कोष, व्याकरण और छन्दोविधान से परिपूर्ण है। भारतीय इतिहास के महापुरूष पर्वतेश्वर (राजा पुरु) और ऐतिहासिक आक्रान्ता विश्वविजेता बनने का दिवास्वप्नदर्शी यूनानदेशीय, सिकन्दर के भीषण संग्राम का चित्रण इस काव्य में है। कवि इस काव्य के द्वारा भारतीय जनता को स्वाधीन भारत का स्वप्न दिखाना चाहते हैं–

"मम किं भविता, जनस्य मे भविता किं स्थिति दुश्यते वदि।
विषये समुपस्थिते मये, जनता देशहितं विपात्यते।।"[1]

महाराज पुरू को उनकी धर्मपत्नी के द्वारा दिया गया यह उपदेश आज भी परम प्रासंगिक है–

"कोषं ददासि यदि तस्य ददाति मार्गम्।
देशं ददासि यदि, तस्य पदे स्वमानम्।।
एतत्त्वया यदि कृतं तव का कथास्यात्।
वाण्यां सतां भुवि नृपालपदेन जातम्।।"[2]

डॉ. श्रीधर भास्कर वर्णेकर :– डॉ. वर्णेकर उन स्वानाम धन्य संस्कृत कवियों में अग्रगण्य हैं जिनके वीररस आध्यायित शिवराज्योदयम् महाकाव्य से धमनियों में रक्त का संचार तीव्र हो उठता है। आपका उक्त महाकाव्य आपके यश और वैदृश्य का परिचायक है।

शिवराज्योदय महाकाव्यम् :– डॉ. वर्णेकर प्रणीत यह महाकाव्य 68 सर्गों में विभक्त है। इसका एक एक पद्य भुजाओं को पहकाने वाला है। माता जीजाबाई के द्वारा शिवाजी को बालकपन में ही यह पाठ पढ़ा दिया गया था कि पुत्र क्षात्रधर्म की स्थापना करना तथा सदा समता का बर्ताव करना अहिंसा का पालन करना किन्तु दुष्टों को

---

1. पुरूसिकन्दरीयम् : पं. लक्ष्मीनारायण द्विवेदी : 2/29
2. वही : 4:47

कसते रहना –

''मान्यः समे यः परमो हि धर्मः परं स सापेक्षतयैव सैव्यः।
देव दुहां पापकृतां खलानां जानीहि हिंसामपि तामहिंताम्।।''[1]

भारत भूमि पुण्य भूमि है। म्लेच्छों से आक्रमित है। हे पुत्र प्राणों के व्यय से भी इसकी रक्षा करो–

'म्लैच्छैश्चिरायाक्रमिताऽतिपापैः, या मातृभूमिस्तवपुण्य भूमिः।
प्राणव्ययैनापि विमौचयैनां, कर्तव्यमेतत् तव जन्मसिद्धम्।।''[2]

सम्पूर्ण भारत वर्ष की निगाहें, शिवाजी पर अटकी हुई थीं, सबकी जिह्वा पर बस एक ही नाम था– शिवाजी।

''कुटीरे कुटीरे प्रसन्नान्तराणां, शिशुनां च यूनां च सीमन्तिनीनाम्।
ननर्तैव जिह्वाग्रमचे अभिधानम्, शिवाजिः, शिवाजिः शिवाजिः शिवाजिः।।''[3]

यह कहना अतिशयोक्तिपूर्ण न होगा कि श्री वर्णेकर प्रणीत शिवराज्पोदय महाकाव्यम् के द्वारा राष्ट्रभक्ति का प्रचार प्रसार उस समय हुआ जबकि राष्ट्र को इसकी परम आवश्यकता थी।

भारतीय स्वाधीनता आन्दोलन एक ऐसा महासमर था जिसमें हर भारतीय नागरिक ने योद्धा बनकर वैसे ही अस्त्र शस्त्र का प्रयोग किया जो उसके पास था, संस्कृत के कवि भी इस बात में पीछे न रहे, उन्होंने अपनी लोह लेखनी के द्वारा राष्ट्रभक्ति से लवालव ऐसे ग्रन्थरत्नों की रचना की जो जनमानस में स्वराष्ट्र गौरव, और स्वराष्ट्र अभिमान की भावना का संचार कर सकें।

हरिदास सिद्धान्त वागीश :– स्वातन्त्रयोन्मुखकाल खण्ड में संस्कृत के विद्वान नाटककारों ने राष्ट्रप्रेम के ऐतिह्य आधार वाले नाटक लिखे। नाटक रंगमंच पर अभिनीत होकर एक विशाल जन समुदाय को वांछित संदेश देते रहे हैं। यही कारण है कि इन नाटकों का स्वाधीनता आन्दोलन पर चमत्कारी प्रभाव पड़ा। ऐसे नाटककारों में हरिदास सिद्धान्त बागीश का नाम बहुश्रुत है। बागीश जी का जन्म 1876 ई. में फरीदपुर जिले के कोटालीपाड़ ग्राम में हुआ। माता का नाम विधुमुखी और पिता का नाम गंगाधर था। संस्कृत साहित्य का यह सुधी उपासक 25 दिसम्बर सन् 1961 को पंचत्व को प्राप्त हो गया। भारत के महामहिम राष्ट्रपति जी ने आपको सम्मानित किया।

मिवारप्रताप नाटकम् :– राष्ट्रभक्ति के मूर्तिमान स्वरूप महाराणा प्रताप का चरित्र स्वयं में एक ऐसा नाटक है, जो जनसाधारण को ही स्वातन्त्रयोन्मुख करने में सर्वथा सक्षम है। प्रताप का चरित्र भावी पीढ़ियों के लिए भी प्रेरणा स्त्रोत है। यही विचार कर हरिदास सिद्धान्त बागीश ने ''मिवार प्रतापनाहकम्'' का प्रणचन किया। राणाप्रताप

1. शिवराज्योदयम् : डॉ. वर्णेकर कृत 5/38
2. वही : 5/53
3. वही : 4/57

ने भारत माता की मुक्ति के लिए सम्राट अकबर को परास्त करना अपना लक्ष्य बनाया। चित्तौड़ का उद्धार करना उनका प्रथम लक्ष्य बिन्दु रहा। राणाप्रताप ने प्रतिज्ञा कर रखी है कि वे जब तक चित्तौड़ को दासता से मुक्त नहीं कर लेंगे तब तक तिनकों की शैया पर सोयेंगे। पात्रों में भोजन नहीं करेंगे, राजसीवस्त्रों को धारण नहीं करेंगे। और इसी प्रतिज्ञा को पूरी करने के लिए वे जगत्जननी जगदम्बा से समरविजयी होने की विनती करते हैं।

"रामस्य भीष्मस्य धनंजयस्य यथा प्रतिष्ज्ञा सफलाकृता त्वया।
तथा प्रतिज्ञां सफलां कुरुष्व नः चिरं च भूयाः समरे सहायिनी।।"[1]

शिवाजीचरितनाटकम् :– शिवाजीचरितम् नाटक 10 अंकों में विभक्त है। जैसा कि नाम से स्पष्ट है कि नाटक के नायक छत्रपति शिवाजी हैं। यह नाटक भी ऐतिहासिक कथानक पर आधारित है तथा राष्ट्रभक्ति से परिपूर्ण हैं।

पंचाननतर्करत्न :– न केवल लेखनी से अपितु शरीर से भी राष्ट्रीय स्वातन्त्रय आन्दोलन में सक्रिय भूमिका करने वाले न्याय और साहित्य के प्रकाण्ड पण्डित पंचानन जी का जन्म पश्चिम बंगाल के जिला चौबीस परगना के अन्तर्गत माटपाड़ा नामक नगरी में 1866 वीं ईसवी में हुआ था। आपके पिता श्री नन्द्लाल जी थे। स्वाधीनता आन्दोलन के अन्तराल में सन् 1907 में अलीपुर बम विस्फोद की घटना के सम्बन्ध में आपको बन्दी बना लिया गया। अंग्रेजी शासन को ठेंगा दिखाकर आपने अनुशीलनी क्रांतिकारी पार्टी का गठन किया। महामहोपाध्याय की सरकारी उपाधि को आपने वापस कर दिया। राष्ट्रीय जागरण व नवचेतना के संचरण के लिए आपने संस्कृत भाषा में दो प्रसिद्ध नाटक भी लिखे।

अमरमंगल नाटकम् :– महाराणा प्रताप का पुत्र अमरसिंह नाटक का नायक हैं। मान सिंह अमर सिंह को मुगलों के अधीन करना चाहता है। मानसिंह की सभी चालें बेकार हो जाती हैं और अन्त में अमर सिंह का राज्याभिषेक होता है। यह नाटक स्वतन्त्रता प्रेमियों के लिए अत्यन्त प्रेरणादायक है।

पं0 मूलशंकर मणिकलाल याज्ञिक :– प्रतापविजयम् संयोगिता स्वयंवरम् और छत्रपति साम्राज्यं जैसे नाटकों के प्रणेता पं0 मूलशंकर याज्ञिक का जन्म गुजरात प्रान्त के खेड़ा जनपद के नडियाद ग्राम में पिता माणिकलाल और माता अतिलक्ष्मी के घर में 31 जनवरी 1886 को हुआ। अरविन्दघोष जैसे दिग्जयी विद्वान से आपने शिक्षा पायी।

प्रतापविजयनाटकम् :– महाराणा प्रताप से सम्बन्धित ऐतिहासिक कथानक पर आधारित यह नाटक सुधी पाठकों के लिए अत्यन्त आकर्षण एवं ग्रह्य है। मानसिंह ने जब भोजन के समय प्रताप को न आया देखा तो उसका माथा ठनका। बुलवाने पर प्रताप का स्पष्ट उत्तर था आप अकबर के सम्बन्धी हैं, अकबर विदेशी शासक है,

---

1. मिवारप्रतापनाटकम् : बागीशजी कृत : प्रथम अंक

अकबर मेरा व राष्ट्र का शत्रु हैं, आपसे हमारी मैत्री कैसे हो सकती हैं ? अतः हमारे साथ आपका सहभोज कैसे हो सकता हैं ? इस अपमान से कुद्ध मानसिंह जाते जाते कह गया –

"सद्यः समेत्य शमयामि तवावलेपम्।"[1]

संयोगिता स्वयम्बरम् :– इस नाटक में कन्नौज नरेश जयचन्द्र तथा पृथ्वीराज विषयक आख्यान को आधार बनाकर नाटक का प्रणयन किया गया है। नाटक में 7 अंक है। पृथ्वीराज की सेना के द्वारा जयचन्द्र का वध और पृथ्वीराज संयोगिता के विवाह के साथ नाटक का अन्त हो जाता है। नाटक का लक्ष्य राष्ट्रभक्तों की विजय का प्रदर्शन है।

छत्रपति साम्राज्यनाटकम् :– याज्ञिक जी द्वारा लिखित यह नाटक सच्चा इतिहास है। दस अंकों में शिवाजी के राज्यारोहण तक का वर्णन है। शिवाजी स्वतन्त्र साम्राज्य की स्थापना की चाह में सिंहगर्जना करते हैं–

"पित्रोर्गुरोश्चाधिगतार्थविद्यो, वीरानुरक्तैः सवयोभिरावृत्तः।
स्वराज्यसंस्थापन निश्चितव्रतो, गर्जत्ययं केसरिणः किशोरः।।"[1]

महामहोपाध्याय मथुरा प्रसाद दीक्षित :– स्वाधीनता संग्राम के समर में देश के युवकों को "राष्ट्रदेवोभव" का मंत्र देने वाले, देशोस्थान के समधानुकूल, साहित्य का सृजन करने वाले, महामहोपाध्याय पं0 मथुरा प्रसाद दीक्षित का जन्म जिला–हरदोई के ग्राम भगवन्तनगर में सन् 1878 ई. को हुआ। पिता पं0 बद्रीनाथ दीक्षित और माता कुन्ती देवी से नाट्यकला उनकी स्वकीया थी। आपने वीर प्रताप, भारतविजय, वीर पृथ्वीराज विजय तथा गाँधी विजय तथा भूभाग आदि नाटकों का प्रणधन तथा मंचन कराकर राष्ट्रप्रेम की ऐसी सरिता प्रवाहित की जिससे तत्कालीन स्वाधीनता आन्दोलन को बड़ा बल मिला।

वीर प्रताप :– वीर प्रताप नाटक के सात अंक हैं। राणा प्रताप के राज्याभिषेक के समय वैश्या का नृत्य आयोजित होता है। वैश्या की प्रथम चिरकन होते ही प्रताप नृत्य के आयोजन को रोककर तलवार खींच लेते हैं और प्रतिज्ञा करते हैं कि जब तक मेरी धमनियों को रोककर तलवारीं खींच लेते हैं और प्रतिज्ञा करते हैं कि जब तक मेरी धमनियों में रक्त है तथा शरीर में प्राण हैं तब तक म्लेच्छ अकबर की दासता को स्वीकार न करूंगा और सम्पूर्ण भारत वर्ष की स्वाधीनता के लिए भरसक प्रयास करता रहूंगा–

---

1. प्रतापविजयनाटकम् : मूलशंकर याज्ञिजक : 1/24
2. क्षत्रपति साम्राज्यम् : मूलशंकर याज्ञिक कृत।

"यावन्मे धमनीमुखेषु रूधिरं क्लेदोऽपि सन्तिष्ठते।
मांस वास्थिनि तिष्ठति क्वचिदपि प्राणाः शरीरे स्थिताः।
तावन्म्लेच्छपतेः कथंचिदपि न प्राप्स्याम्यहं दासताम्।
स्वातन्त्रयस्य पदं समस्त वसुधां नेतुं यतिष्ये भृशम्।।"[1]

राणा प्रताप देश की स्वाधीनता के लिए सपरिवार मारे–मारे फिरते रहे और एक दिन शोकाकुल प्रताप टूट जाते हैं तथा अकबर के नाम सन्धिपत्र लिख देते हैं–

"दुःखादुद्विग्नचेताः क्षुभित निजसुतांक्षीणकायं कलत्रम्।
दृष्ट्वोदभ्रान्तः स्वरक्षाविधिमखिलमसं नैव कर्तुं समर्थः।
तस्याद् युद्धाद् विरक्तः शमय रणकथां जायतां वृत्तमेतत्,
सांगापौत्रः प्रतापो यवनपतिपदे याचते सन्धिचर्चाम्।।"[2]

अकबर को यह आभास कराया गया कि हो सकता है यह पत्र नकी हो। इधर योगिनी (पूर्व वैश्या) के जागरण मन्त्र से प्रभावित होकर भामाशाह 40 कोटि धन को सैन्य सज्जा के लिए प्रताप के चरणों में अर्पित कर देते हैं। अन्त में प्रताप चित्तौडगढ़ को जीत ही लेते हैं। इसी प्रकार वीर पृथ्वीराज नाटक भी राष्ट्रद्रोही जयचन्द पर राष्ट्रभक्त पृथ्वीराज की जीत का प्रमाण है। इधर विदेशी शासक गौरी भारत पर आक्रमण करता है। गौरी को परास्त जान पृथ्वीराज के सामन्त विजयोल्लास मनाते हैं सभी धोखे से पृथ्वीराज को बन्दी बना लिया जाता है। पृथ्वीराज चौहान चापकौशल दिखाते समय गौरी का वध कर देते हैं। यद्यपि पराजय दुःखान्त स्थिति पैदा करती है तथापि वैर शोधन से दुःखान्तता दुषक सी जाती है पर इसे सुखान्तता भी नहीं कहा जा सकता। भारतीय स्वाधीनता समर लगभग एक शतक वर्षों तक चला। प्रत्येक भारतीय का जनमानस हजारों वर्ष की गुलामी के काले कपन को उतार फेंकन के लिए उतावला था। राष्ट्रभक्तों की टोलियाँ राष्ट्र की बलिवेदी पर आत्महुति के लिए उन्मुक्त सी डोलती थीं। सर्वत्र अंग्रेजी शासन का विरोध हो रहा था। इस वायुमंडल को भति प्रदान करने के लिए संस्कृत के विद्वानों तथा कवियों ने ऐसे साहित्य का सृजन किया जिससे स्वाधीनता यज्ञ की अग्नि और अधिक प्रदीप्त हो उठी, और उसका प्रतिफल राष्ट्र को प्राप्त हुआ।

<u>एकमात्र विश्ववन्ध व्यक्तित्व महात्मागांधी एवं विश्वविख्यात संस्था काँग्रेस विषयक सामग्री का समाहार :–</u> राष्ट्रपिता महात्मागांधी अहिंसात्मक राजनीति और आध्यात्मिकता के एकमात्र देवदूत थे। भारतीय इतिहास में महात्माबुद्ध के बाद गांधीजी से अधिक महान या तत्समकक्ष पुरूष उत्पन्न ही नहीं हुआ। उनके लिए विश्ववन्ध का विशेषण पर्याप्त सोच–विचार के बाद ही निर्धारित किया गया है। जिस प्रकार लेनिन के बिना रूस और मार्क्स के बिना अमेरिका की कल्पना नहीं है उसी

---

1. वीरप्रतापनाटकम्।
2. वीरप्रतापनाटकम्

प्रकार महात्मा गाँधी के बिना भारती और भारतीयता का रेखांकन करना असंभव है।

सत्य, अहिंसा और प्रेम इन तीन अस्त्रों के सहारे उन्होंने भारत को परतन्त्रता के पाश से मुक्त कराया, जीवन भर कष्ट झेले, यातनायें सहीं, उपवासों के द्वारा शरीर को जर्जर बनाया और कारागारों के कष्टों को सहा। गाँधी जी ने जिस समय भारतीय राजनीति में प्रवेश किया उस समय भारतीय राजनीति लोकमान्य बालगंगाध ार तिलक के हाथों में थी। गाँधी जी ने पूरे देश का भ्रमण करके स्वाधीनता प्राप्ति का ऐसा अलख जगाया कि पूरा राष्ट्र उनका अनुगामी बना। कभी रोलेट एक्ट का विरोध, तो कभी असहयोग आन्दोलन का शंखनाद और कभी नमक कानून तोड़ "दांडी" यात्रा। 1942 का प्रसिद्ध भारत छोड़ों आदोलन उनके नेतृत्व में रंग लाया। गाँधी जी ने स्वतंत्रता प्राप्ति के लिये देश में ऐसा आन्दोलन का झंझावात चलाया जिससे देश की जेलें भर गयीं, और अंग्रेज सरकार ने यह समझ लिया कि अब बहुत दिनों तक भारत पर शासन नहीं किया जा सकता। अन्त में विश्वबन्धु बापू के नेतृत्व में 15 अगस्त 1947 ई0 को भारतमाता के पैरों में पड़ी बेड़ियाँ कट ही गयीं।

<u>कांग्रेस का उद्गम :–</u> वस्तुतः स्वाधीनता से पूर्व कांग्रेस का राजनैतिक उद्देश्य तो था ही परन्तु साथ ही वह राष्ट्रीय पुनरूत्वान के आंदोलन का प्रतिपादन करने वाली संस्था भी थी। सन् 1884 में मिस्टर ए.ओ. ह्यूम के मस्तिष्क में यह विचार आया कि यदि भारत के प्रधान–प्रधान राजनैतिक पुरूष वर्ष में एक बार एकत्रित होकर सामाजिक विषयों पर चर्चा कर लिया करें तो इससे बड़ा लाज होगा। अतः 1885 में यह तय हुआ कि बड़े दिनों की छुट्टियों में देश के सभी भागों के प्रतिनिधियों की एक सभा की जाएं। बम्बई के गोकुलदास तेजपाल संस्कृत कालेज के भवन में 28 दिसम्बर 1885 को कांग्रेस का पहला अधिवेशन हुआ। जिस प्रकार एक बड़ी नदी का मूल एक छोटे से स्त्रोत में होता है, उसी प्रकार महान् संस्थाओं का आरंभ भी बहुत मामूी होता है। जीवन की शुरूआत में वे बड़ी तेजी के साथ दौड़ती हैं परन्तु ज्यों–ज्यों वे व्यापक होती जाती हैं। वैसे ही वैसे उनकी गति मन्द किन्तु स्थित होती जाती है।

आरम्भ में तो कांग्रेस ने अपने सामने छोटे–छोटे आदर्श रखे थे परन्तु ज्यों ही उसे भारत वासियों के प्रेम का उपहार मिला उसने अपना मार्ग व्यापक बना लिया। यही कांग्रेस भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन की संवाहिका बनी। इसी कांग्रेस ने ब्रिटिश सरकार की दमन नीति का विरोध करके देश में नई राष्ट्रीय जागृति पैदा की। स्वाध ीनता आन्दोलन का महासमर इसी संस्था के झंडा तले लड़ा गया, और भारत राष्ट्र ने वैदेशिक परतंत्रता को धता बताकर स्वतंत्रता को राष्ट्रीय आसन पर अभिविवत किया।

---

1. कांग्रेस का इतिहास : ले. पट्टाभिसीतारामैया
   सस्तासाहित्यमंडल नई दिल्ली।

हमारे विवेच्य कविगणपति आचार्य शारदाचरणदीक्षित ने राष्ट्रपिता महात्मागाँधी और कांग्रेस को समीप से देखा एवं समझा था, उन्होंने स्वतंत्रता के इस संग्राम में बढ़ चढ़कर भाग लिया था। वे भारतमाता की जय का उद्घोष करते हुए कारागार भी गये थे।

दीक्षित जी की अमर लेखनी ने "गांधिचरितम्" और "कांग्रेस वैभवम्" खण्ड काव्य लिखकर अपने विनम्र भाव सुमन प्रस्तुत किये हैं। दीक्षित जी गाँधी जी को कांग्रेस से और कांग्रेस को गांधी जी से पृथक नहीं समझते थे, यही कारण है कि अपनी हस्तलिखित लिपि में जिस रचना को वे गांविचरितम् लिखते रहे उसी को कांग्रेस चरितम् के नाम से भी अभिहित करते रहे। पांडुलिपि के अनेक पृष्ठों पर गांधिचरितम् और कांग्रेसचरितम् दोनों का उल्लेख है।

यद्यपि हस्तलिखित दो पांडुलिपियों में महाकविगणपति प्रणीतं कांग्रेस वैभवमहाकाव्यम् तथा दूसरी पांडुलिपि में थोड़े परिवर्तन के साथ वही कथावस्तु कांग्रेस कथा के नाम से उपलब्ध है। यद्यपि कांग्रेस कथा के पद्य पृथक रचित है किन्तु उनें कांग्रेस वैभवम् और कांग्रेसचरितम् के कतिपय श्लोक दृष्टिगोचर होते हैं।

वस्तुतः आचार्य शारदा जी कांग्रेस को आदर की दृष्टि से देखते थे, कदाचित उनका यह मन्तव्य रहा हो कि इनमें से कोई एक रचना प्रकाश्यता को प्राप्त करें।

चरितकाव्य की दृष्टि से गांधि–चरितम् की आलोचना :– गाँधी चरितम् कविगणपति आचार्य शारदाचरण दीक्षित द्वारा रचित लघुचरित काव्य है। भारतीय स्वाधीनता आन्दोलन के जनक विश्ववन्त महात्मा गांधी के नाम को पूरा विश्व जानता है। यद्यपि महात्मा गांधी के व्यक्तित्व को लेकर गांधिचरितम् की रचना का प्रादुर्भाव छठवें दशक में हो चुका था।[1]

शुक्ल जी रचित इस काव्य में महात्मा गांधी के चरित्र को विस्तृत एवं विशदरूप में चित्रित किया गया है।

आचार्य शारदाचरण दीक्षित का गांधिचरितम् लिखने का प्रयास अपने में पूर्ण, अद्वितीय एवं असाधारण है। इसका कलेवर केवल 120 पद्यात्मक है। चरितकाव्य की दृष्टि से गांधिचरितम् का स्वरूप इस प्रकार है।

आवतारिक परिस्थितियाँ :– कवि का विचार है जब जब भारतभूमि के यश पर कलंक और पापों की छाया पड़ती है तब तब पवित्र भारत भूमि की रक्षा के लिये स्वयं भगवान अवतरित होते हैं–

"यदा यदा धर्मधरायशश्चयश्चुचुम्ब, कृत्सांकितकिल्विषं विषम्।
तदा परित्राण कृपाणपाणिः, व्युदेति लोके स्वयमेव लोकभूत।।"[2]

पहले तो यवनों ने अपने अत्याचारों से तलवार की धार से इस भारत की भूमि

---

1. गान्धिचरितम् : ले. आचार्य ब्रह्मानन्द शुक्ल प्रधानाचार्य राधाकृष्ण संस्कृत महाविद्यालय खुर्जा : सा. प्रकाशन, मेरठ।
2. गान्धिचरितम् : शारदाचरण दीक्षित : श्लोक सं. 7

को लूटा खसोटा, बर्बर आक्रान्ता बनकर देव मन्दिरों को लूटा, और नष्ट किया, और मुस्लिम संस्कृति का प्रचार करते हुये इस भारत की भूमि को रौंदा, अपमानित और प्रताड़ित किया–

"रसाभवस्कन्दकृपाणधारया, सदैवदुर्गाणिमुषाणदस्युवत्।
य इत्यलमस्वास्थ्यमकार्यं हर्निशं, जिगीषया यावन यावनीहया।।"[1]

अबलाओं पर अत्याचार बढ़ रहे थे, अपने बल के घमंड पर मुगल सम्राटों ने महिलाओं के मीनाबाजार खोले। जिनमें दुराचारी मुगलसम्राट उनके शील का अपहरण करता था–

"बलावलेपादनुशासनासना, दुपात्तमीनापणयेषितां गणात्।
जहार सः शीलमशीलशीलना, दनारतं योऽवनि यावनेश्वरः।।"[2]

अंग्रेजों का भारत–प्रवेश :– मुगल बादशाहों की आपसी कलह भारत की पवित्र भूमि को कमजारे कर चुकी थी, अतः पारस्परिक कलह एवं अन्तर्द्वन्द्व का लाभ उठाकर व्यापार के बहाने अंग्रेजों ने भारत में प्रवेश किया और वे व्यापार कर्म करते करते भारत के शासक बन बैठे–

"वलोल्वलेतदवलहीयमानता, मुपेत्यलोकायतलोकलीलया।
विवेश गौरांग विशेषकोमिषा, दशेषशेषाय विशेषशेषवत्।।"[3]

दमनचक्र प्रवर्तन :– अंग्रेजों के दमन चक्र ने भारतीयों को बहुत मर्दित किया। जनता का सुख चैन छीन लिया गया। उनकी कुटिल शासन नीति से इतनी व्यग्रता बढ़ गयीं थी कि छाया में भी धूप का तीखापन अनुभव होता था।

"अनातपेऽप्या तपतापतिग्मतां, ततानया नार्जव शासनीयता।
शयेनगौरांग धुतेन चेतसा, धयामि तामात हेतहीनताम्।।"[4]

भीषण संकटों का उपहार देने वाली अंग्रेज सरकार ने भारत भूमि को सुखों से वंचित कर दिया। संस्कृत अत्याचारों की चर्चा ही क्या की जावे, ऐसा कोई अत्याचार न बचा जिसे उन्होंने न किया–

"असाम्प्रतं साम्प्रतमित्युदाहरन्, हरन् मदीयं वसुधासुधासुखम्।
असोपधानाभिवसोपधाधिया, चचार किंकिं न विषं संकिल्विषम्।।"[5]

आर्तत्राण की पुकार :– भारत भूमि अंग्रेजों के भार से बोझिन हो रही थी। भारतीयों के नेत्रों से निकले अश्रुओं के सागर में डूबा भारत आर्तनाद कर उठा –

---

1. गान्धिचरितम् : शारदाचरण दीक्षित : श्लोक 17
2. वही : श्लोक 17
3. वही : श्लोक 18
4. वही : शा.च.दीक्षित श्लोक सं0 21
5. वही : श्लोक

"इतीरयित्वाऽश्रुघनाघनेडर्णवे, धुतापतदिभ्र्नयनैरिवस्वकैः।
निमज्जयन् भारत वः सुभारतः, सदारूणंकारूण मद्रवीद्वचः।।"[1]

हे दया के सागर परमात्मा अपनी पूर्वपरम्परा धर्म का पालन करते हुये इन दुष्टों के संहार के लिये आप स्वयं क्यों नहीं अवतरित हो रहे हो–

"अदोऽपि किं नोदय सेदयाधनः, परानिहोदान्त स्वरानिवस्वयम्।
निहन्तुमेकेक पदेयथायथम्, परम्पराधर्मधरा धरीधिया।।"[2]

हे प्रभो ! जो दुष्ट शत्रु दण्ड साध्य एवं दण्ड के पात्र होते हैं उनके प्रति सारल्य व्यवहार निरर्थ होता हैस्वेदन क्रिया (वाष्प स्नान) से चिकित्सा करने वाला वैद्य रोगी को स्वेदनोपरान्त कहीं जल से स्नान कराता है ?

"सदण्डसाध्येवितथैव सामता, मतापकारायरिपौ विधानतः।
यथाऽमयं स्वैधमुपेत्य सायकं, भिंषग्जनः पिंचति कोऽम्भसाक्वचित्।।"[3]

जो व्यक्ति प्रकर्ष पूर्वक शत्रुओं से वैरभाव करके फिर उनके प्रति उदासीन हो जाते हैं वे उसी प्रकार नष्ट हो जाते हैं जैसे घास में रखी आग प्रज्वलन के बाद उतने अन्तरिक्ष की वायु को अपनी ऊष्मा से नष्ट कर देती है। यद्यपि वही आग बिना वायु के जल भी नहीं सकती।[4]

शत्रु अनुपचारित होने का लाभ उठाकर, अवसर पाकर असाध्य व्याधि के समान कुपित हो जाता है–

"परैरनाविष्कृत्तविक्रियक्रियाकृतापचारः कुरूते विकुत्सितम्।
असाध्यव्याधेरिव कुप्यतेयतेऽप्युपेत्यकालक्रमणं यथायथम्।।"[5]

हे भगवन् ! आपके पवित्र चरण कमलों की धूलि में असीमित शत्रुओं को नष्ट करने का सामर्थ्य रहा है। फिर अब अपने अनुचरों पर आप करूणा क्यों नहीं कर रहे हैं–

"विरेजिरे पावनपादपंकजे रजेऽमितारातिनिपीड़िता दिशाः।
ततोऽपि किन्नो करूणायतेयते, त्युपेक्ष्य नैजानुचरं चिरन्तनम्।।"[6]

<u>भगवान के द्वारा प्रार्थना श्रवण :–</u> दुर्दिन दुर्मनापित भारत राष्ट्र की पुकार को तीनों लोकों के पालन करने वाले नारायण ने सुना, जिस प्रकार भगवान शिव की जटाओं से गंगा तथा ब्रहमा से प्रजाओं का उदगम हुआ, उसी प्रकार भगवान नारायण से दिव्यवाणी अंग्रेजों के नाश के लिये अवतीर्ण हुई–

---

1. वही : श्लोक सं0 25
2. वही
3. गांधिचरितम् : शारदाचरण दीक्षित : श्लोक
4. प्रकर्षमर्षेणविधायवैरता, मुदासते येऽरि जनेषु मानवाः।
   त एव मुत्क्षिप्य हुताशनं तृणेऽभिमारूतं मारूतवद्विशेरते।।
5. गांधिचरितम् : शारदाचरण दीक्षित : श्लोक 35
6. वही :

ततस्त्रिलोकीतिलकस्त्रिलोकमृत, ततानतूर्णं श्रुतिमा मुखादिव।
गरीयसीगौरगिरं सगौरवम्, रवाय गौरांग हतायताययन्।
सुरापगाशम्भुजटातटादिव, त्रिविक्रमांकाज्जनित प्रजाइव।
अतीतनक्षत्रपथानि पाथयन्, हरिप्लुतासावततार भारती।।"[1]

अरे पाणियों अपनी भलाई चाहने वाले पुरूष को बढ़ते हुए शत्रु पक्ष की उपेक्षा नहीं करनी चाहिये। शत्रुता रोग के समान चिनगारी के समान, सर्प के समान, कभी भी वृद्धि को प्राप्त कर कभी भी अहितकर हो सकती है।

"उपेक्षणीयान परस्पक्षता विवर्धमाना निजपथ्य मिच्छता।
विवक्षिता सामयवत् स्फुलिंगवत् भुर्जगवत् वालिशवत् श्रृगालवत्।।"[2]

आप लोग मेरी शरण में आ चुके हो– अपनी आंसुओं की वर्षा को समाप्त करो। अपनी अकारण कुण्ठा और रोष को समाप्त करो। मैं तुम्हारी कष्ट निवृत्ति करूंगा।

"अतोमदुत्संग विभूषणंभवन् समाप्य प्रावृषमश्रुवप्रुषाम्।
परित्यजाकारणरोषणेरूष विदाललेयं तव दीनदीनताम्।।"[3]

भारतभूमि द्वारा आभार प्रदर्शन :– तब नारायण के द्वारा प्रदत्त सान्त्वनावचनों से उपकृत होकर, विनम्रभाव से भारत ने कहा– "दूसरों पर अहेत की कृपा करने वाले नारायण को नमस्कार, अद्‌भुत कर्म करने वाले नारायण को नमस्कार और सर्वतंत्र, त्रिलोकीनाथ को नमस्कार। जब दया के भंडारनारायण की थोड़ी भी कृपा हो जाती है तब भवसागर भी स्थल बन जाता है, और वह गाय के खुर के समान लांघा जा सकता है–

"यदाऽनुभूयेत दवीयसी दया, दयानिधानस्य विधानवज्जैन।
तदा महिम्नां महतां समागतमात्, भवाम्वुधिर्भूरिव गोष्पदायते।।"[4]

पोरबन्दर में गांधिअवतरण की घोषणाः– दयानिधान भगवान ने आकाशवाणी की कि गुजरात प्रान्त के पोरबन्दर नगर में भारतदासतापहारक एवं राष्ट्रीय स्वतंत्रतापादक महान पुरूष का अवतार होगा–

"पुरन्दराणां पुरिपोरबन्दरे, दरादराभ्यांदरणीरणी भुवाम्।
कृतावतारस्य भविष्णुतामला, मलन्विलालयिष्यामि लवैरवैरताम्।।"[5]

महात्मा गांधी का जन्मः– भगवान ऐसा कहकर अन्तर्हित हो गये। इधर राजकोट के दीवान कर्मचन्द्र गांधी के घर में 2 अक्टूबर 1869 ईसवी को गांधीजी का प्रादुर्भाव हुआ।

---

1. गान्धिचरितम् : शारदाचरण दीक्षित : श्लोक 39–40
2. वही : श्लोक 42
3. वही : श्लोक 44
4. वही : श्लोक 46
5. वही : श्लोक 51

"इतिबुवन्तस्तिरयाम्बभूविरे, समृदधया संगिरयाश्रिताश्रिया।
ततः पराधीनपथव्यथावधौ, ह्यवातरन् गान्धिगृहे महाधनाः।।"[1]

जातकर्म एवं नामकरणादि संस्कार :– प्रसन्न हुये माता–पिता ने जातकर्म संस्कार विज्ञ ब्राह्मणों से कराया। पुरोहितों ने बाक का "मोहन" यह नाम रखा–

"पुरोधसांपावनपादपंकजा, निषिंचनोद्भूत प्रसादपौरूषाद।
बलायबालायहि मोहनाख्यया, मुद्रापिता संगरयां चकार सः।।"[2]

बालक मोहन चन्द्र की कलाओं के समान दिनोंदिन वृद्धि को प्राप्त होता गया और 14 वर्ष की आयु अभी मोहन की हुई ही थी कि–

मोहन का विवाहः– तब मोहन का विवाह संभ्रान्त वैश्य गोकुलदास की पुत्री कस्तूरी के साथ हुआ और वे कस्तूरवा गांधी के नाम से विश्रुत हुई।

"मिषेणकस्तूर्यधरेण सादरं, समर्पितं यन्– मधुपर्कितंमधुः।
असिस्वदत्तत्र सुवेन मोहनः वधूविधूनांधनवददिवधनवत्।।"[3]

मोहनदास और कस्तूबरा का युगल इन्द्र और इन्द्राणी जैसा लगता था।

"यदातदादर्शिधवेनसावधू पुलोभजाकान्तकलावलीकौ।"[4]

पराधीन भारत को देखकर अतिशय खेद :–

पराधीन भारत की दुर्दशा को देखकर महात्मा गांधी अत्यन्त दुःखी रहते थे। महात्मागांधी का विचार था कि स्वातन्त्रय प्राप्ति के बिना न सुख है और न प्रतिष्ठा ही–

"न तत्र स्वातंत्रय सुखं प्रतिष्ठया।।"[5]

जवाहरलाल नेहरू को मार्गदर्शन :– आततायी अंग्रेजों को भारतभूमि से भगाने के लिये गाँधी जी ने पं0 जवाहर लाल को अपने साथ लिया–

"बभार जेतुं जगतां जवाहरः।"[6]

स्वाधीनता प्राप्ति :– मोहनदास कर्मचन्द्र महात्मागांधी ने पं0 जवाहर लाल नेहरू, बालगंगाधर तिलक, सुभाष चन्द्र बोस, महामना पं0 मदन मोहन मालवीय, चन्द्रशेखर आजाद, सरदार भगत सिंह, राजगुरू सुखदेव आदि राष्ट्रपुत्रों को साथ अंग्रेजों को भारत से भगा दिया। भारत राष्ट्र का उदय 15 अगस्त सन् 1947 को आधीरात के समय स्वाधीनतादेवी की वन्दना के साथ हुआ। अंग्रेजो के अत्याचार, इतिहास की वस्तु बने और देश के नेताओं ने देश की बागडौर अपने हाथों में संभाल ही।[7]

---

1. गान्धिचरितम् : शारदाचरण दीक्षित : श्लोक
2. गान्धिचरितम् : कवि. आ. शारदाचरण दीक्षित
3. वही :
4. वही :
5. वही :
6. गांधीचरितम् : शारदाचरण दीक्षित
7. वही

गाँधी चरितम् की वर्णन शैली :– "गाँधी चरितम्" दीक्षित जी की अलंकृत शैली की रचना है। इसमें पांडित्य प्रदर्शन की प्रधानता है। हृदय और मस्तिष्क दोनों के उपयोग से यह काव्य लघु कलेवर का होते हुये भी उत्कृष्ट कोटि का बन गया है। गाधीचरितम् में वेदर्भी,[3] और पांचाली[4] रीतियों का दर्शन होता है।

दीक्षित जी के कुछ पद्यों के पदविन्यास लालित्व, तथा अलंकृत शैली को देखकर उनके पांडित्य और अप्रतिभकाव्य प्रतिभा पर मुग्ध होना ही पड़ता है।

दीक्षित जी जब शब्दक्रीड़ा में अनुरक्त हो जाते हैं तब उनका कविकर्म देखते ही बनता है, और शब्दालंकारों की झड़ी लग जाती हैं। अनुप्रास और यमक के सुन्दर प्रयोग से गांधिचरितम् काव्य में पदलालित्य की भव्य अभिव्यक्ति हो जाती है। उन्होंने सूक्तियों और सुभाषितों के प्रयोग से अर्थगौरव के साथ–साथ अर्थात रन्यास की भी रचना की है–

"सदण्डसाध्येवितथवसामता प्रतापकारायविधो विधानतः।
यथामयं स्वेधमुपेत्यसायकं भिषग्जनः सिंचति कोऽपिवारिणा।।"[1]

पूर्ववर्ती साहित्य का प्रभावः– गांधी चरितम् पाण्डितय प्रदर्शनकारी ऐसी रचना है जिसमें शिशुपालवध की अनेक पदावलियों को अपने काव्य में प्रयुक्त करने का लोभ दीक्षित जी संवरण नहीं कर सके। कुछ स्थलों पर तो पद एवं पदार्थ की भावानुगतता एक हो उठी है। यथा– मुगलों की बर्बरता का वर्णन–

"रसामवस्कन्द कृपाणधारया, सदैवदुर्गाणिमुषाणदस्युवत्।
य इत्थमस्वास्थ्यमकार्यहर्निशं, जिगीषया यावनयावनीहया।।"[2]

रावण ने भी कुछ ऐसा कृत्य स्वर्ग में कर डाला था–

"पुरीमवस्कन्द लुनीहिनन्दनं, मुषाणरत्नानि हराऽभरांगनाः।
विगृह्य चक्रे नमुचिद्विवषावली, य इत्यमस्वास्थ्यमहर्दिवं दिवः।।[3]

बड़े–बड़े प्रथित यथाकवि भी अपने पूर्ववर्ती कवियों से प्रभावित होने एवं तत्प्रयुक्त पदावली का प्रयोग करने में रूचि वाले देखे गये हैं। दीक्षित जी इसके अपवाद नहीं है। दीक्षित जी में अभिव्यक्ति और कल्पना की समृद्धि माद्य और भारवि जैसी है। प्रायः अवतार से पूर्व देवगण परमात्मा से भूतल पर अवतरित होने की प्रार्थना करते हैं, दीक्षित जी ने भी भारत भूमि का मानवीकरण कर यवनों और अंग्रेजों के कुशासन से मुक्ति दिलाने के लिये भारत से नारायण की स्तुति करायी है– गीता में प्रतिपादित नारायणो वत कथन की तरह उनका भी यही अभिमत है–

---

1. माधुर्यव्यजंकैर्वर्णैरचना ललतात्मिका।
   आवृत्तिरल्पवृत्तिर्वा वैदर्भी रीति रिष्यते।। सा.द. : आचार्य विश्वनाथ
2. समस्तपंचबपदो बन्धः पांचालिका मता ।। वही : 9–4
3. गांधीचरितम् : दीक्षित जी
4. वही : श्लोक 23
5. शिशुपालवधम् : माघ – श्लोक 51

"यदायदाधर्मधरायशश्च श्चुचुम्बकुत्सांकित किल्विषं विष।
तदापरित्राण कृपाणपाणिवत्, व्युदेति लोके स्वयमेवलोकभृत।।"[1]

गाँधीचरितम् का अवलोकन करने से स्पष्ट प्रतीत होता है कि दीक्षित जी का संस्कृत भाषा पर पूर्व अधिकार है। नवीन शब्दों के पिरोने में दीक्षित जी पूर्ण दक्ष हैं। भाषा और व्याकरण पर पूर्ण नियन्त्रण होने के कारण वे व्याकरण सम्मत शब्दों का निर्माण कर लेते हैं।

"कांग्रेसचरितम् की नवीनतम् पृष्ठभूमि का पर्यालोचन" भारत के स्वाधीनता आन्दोलन में अपनी महत्वपूर्ण अद्वितीय भूमिका का निर्वाह करने वाली संस्था कांग्रेस का इतिहास हिन्दी तथा अंग्रेजी भाषाओं में विस्तार से उपलब्ध है।[2] संस्कृत साहित्य में आचार्य ब्रहमानन्द शुक्ल कृत "गांधिचिरतम्" और नेहरूचरितम् कांग्रेस इतिहास को अभिव्यक्ति प्रदान करने वाले– दो अमूल्य ग्रन्थ है[3]

इसके अतिरिक्त पण्डिताषमाराव कृत सत्याग्रहगीता कांग्रेस इतिहास का विशद काव्य है।[4] सत्याग्रह गीता में राष्ट्रीय कांग्रेस का वृत्तचित्र और स्वतंत्रता संग्राम का आनुपूर्वीवर्णन है। उन्होंने भी गांधी को भगवान के रूप में अवतीर्ण बताया हैं–

तस्मादधर्मनाशाय, प्रशान्तेस्थापनाय च।
गान्धि रूपेण भगवान् अवतीर्णः किम्स्वयम्।।

सत्रह अध्याय युक्त इस काव्य में एक हजार नौ सौ नवासी पद्य है। पण्डितजी ने स्वराज्यविजय नामक काव्य में राष्ट्रीय स्वाधीनता आन्दोलन का मनोरम वर्णन किया है। पैंतालीस अध्याय वाले इस महाकाव्य में एक हजार सात सौ चालीस पद्य है। कांग्रेस का इतिहास लिखने के लिये लेखनी उठाने वालों में पं0 द्विजेन्द्रानाथ शास्त्री का नाम भी स्मरणीय है। उनका स्वराज्यविजयंकाव्य बलभद्रशास्त्री का नेहरूयशः सौरभम्, डॉ. सत्यव्रतशास्त्रीकृत इन्दिराचरितम् काव्यों में कांग्रेस का वैभव देखा जा सकता है।

आचार्य जी ने कांग्रेसचरितम् का शुभारम्भ भगवान शिव की स्तुति से किया है। भगवान शिव के सुन्दर नेत्रकमलों से प्रभावित एवं चलायमान कर्णकुंडलों की मणि प्रभा से सुन्दर लगने वाले कपोलविभ्रम को प्रणाम करते हुए कांग्रेस की कथा कवि

---

1. यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
   श्रीमदभगवत् गीताः व्यास।

2.(क) कांग्रेस का इतिहास : पट्टाभिसीतारामैया
   सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली– 1948 : अनु. हरिभाऊ उपाध्याय

(ख) हिस्ट्री आफ दी कांग्रेस : पट्टाभिसीतारामैया :

3. गांधिचरितम् – साहित्य भंडार, मेरठ।

4. सत्याग्रहगीता : बम्बई प्रेस 1948

द्वारा पद्यबद्ध करने का वर्णन है।[2] दीक्षित जी ने कांग्रेस की कथा का लेखन विद्वानों के मनोविनोद के लिये किया है, किसी अन्य प्रयोजन से नहीं–

"रसारसक्षालनहेतुनाधुनो, वितन्यते यत्सुकथास्मृतास्मृता।
न्याषिच्यतद्दीक्षित दिव्यपाणिना, विदांविनोदाय कवित्ववारिणा।।"[3]

स्वाधीनता का सर्वप्रथम उद्‌षोध लोकमान्य बालगंगाधर तिलक ने किया था, जो कि कांग्रेस के अनुगामी थे। तिलक जी ने भारतीयजनों में अपने भाषणों से आंग्लशासन के दमन के विरूद्ध आक्रोश भर दिया। तिलक जी के भाषणों को सुनकर भारतीयों में वैचारिक क्रान्ति आयी। दीक्षित जी ने राष्ट्र के इस पुरोधा को अपना प्रथम प्रणाम निवेदन किया है–

नमामितस्मै तिलकाय कायितुम्, धराधरेज्याय कथामिव ध्रुवाम्।

राष्ट्रीय विचारधाराओं के प्रचार प्रसार के लिये पं० मदनमोहन मालवीय ने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना की–

स हिन्द हिन्दू हितरक्षणक्षणं, निधायविद्यालय माससर्जयः।[1]

पंजाब में कांग्रेस विचारधारा के प्रमुख संवाहकर लाला लाजपतराय ने कांग्रेस झण्डे के नीचे भारतीयों को नई प्रेरणा दी। कांग्रेसजनों को राष्ट्रभक्ति का दीपक सुभाषचन्द्र बोस ने दिखाया। उनके उत्तेजक भाषण भारतीयों में स्फूर्ति का संचार करने वाले थे। इसी समय अंग्रेजों का मर्मच्छेक करने का वीणा पं० जवाहर लाल नेहरू ने उठाया। पूरे राष्ट्र में हलचल मच गयी। रावी नदी के किनारे पर स्वाध ीनता प्राप्ति का प्रण किया गया। भारतीयों का रक्त जवाहरलाल नेहरू के भाषणों से उवाल ले रहा था। चारों ओर भारत माता की जय और वन्देमातरम् के उदघोष गुंजायमान थे। उसी समय इन राष्ट्रनायकों ने अंग्रेजों के विरूद्ध असहयोग आन्दोलन छेड़ दिया। असहयोग आन्दोलन का दूरगामी परिणाम हुआ, जिससे अंग्रेज शासन अपने को असहाय मानने लगा। फूट डालो और राज करो की नीति का अनुसरण करने वाले अंग्रेजों ने साम्प्रदायिक विषबीज बो दिये, तब राष्ट्रभक्तों ने साम्प्रदायिक उन्माद का मुकाबला किया–

"रणार्णवौघव्यतिहारिणारिणा, घ्रणाघ्रंणोच्युक्षुदिरै क्षितिप्रियाः।
तदानिरीयुर्नयवर्त्मनात्मना, प्रतिक्रियां पातु मथ प्रमाथिनः।।"[2]

सुखदेव, राजगुरु और भगतसिंह का कांग्रेस को योगदान :– राष्ट्रव्यापी स्वाधीनता महासमर से प्रभावित होकर राजगुरु, सुखदेव, और भगतसिंह कांग्रेस

---

1. शिवस्य राजीवदृशोदरस्मयात्, विलोलताटंकतिथि प्रणीमणेः।
   चलत्प्रभाधौत कपोलविभ्रमं, प्रणभ्य कांग्रेस कथामिपद्यते।।
   कांग्रेस वैभवम् : दीक्षित जी
2. वही :
3. कांग्रेसचरितम् : आचार्य शारदाचरण दीक्षित
4. वही :

संचालित आन्दोलन में कूद पड़ें और राष्ट्रद्रोहियों से प्रतिकार लेने के लिये जुट गये।

जनरल सैण्डर्स से बदला :– जनरल सैण्डर्स बड़ा दुर्दान्त अधिकारी था। राष्ट्रभकतों पर गोली चलवाकर एवं यातनायें देकर वह अत्यन्त प्रमुदित होता था। अनेक कांग्रेस नेता उसके दमन चक्र से प्रभावित हो चुके थे। उसके पापों के भार से झुकी भारतभूमि को उसके वध के द्वारा ही हलका किया जा सकता था। पूर्वोक्त तीनों राष्ट्रशूरमाओं का एकत्रीकरण मानो अंग्रेजों को भगाने के लिये ही स्वर्ग से उतरा था।

कांग्रेस दल में चन्द्रशेखर आजाद का आगमन :– राजगुरु, सुखदेव और भगतसिंह की क्रान्तिकारी विचारसरणि एवं कार्यशैली का राष्ट्रव्यापी प्रचार हो चुका था। इन तीनों की राष्ट्रसेवी गतिविधियों में सहयोग करने तथा राष्ट्र भक्तों की रक्षा करने के लिये चन्द्रशेखर आजाद उपस्थित हुये।

बापू का उपवास :– अंग्रेजों ने धर्म और भाषा के आधार पर भारत विभाजन की रूपरेखा तैयार की। इस पर राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी समेत पूरा भारत कॉप गया और बापू अन्न जल छोड़कर उपवास पर बैठ गये–

"अदोऽप्यनावध्यसकर्णकर्णतां, न मे दृढीयः श्रृणुतप्रतिश्रुतम्।
प्रहीय नैजाशनवारिवन्धता, मिहायुबोऽहं करवैस्ववैरिताम्।।

गांधी जी के लाख प्रयत्नों के बावजूद भी देश का विभाजन न रूका, और कांग्रेस के सद्प्रयत्नों के परिणामस्वरूप भारतस्वतंत्र हुआ।

स्वतंत्र भारत का निर्माण कांग्रेस का राष्ट्र को अद्वितीय उपहार रहा।

"भारतम्" "आभारतम्" का नवीन उदघोष :– भारत शब्द भा + रत इन दो पदों से मिलकर बना है। भायै, भायां वा रतः भारतः इस व्युत्पत्ति के अनुसार भारत शब्द का अर्थ हुआ वह राष्ट्र जो अपनी आन्तरिक एवं वाह्य शोभा अर्थात् चमक दमक का संवर्धन करने में व्यस्त हो।

आचार्य शारदाचरण दीक्षित ने "भारतम्" को "आभारतम्" सिद्ध करने में अपनी लेखनी की सार्थकता सिद्ध की है। भारत भूमि के यशोगान के लिये उन्होंने कांग्रेसचरितम्, गांधिचरितम्, भारतीय चरितम् आदि ग्रन्थों की रचना की। वे स्वर्णिम भारत के स्वप्नदर्शी थे।

भारत का प्राचीन गौरव :– आचार्य जी का यह ध्रुव मत था कि भारत में वेदों की अनुगामिता शाश्वत एवं सनातन है। भारतीयजन हमेशा से बैदिकमार्ग के अनुयायी रहे हैं। भारतीय हमेशा से वर्ण, आश्रम, और कर्म के प्रति सावधान तथा वेदरक्षाव्रती रहे हैं। पूरा विश्व भारत को इसलिये प्रणाम करता था क्योंकि वह सही अर्थों में भार–रत (शोभा संवर्धन में संलग्न) ही था। इस प्रकार भारत में वैदिक यज्ञों का विद्वानों का समूह विद्यमान रहता था, जो भारत पूरे संसार को ही ब्रह्म के रूप में देखा करता था, ऐसा था हमारा भारत–

"यत्रैकत्रविराजतेस्ममखिनांसंघक्रियाकोविदः।
श्रौतेः कर्मभिरेव विश्वममखिलं नूनं विधातुं क्षमः।।
वेदान्ताऽनुभवेनकृत्स्नभुवनं ब्रह्मैव पश्चन् परो।
मुक्तानां निवहस्तु विस्यमकरो यस्मिन्ऽनभूत भारते।।"[1]

भारत आज भी वेद मतानुयायी :– दीक्षित जी की मान्यता है कि कुमारिल भट्ट प्रभृति विद्वानों के त्याग और प्रताप से भारत आज भी वेदमार्गानुगामी है।

"धन्यास्तेतेकुमारिल प्रभूतयोविद्वत् कुलाग्रेसराः।
यैर्वेदाऽवन तप्तरैस्तूणमिवोत् सृष्टं निजं जीवितम्।।
येषामेवमहात्मनामनुपमैस्त्यागेः प्रतापेस्तथा।
श्रोतोऽध्वाऽद्यकथांचिदांचित वपुर्जागर्त्यसौ भारत।।"[2]

भारत एक सुन्दर उद्यान :– दीक्षित जी ने भारत की कल्पना एक ऐसे सुन्दरवन से की है जिसमें कोई अभाव नहीं है। सर्वत्र मंगल और शान्ति है–

निषीययत्साशनसंकुलं कुलं, कुलालयन्ते न कुलायनाकुलाः।
सराशिराशीविष वैषवर्षिणी, विभर्त्ति भूभारत भावनंवनम्।।[3]

"भारतम्"–आभारतम् की ध्वनि का नवीन निरूपण :– बीसवीं शताब्दी का शुभारम्भ भारत में ऐतिहासिक युगबोध और संस्कृति के पुनरूदय के रूप में हुआ। इस युग के संस्कृत के अनेक कवियों ने भारत के रूप को अपनी लेखनी से सजाया और संवारा। नारी शिक्षा, विधवा विवाह के समर्थक और अस्पृश्यता के प्रबल विरोधी महर्षि दयानन्द ने भारत के जिस उज्जवल स्वरूप की कल्पना की थी वह संस्कृतकवियों की रचनाओं में साकार हो उठी।

बालक जवाहर लाल नेहरू का यज्ञोपवीत संस्कार हो रहा है। तीन भागों में निबद्ध नये यज्ञोपवीन के रूप में उन्होंने अपनी जन्मभूमि, जनजीवन तथा भारतीय जाति के उद्धार का मानो प्रतीक धारण किया हो। आचार्य गुलाबचन्द्र जैन ने स्वीकार किया है कि "भारत में जो नयी राजनैतिक और सामाजिक उथलपुथल हुई उससे आधुनिक शिक्षा प्राप्त संस्कृति पर्याप्त प्रभावित हुई। परिणाम स्वरूप संस्कृत साहित्य के क्षेत्र में उन्होंने जिस ढंग से सर्जनात्मक कार्य किया है उससे साहित्य के लिए नया जीवन, नया रूप और गति मिली।[4] स्वामी भगवदाचार्य अपनी राष्ट्रभाषा और संस्कृतभाषा को महत्व देना समीचीन मानते हैं क्योंकि जो प्रजा अपनी देश भाषा को छोड़कर परदेशी भाषा का सहारा लेती हैं वे कष्ट पाती है–

---

1. वैदिकेभ्योऽभ्यर्थनम् : आचार्य शारदाचरण दीक्षित : श्लोक 10
2. वैदिकेभ्योऽयर्थनम् : आचार्य शारदाचरण दीक्षित : श्लोक 12
3. कांग्रेस चरितम् : आचार्य शारदाचरण।
4. आधुनिक संस्कृत साहित्यानुशीलनम् : गुलाबचन्द्र जैन : पृ0 49

स्वदेशभाषामथ मातृ–भाषां, त्यक्त्वा प्रजा या परदेशाभाषाम्।
समाश्रयन्ते विपदो भजन्ते, ततोऽन हिन्दी सुरगी–प्रचारः।।[1]

जिस प्रकार विद्वान लोग अपनी पत्नी को और बच्चे अपनी माँ को नहीं त्यागते हैं, उसी प्रकार स्वमातृभाषा भी त्यक्तव्य नहीं होती –

त्यक्त्वा निजांगनां साध्वीं किमन्या सेव्यते बुधैः।
जननीं वा परित्यज्य किमन्या श्रीयतेऽर्मकेः।।[2]

बीसवीं शताब्दी के विख्यात कवि श्री त्रयम्बक शर्मा भण्डार कर ने भारत को ध र्म की आवास भूमि, दर्शनों का उत्पत्ति स्थल, वीर और सुधीर नागरिक से सुशोभित, विश्वप्रेम की प्राकट्यस्थली, प्रकृति का अद्भुत रंगमंच तथा संसार का नेतृत्व करने में सक्षम राष्ट्र बताया है।

भण्डारक जी ने संस्कृतभाषा को अमर भाषा कहा है। जो लोग संस्कृत को मृतभाषा कहते हैं उन्हें आड़े हाथों लेते हुये उन विदेशियों के महत्व को स्वीकार किया है जो संस्कृत के प्रशंसक हैं–

"पामरास्तु प्रजल्पन्तु संस्कृतेन मृतेन किम्।
मुक्तकण्ठेन प्रशंसन्ति प्रतीच्यामपि चैदिमाम्।।"[3]

भाण्डारकर जी तो सन् 1910 में 16 वर्ष की अवस्था में स्वराज्य आन्दोलन के समय कारागार भी गये थे।

भाण्डारकर जी का मन भारत की प्रशास्ति और उत्कर्ष के गीत गाते गाते अघाता नहीं हैं–

का पुण्य भूः समुचिता जगतीतलेऽस्मिन् किंस्थानमत्र परमेश्वर लाभसिद्ध्यै।
नृणां च कर्मलभागपदं किमास्ते तत्रोत्तरंश्रृणुत भारतभूरियं नः।।
किं क्षेत्रमस्ति बलशील दयागुणानाभन्तदृशो यजनि यत्र परो विकासः।
जाता च यत्र परमात्मविचारचर्चा, तत्रोत्तरं श्रृणुत भारतभूरियं नः।।[4]

आचार्य ब्रहमानन्द शुक्ल अपने प्रिय भारतदेश में न वर्ग चाहते हैं न जातिभेद, न धर्मभेद न सम्प्रदाय भेद। सबको समान अधिकार, एक ऐसा भारत जिसमें न भाषा का विवाद हो, न देश में कोई झगड़ा अपितु सभी मिलकर पूरे राष्ट्र की सेवा करें

"न वर्णभेदो, न जातिभेदो न धर्मभेदो न च सम्प्रदायः।
सर्वेसमाना सुखशान्तिलाभस्त्रियः पुभांसश्च समानाधिकाराः।।
भाषामुपादाय न वा विवादः केनापि कार्यो निजदेशमध्ये,
सर्वे मिलित्वाऽखिलराष्ट्रसेवारता भविष्यन्ति विहायभेदम्।।"[5]

---

1. भारतपारिजातम् : स्वामी भगवदाचार्य : 6–18
2. शंकरजीवनाख्यानम् : पं0 क्षमाराव : 4–16
3. विवेकानन्द चरितम् : भण्डारकर श्लोक सं0 3
4. वही : 14–15–16
5. नेहरू चरितम् : ब्रहमानन्द शुक्ल 18–81

स्वतंत्रयोत्तरकाल के संस्कृत कवियों ने काव्य प्रणयन के प्रयोजन को राष्ट्रदेव के चरणों में समर्पित किया है। यश, धन और शिवेतरक्षति का प्रयोजन उन्होंने तिरोहित कर दिया है। डॉ. रेवाप्रसाद द्विवेदी भारतभूमि, भारतीय संस्कृति और संस्कृत भाषा के लिये अपनी लेखनी को समर्पित कर देते हैं– भारत भूखण्ड की आभापूर्ण रागात्मिका आरती उतारने वाले संस्कृत कवियों ने हिन्दुस्थान की व्युत्पत्ति रूचिपूर्ण ढंग से की है। श्री प्रभुदत्त स्वामी ''हि'' से हिमालय और इन्दुसरोवर (कन्याकुमारी) से ''न्दु'' इस प्रकार हिन्दु की व्युत्पत्ति मानते हैं–

हिमालयादिन्दु सरोवरान्ते, प्रत्याहृतं भूयसि भूमि भागे।
सिन्धूपसम्बन्ध निबन्धनाख्यं, यं हिन्दु–राष्ट्रं निगदन्ति नव्याः।।[1]

भारत भूखण्ड की आभापूर्ण रागात्मिका आरती उतारने वाले संस्कृत कवियों ने हिन्दुस्थान की व्युत्पत्ति रूचिपूर्ण ढंग से की है। श्री प्रभुदत्तस्वामी ''हि'' से हिमालय और इन्दुसरोवर (कन्याकुमारी) से ''न्दु'' इस प्रकार हिन्दु की व्युत्पत्ति मानते हैं– मातृभूमि की रक्षा बहुत बड़ा यज्ञ है। जिसमें सर्वस्व स्वाहा करके कोई कोई ही यजमान राष्ट्रभक्ति का पात्र बन सकता है–

''भरवो महान् मातृभुवोऽभिरक्षणं, परं वदान्यं यजमानमीहते।
जुहोति सर्वस्वमिहात्मनो न यः, स नास्य सम्पूर्ण फलंसमश्नुते।।''[2]

बीसवीं शताब्दी की स्वातंत्रपूर्व कृतियों मे राष्ट्रीय जागरण का शंखनाद है, वहीं स्वातंत्रयोत्तर रचनाओं में भारत को देदीप्यमान एवं महिमा मंडित स्वरूप प्राप्त हुआ है। राष्ट्रीय एकता और अखंडता को अक्षुण बनाये रखने की भीष्म प्रतिज्ञा है। इन सभी रचनाओं में भारत के ऊर्जस्वी स्वरूप का चित्रण उदित हुआ है।

इन कृतियों में भारतमाता का गौरवमान मुखरित हो उठा है। कविगणपति आचार्य शारदाचरण दीक्षित ने राष्ट्रीय परम्पराओं का अनुपालन एवं अनुगमन करने में पूर्ण प्रयत्न किया है, और उन्हें इस पुनीतकार्य में सफलता भी मिली है।

खण्डकाव्य की दृष्टि से दोनों ग्रन्थों का पर्यालोचन :– आचार्य विश्वनाथ के अनुसार काव्य के एक अंश का अनुसरण करने वाला खण्डकाव्य होता है।[3]

''गांधिचरितम्'' और ''कांग्रेस चरितम्'' दर्पणोक्त लक्षण के अनुसार खण्डकाव्य की श्रेणी में आते हैं। गांधिचरितम् में लोकवन्ध राष्ट्रपिता महात्मागांधी के जीवनवृत्त को काव्यरूप दिया गया है। वहीं ''कांग्रेसचरितम्'' में स्वाधीनता संग्राम में अपनी अग्रणी भूमिका प्रस्तुत करने वाली संस्था कांग्रेस का उज्जवल स्वरूप प्रकट किया गया है। दोनों ही काव्यों में एकांगिता, एकपक्षिता, तथा अखण्डकता का दर्शन होता है।

---

1. पूर्वभारतम् : प्रभुदत्त स्वामी : 1–6
2. वही
3. खण्डकाव्यं भवेत् काव्यस्यैक देशानुसारि च।
   साहित्य दर्पण : विश्वनाथ 329

उपजीव्य :– दोनों ही खण्डकाव्यों की विषयवस्तु का संबंध राष्ट्रीय स्वाधीनता आन्दोलन से है। ''गांधिचरितम्'' यद्यपि आचार्य ब्रह्मानन्द शुक्ल के द्वारा प्रणीत हो चुका था किन्तु दीक्षित जी कृत गांधिचरितम् की बात ही कुछ और है। कांग्रेसचरितम् का कथानक भी सामयिक और ऐतिहासिक है। गांधिचरितम् में गांधी अवतार की परिकल्पना कवि की मेधाशक्ति का द्योतक है।

शब्द रचना प्रभाव :– आचार्य दीक्षित जी रचित इन खण्डकाव्यों पर माघ एवं श्री हर्ष का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है। कतिपय पद्यों में तो पद सातत्य का यथा तथा अवतरण परिलक्षित होता है। श्री हर्ष कृत नैषधीयचरितम् के इस श्लोक से साम्य द्रष्टव्य है–

पवित्रमत्रातनुते जगद्युगे, स्मृता रसधालनयेव यत् कथा।
कथं न सा पद्‌रिमाविलामपि, स्वसेविनीमेव पवित्रयिष्यति।।[1]

पवित्रमत्रातनुते नुते नुतौ रसारसक्षालनयेव यत्कथा।
न तत् कथं गिरमाविलायहो, लिक्ष्यलक्षेण लक्षयिष्यति।।[2]

कतिपय श्लोकों का प्रारम्भ शिशुपालवध काव्य में प्रयुक्त पदावलियों से हुआ है यथा–

''कृतः प्रजाक्षेमकृता प्रजासृजा, सुपात्रनिक्षेप निराकुलात्मना।''[3–क]
''हृताप्रजाक्षेमकृता प्रजासृजा, यदा मनीषानिरपाय संश्रया।।''[3–ख]

कहीं माद्य प्रयुक्त पदावलियों का प्रयोग दीक्षित जी ने पूर्वा पर भाव से भी किया है।

''लघूकरिष्यन्नतिभारभंगुराम्, अमूं किल त्वं त्रिदिवादवातरः।''[4–क]
''अघौघसैण्डर्सनिपातनैर्भुवं, लघूकरिष्यन्नतिभार भंडगुराम।।''[4–ख]

शिशुपालवध में माद्य प्रयुक्त क्रियापदों का भी अनुप्रयोग दीक्षित जी ने इस प्रकार किया है कि उसे पढ़कर उनकी रचना में माघीय गुणों का अनुभव होने लगता है। इस अनुकरण से दीक्षित जी की रचना में रसोत्कर्ष की भावना कम नहीं होती।

पुरीमवस्कन्द लुनीहिनन्दनं, मुषाण रत्नानि हरामरांगनाः।
विगृह्य चक्रे नमुचिद्विं विषावली, य इत्थमस्वास्थ्यमहर्दिवं दिवः।।[5–क]
रसामवस्कन्द कृपाणधारया, सदैवदुर्गाणि मुषाण दस्युवत्।
य इत्थमस्वस्थ्यमकार्यनारतं, जिजीषया पावनयावनीहया।।[5–ख]

---

1. नैषधीयचरितम् : श्री हर्ष : 1:2 /
2. गान्धिचरितम् : आचार्य शारदाचरण दीक्षित : श्लोक।

3.–क शिशुपालवधम् : माघ 1–28
ख गांधिचरितम् : शारदाचरण दीक्षित
4.–क शिशुपालवधम् : माघ
ख गांधिचरितम् : शारदाचरण
5.–क शिशुपालवधम् : माघ 1–51
ख गान्धिचरितम् : 16

आचार्य दीक्षित जी व्याकरण के उद्भट विद्वान थे। अतः अपने व्याकरण ज्ञान के आधार पर वे ऐसे शास्त्रसम्मत शब्दों की रचना कर लेते थे। शब्द और स्वर साम्य के जैसे अद्भुत प्रयोग आचार्य जी ने किये हैं उन्हें देखकर दीक्षित जी के वैदग्ध्य पर आश्चर्य करना पड़ता है। आचार्य जी का समसायिक व्यावहारिक एवं अनुभजन्य राजनैतिक ज्ञान इन उभयखण्ड काव्यों में उद्भाषित हुआ है। ये खण्डकाव्य उन्हें माघ की समकक्षता प्रदान करने में सहायक हैं।

उभयखण्डकाव्यों में रसतत्व :– "रस" काव्य का प्रमुख तत्व है। काव्य की उत्तम कसौटी रसाभिव्यक्ति है। आचार्य विश्वनाथ ने रसात्मक वाक्य को काव्य कहा है। सार अर्थात् सबसे अधिक प्रधान होने के कारण रस ही जिसकी जीवनभूत आत्मा है। वह वाक्य रसात्मक कहलाता है।[1]

मुख्यरूप से विद्वत समाज के कवि होते हुए भी आचार्य शारदाचरण दीक्षित को रसवादीकवि कहा जा सकता है। उनके काव्य का अनुशीलन करने से उनकी रसवादिता स्पष्ट हो जाती है। सहृदय पुरूषों के हृदय में स्थित रति आदि स्थायी भाव ही विभाव, अनुभाव और संचारी भावों के द्वारा अभिव्यक्त होकर रस के स्वरूप को प्राप्त होते हैं। रति आदि स्थायीभाव ज्ञान के विषय होने पर ही रस कहलाते हैं। रस प्रतीत होते हैं। यह व्यवहार इसी प्रकार का है जैसे– कहा जाता है कि "भात पकाते है" पकने के बाद ओदन या भात संज्ञा होती है पकने से पूर्व नहीं। प्रथम तो तण्डुल ही होते हैं, किन्तु व्यवहार मे भात पकाते हैं यही होता है, इसी प्रकार प्रतीति से ही रस निष्पन्न होते हैं। प्रतीयमान ही रस होते हैं प्रतीत के पूर्व नहीं।

रस परिशीलन :– कांग्रेसचरितम् और गांधिचरितम् में शान्त और वीररस का भव्य परिपाक हुआ है। इसके अतिरिक्त कतिपय विद्वान सम्मत वात्सल्य रस भी दृष्टिगोचर होता है।

वत्सल रस :– वत्सल रस में वात्सल्य स्नेह स्थायी होता है। पुत्रादि इसका आलम्बन उसकी चेष्टा तथा विद्या, शूरता, दया आदि उद्दीपन विभाव होते है। आनन्दाश्रु अनुभाव, तथा अनिष्ट आशंका संचारी होते है।[2]

बालक मोहनदास को जन्म देकर माता पुतलीबाई और पिता कर्मचन्द्र को भारी प्रसन्नता हुई।

प्रदक्षिणीकृत्य हुतं हुताशनं, सतां समभ्यर्च्य यथानुशासनम्।
प्रसूतवन्तांपितरौ ननन्दतु, स्वनन्दनात् गृहवनन्दनात्।।[3]

बालक मोहनदास चन्द्रमा की कलाओं के समान वृद्धि को प्राप्त हो रहे थे। माता

---

1. वाक्यं रसात्मकं काव्यम् : साहित्यदर्पण : विश्वनाथ पृ0 19
2. स्फुटं चमत्करितया वत्सलं च रसं विदुः।
   स्थायीवत्सलता स्नेहः पुत्राद्यालम्बनं मतं।।
   साहित्यदर्पण वि. 3–251
3. गान्धिचरितम् : आ. शारदाचरण दीक्षित

और पिता मोहनदास की बाललींलाओं को देखकर प्रमुदित होते थे। अपने अपने वंश की आपस में बढ़ाई करते थे–

विभाव्य बालस्य विचारचारूता, मजस्रमुत्स्वारसिको प्रधासितौ।
प्रहर्षमाणौपितरौ विरेजतुः, मिंथकुलं स्पर्धयितुं स्वकं स्वकम्।।[1]

वीर रस :– उत्तम पात्र में आश्रित वीर रस होता है। इसका स्थायी भाव उत्साही, विजेतव्य आलम्बन विभाव और उनकी चेष्टा उद्दीपन विभाव होते हैं।

"उत्तम प्रकृतिर्वीर उत्साहस्थायिभावकः।"[2]

स्वाधीनता संग्राम के वर्णन में अंग्रेजी शासकों पर बम प्रहार करने वाले राष्ट्रभक्तों ने क्या कुछ नहीं किया ?

अनद्वत राज्यसभासुभासुरै, रसुव्ययायोपहितैरिवाहितैः।
स्वपाणिमिर्भारतभक्तसिंहता, जहावहो वज्रमिवाग्निसायकम्।।[3]

आचार्य दीक्षित जी ने वीररस के वर्णनों में तादृश रसाभिव्यंजकः शब्दों का प्रयोग किया है। भारतीय वीर स्वाधीनतादेवी का आह्वान करने के लिये तरंग जैसी लम्बी भुजाओं को फैलाकर वन्देमातरम् आदि उदघोष करते थे–

प्रसारितोत्तुंग तरंगबाहुभिः, स्वतन्त्रमातन्त्रयितुं धराधनाः।
चमूचराश्चारू परिचृछदैः रदैः, यथाध्वजां चिक्षिपिरे स्वरानपि।।[5]

शान्त रस :– शांत रस का स्थायी भाव शम, आश्रय उत्तम पात्र देवता भगवान श्री नारायण हैं। परमात्मा का स्वरूप आलम्बन आश्रम तीर्थ महात्माओं का संग आदि उद्दीपन विभाव होते हैं। निर्वेद, हर्ष, स्मरण, मति, प्राणियों पर दया आदि संचारी भाव होते हैं। "शान्तः शम स्थायिभावः उत्तमप्रकृतिर्मतः" जब जब इस पृथिवीपर अधर्म का भार बढ़ जाता है, तब हाथ में रक्षा का भार लिये हुये स्वयं भगवान अवतरित होते हैं–

"यदायदाधर्मधरायशश्चयः, श्चुचुम्बकुत्सांकित किल्विषंविषं।
तदापरित्राणकृपाणपाणिवत्, व्युदेति लोके स्वयमेव लोकभुत।।"[6]

आंग्लशासकों के दमनचक्र से पीड़ित भारत ने भगवान से अभ्यर्थना की कि हे प्रभो! अपने सेवकों पर आपको करूणा क्यों नहीं आती ?

"विरेजिरेपावनपादपंकजू, रजै मितारातिनिपीडितादशाः।
ततोऽपि किन्नो करूणायतेयते, त्युपेक्ष्य नेजानुचरं परापरम्।।"[7]

---

1. वही
2. साहित्य द० वि० : 3–232
3. गान्धिचरितम् : दीक्षित जी
4. गान्धिचरतिम् :
5. साहित्य दर्पण : आचार्य विश्वनाथ : 3–245
6. गान्धिचरितम् .
7. वही :

भयानक रस :– भयानक रस का स्थायी भाव भय है। इसके आश्रयपात्र स्त्री तथा नीच पुरूष होते हैं। जिससे भय उत्पन्न हो वह इसमें आलम्बन और उसकी चेष्टायें उद्दीपन मानी जाती है। विवर्णता, मूर्धा, श्वेदरोमांच, कम्प आदि इसके अनुभाव होते हैं। त्रास, ग्लानि, दीनता आदि इसके व्यभिचारी भाव होते है।[1] यवन शासकों ने पूरे भारतवर्ष को अपने वश में कर रखा था। अपनी तलवार की धार से डाकुओं की तरह भारतीयों देवालयों को तोड़ा और लूट लिया। इस प्रकार भारत को जीतने की इच्छा से उन शासकों ने पवित्र भारत भूमि को अस्वस्थ (तहस–नहस) कर डाला था।

''रसामवस्कन्द कृपाणधारया, सदेवदुर्गाणिमुषाणदस्युवत्।।''[2]

इतना ही नहीं मीना बाजार का आयोजन कर उन्होंने भारतीय नारियों का सतीत्व हरण किया–

बलावलेपादनुशासनासनादपात्तमीनापणयोषितां गणात्।
जहारयः शीलमशीलशीलनादहर्शियावन भारतेश्वरः।।[3]

आचार्य शारदाचरण दीक्षित रससिद्ध कवि हैं। उनके उभयखण्ड काव्यों में उपरिलिखित रसों का उत्तम परिपाक हुआ है।

सूक्ति सुभाषित एवं नूतन घोष का विवेचन :– कविगणपति आचार्य शारदाचरण दीक्षित सर्वतोमुखी प्रतिभा के धनी कवि थे। उन्होंने अपनी रचनाओं में सूक्ति और सुभाषितों का अवसरानुकूल प्रयोग किया है। इन प्रयोगों से काव्य में अर्थगौरव एवं समासगुरूता प्रभूततर हो जाती है। खण्डकाव्यों में वर्णित सूक्तियों तथा सुभाषितों का अल्प विवेचन प्रस्तुत हैं –

यथा मयं स्वेद्यमुपेत्य सायकं, भिषग्जनः षिंचति कोऽभसा क्वचित्।।[4]

अपकारी रिपु के प्रति सरलता का भाव दिखाना कथमपि समीचीन नहीं होता है। वैद्य रोगी को स्वस्थ करने के लिये जब स्वेदनोपचार से स्वेदित कर लेता है तब उसे पानी से थोड़े ही स्नान कराता है। संसार में देखा गया है कि शत्रु विनम्रभाव प्रदर्शित करने पर अपरपक्ष की दीनता मानकर और अधिक उग्र हो जाता है। अतः उसके समक्ष विनम्रवचन कहना मूर्खता ही है। शत्रु तो दण्ड सांध्य होता है। अतः दुष्ट शत्रु के प्रति कभी सद्भाव नहीं रखना चाहिए।

आचार्य दीक्षित जी आयुर्वेद के प्रकाण्ड पण्डित थे। अतः स्वास्थ्य विषयक सूक्ति का आपने सटीक उपयोग कर दिया है।

यथा शयालुर्मृगयुर्महान्यूगान्, निहन्ति नैवोपशयस्थितानपि ।।[5]

---

1. भयानको भयस्थायिभावः कालाधिदैवतः
   स्त्रीनीचप्रकृतिः कृष्णौमतश्शतत्वविशारदैः। सा0 द0 3–235
2. गान्धिचरितम् : आ0 शारदाचरण दीक्षित
3. वही
4. गान्धिचरितम् : दीक्षित जी : 20
5. वही : दीक्षित जी : 25

प्रमादी और आलसी लोग हाथ में आयी हुई सम्पत्ति और सफलताओं को खो बैठते हैं। जिस प्रकार सोता हुआ शिकारी पास में आये हुये मृगों को नहीं मारपाता वह तो केवल सोता ही रहता है इसी प्रकार का भाव निम्नलिखित पद्य में दृष्टव्य हैं–

उद्यमेन हि सिध्यन्ति न हि कार्याणि मनोरथैः।
न हि सुप्तस्य सिंहस्य प्रविशन्ति मुखे मृगाः।।[1]
ससिन्धवोऽब्धिं नैगनिम्ननिम्नगाः
यथा सपत्नी रिवप्रापयन्त्युतः।।[2]

उदार हृदय वाले लोग सेवा करने वाले शत्रुओं को भी स्वीकार कर लेते हैं। पर्वतों से निकलने वाली नदियाँ सपत्न भाव को प्राप्त होती हुई सागर में जाकर मिल जाती है। सागर उन्हें स्वीकार कर लेता है।

''भवाम्बुधि भूरिव गोष्पदायते।''[3]

जब दया के सागर भगवान नारायण की कृपा हो जाती है तब दुष्कर कार्य भी सरल हो जाते है। भवसागर पार करना बड़ा दुष्कर कार्य है किन्तु महात्मा तुलसीदास जी ने भी कहा है–

''गुरूपद सिन्धु अनल सित लाई।।''[4]

अतः प्राणीमात्र को परमात्मा की कृपा का पात्र बनने का प्रयत्न करना चाहिये।

''फलन्ति कल्पोपपदैरिवापदा पदानि सम्भावित सम्पदावि।।''[5]

सम्पत्तियाँ और विपत्तियाँ परस्पर विरोधी हैं। किन्तु दोनों का प्रतिफलन प्रारम्भ एवं योगायोग के कारण ही होता है। समय से पूर्व न तो सम्पत्तियां ही आती हैं और न विपत्तियां ही। अतएव मानसिक कष्ट को त्यागदेना चाहिए।

''परैधित प्रावृषमश्रुवपुषां विचिन्त्य केषां न तुदन्ति हृद्रथाः।।''[6]

शत्रुओं के कष्टों से निकली अश्रु बिन्दुओं की वर्षा को देखकर किन के हृदय दुःखी नहीं होते अर्थात् सभी के हृदय दुःखी हो जाते हैं। भद्रपुरूषों को किसी का रोना, रूग्ण होना, या कष्ट में पड़ जाना कष्टकर लगता है। अतः वे किसी को कष्टापन्न स्थिति में नहीं देख पाते, और देखते भी हैं तो उनके हृदय दुःखी हो जाते है।

---

1. पंचतन्त्र : विष्णु शर्मा
2. गान्धिचरितम् : आ0 शारदाचरण दीक्षित
3. यदाऽनुभूयेत दवीयसीदया, दयानिधानस्य विधानवज्जने।
   तदा महिम्नां महतां समागमात्, भवाम्बुधिर्भूरिव गोष्पदायते।। गान्धिचरितम्
4. रामचरितमानस : गो0 तुलसीदास।
5. कांग्रेसचरितम् : आ0 शारदाचरण दीक्षित।
6. कांग्रेसचरितम् : आ0 शारदाचरण दीक्षित।

"यतो हि सा कण्टदलापि केंतकी करोति किं कष्ट कितं नमानसम्।।"[1]

केतकी का पुष्प बहुत मनोहारी होता है किन्तु उसकी पुष्प वृन्त के नीचे कांटेदार पत्ते होते हैं। इस असंगत सामंजस्य को देखकर मन भी दुःखी हो जाता है। सुन्दर पुष्प में दूर–दूर तक कांटे होने ही नहीं चाहिए। परन्तु ऐसा देखने को मिलता है।

आचार्य दीक्षित जी ने स्वरचित खण्डकाव्यों में सूक्ति और सुभाषितों का उत्तम, सटीक एवं सामयिक प्रयोग किया है, जो काव्य के अर्थगौरव का संवाहक है।

उभय खण्डकाव्यों का उत्तरवर्ती साहित्य पर प्रभाव :– कवि युगद्रष्टा होता है। अपने समसामयिक घटनाओं, इतिवृत्तो प्रचलित परम्पराओं एवं प्ररूढ़ उद्भावनाओं को वह मूर्त आकार दिया करता है। वह अपने पूर्व से कुछ लेता है तो पर को कुछ छोड़ता भी है। वह पूर्व और पर के मध्य सेतु का काम करता है। यही कारण है कि हर रचना अपने उत्तरवर्ती साहित्य को प्रभावित करती है।

पूर्ववर्ती प्रभाव :– आचार्य शारदाचरण दीक्षित की रचनाएं अपने पूर्ववर्ती कवि माघ एवं श्री हर्ष से पूर्ण प्रभावित देखी जा सकती हैं। कम से कम भाषा एवं शब्द रचना की दृष्टि से तो वे शिशुपालवधम् एवं नैषधीयचरितम् की अनुकारिणी हैं। विषय वस्तु की दृष्टि से दीक्षित जी ने जहां मेघदूत उत्तरार्धम् में महाकवि कालिदास का अनुगमन किया है वहीं गांधिचरितम् के प्रणयन में आचार्य ब्रह्मानन्द शुक्ल का।

उत्तरवर्ती साहित्य पर प्रभावः– आचार्य जी प्रणीत साहित्य ने अपने उत्तरवर्ती साहित्य पर अमिट प्रभाव छोड़ा है। उनके गांधिचरितम् की छाया पर ही संस्कृत के जाने माने विद्वान डॉ. सत्यव्रत शास्त्री संस्कृत जगत को गुरु गोविन्द सिह चरितम् जैसा उत्तम खण्डकाव्य अर्पित कर चुके हैं। श्री "बोधिसत्वचरितम्" और "इन्दिरागांधी चरितम्" नामक दो महाकाव्य आपकी अपूर्व एवं मधुरिम भेंट है।

बोधिसत्वचिरतम् 14 सर्गीय महाकाव्य है। जगद्वन्ध राष्ट्रपिता महात्मागांधी की सही अर्थों में उत्तराधिकारी श्रीमती इन्दिरागांधी के जीवनचरित को लेकर इन्दिरागांधीचरितम् नामक 25 सर्गीय महाकाव्य की रचना की है।

डॉ. परमानन्द शास्त्रीः– बींसवीं शताब्दी का मध्यकाल राष्ट्रीय जागरण, नवचेतना एवं राष्ट्रीय पुनरुदय का काल रहा है। अतः इस कालखण्ड के कवियों ने देश प्रेम और स्थिति का पूर्वापर चित्रण किया है। ऐसे ख्यातनामा कवियों में डॉ. परमानन्द जी का नाम आदर पूर्वक लिया जाता है। 15 सर्गीय महाकाव्य "जनविजयम्" आपकी उत्कृष्ट रचना है। "मेघदूत की शैली पर "गंधदूत" गीतिकाव्य का प्रणयन भी आपने किया है। आपने कुर्सी की भागदौड़ में हो रही हानि की ओर इंगित किया है।[2] मेघदूत की सरणि पर डॉ. परमानन्द रचित "गंधदूत" गीतिकाव्य सफल कृति है। इसमें

---

1. गान्धिचरितम् : दीक्षित जी : 20
2. यस्या कृते कुत्सितमेव मर्त्याः, ऋच्छन्ति सीदन्ति च सा त्र कुर्त्री।
   कियाच्चिरं नीतिमपास्य यूयं, भूयोऽपि कुर्स्या प्रणये निमग्नाः।।
   जनविजययम् : परमानन्द 15–21

प्रियतम के दुष्टचरित्रों से परेशान प्रेयसी पति के घर से पितृगृह चली जाती है। सुरा में डूबा पति सुन्दरी के अभाव में परेशान हो आत्महत्या के उद्देश्य से एक जलाशय पर पहुंचा। कीचड़ में खिले कमल को प्रसन्न देख व उससे प्रेरणा लेकर कमलगन्ध को अपना दूत कह उठता है। और वाराणसी में रह रही अपनी प्रेयसी को संदेश भेजता है। प्रथम फरीदाबाद नगर में चलकर मथुरा, वृन्दावन, आगरा–फिरोजाबाद, शिकोहाबाद, इटावा, कानपुर, प्रयाग और वाराणसी तक उसे जाना है। मेरी प्रेयसी सती सावित्री के समान, सीता के समान, तथा द्रोपदी के समान बुद्धिमती एवं निर्भीक है, किन्तु शराब के नशे में धुतत् मुझको समझाने में सक्षम न हो सकी।

"एकं नो मां प्रणयदयितं प्रोदधतं पीतमधम्।।"[1]

आचार्य शारदाचरण जी दीक्षित ने जिन राष्ट्रीय भावनाओं को उद्वेलित कर उन्हें काव्यरूप दिया था, वह प्रवाह आज भी प्रवहणशील है। संस्कृत के अनेक ख्यातनामा कवि राष्ट्रभक्ति के दीप को जलाए हुए हैं। प्रसिद्ध संस्कृत विद्वान डॉ. वासुदेव कृष्ण चतुर्वेदी रचित "इन्दिरागांधीकाव्यम्" तथा "राजीवचरितम्" इसी प्रकार के उत्तम काव्य हैं।[2]

उत्तर प्रदेश संस्कृत अकादमी ने डॉ. चतुर्वेदी जी द्वारा लिखित "भारतस्तवमालिका" रचना को पुरस्कृत भी किया है।

राजीवगांधिचरितम् डॉ. चतुर्वेदी जी की यशस्विनी रचना है। कतिपय पद्य प्रस्तुत हैं–

फिरोजगान्धिनः पुत्रौ, मातायस्येन्दिरा च या।
श्री जवाहर सत्पुत्री देशस्याशाऽभवत्।।
राजीवो भारतस्यात्मा तद्देहं भारतंत्विदम्।
कार्यं देहेन तत्कायं मात्मा यत्र च प्रेरयेत्।।[3]

आचार्य दीक्षित जी ने अपनी कृतियों में जिस विषयवस्तु को स्थान दिया उसका प्रवाह अनवरत गतिशील हैं।

अमरशतक का आलोचनात्मक अध्ययन–

प्रतिपाद्यः– "अमरशतकम्" खण्डकाव्य जैन सन्त अमरमुनि के जीवनवृत्त प्रशंसा, व व्यक्तित्त्व का परिचायक हैं। अमरशतकम् का प्रतिपाद्य निम्नलिखित शीर्षकों में विभक्त किया जा सकता हैं–

मंगलाचरणः– अमरमुनि सदाचारी, दृढ़व्रती, तृष्णारहित, रागद्वैष से रहित, स्वतंत्र मंत्रणा वाले, जिन धर्म के अनुयायी हैं। वे यशस्वी कवि हैं उनको मैं प्रणाम करता हूँ–

---

1. गन्धदूत : डा0 परमानन्द शर्मा 32
2. प्रकाशक – श्रीकृष्ण सत्संग भवन गतश्रम टीला, मथुरा
3. राजीवगान्धिचरितम् : 1–3–4

"आचार–शीलाय दृढ़–व्रताय सर्वेन्द्रिय–प्रीति–निवर्तकाय।
स्वतन्त्र–मन्त्राय जिनेरताय नमोनमस्ते कवयेऽमराय।।[1]

कवि विनम्रता :– आचार्य जी ने विनम्रता प्रदर्शन में पुरातन कवियों का अनुवर्तन किया हैं।

"क्व सूर्यप्रभवो वंशः, क्व.चाल्प विषया मतिः
तितीर्षुःदुस्तरं मोहा दुडुपेनास्मि सागरम्।।"[2]

रघुवंश महाकाव्यम् का अनुसरण करते हुए उन्होंने अमरमुनि के चरित्र वर्णन को अवर्णनीय, दुरूह एवं श्रमसाध्य माना है–

"यदीयं व्यक्तित्वं कविकुलकृतित्वं कलयितुम्।
सशक्तः कोऽव्यक्तः कलनचतुरश्चत्वरयतिः।।"[3]

जन्मस्थान :– अमरमुनि का जन्म पंजाब प्रान्त के पटियाला जनपद के नारनौल नामक नगर में हुआ था। इनका वंश धनयधान्य से युक्त जनबल और धनबल से परिपूर्ण राजपूतवंश था। इनके वंश की ख्याति, सुदूर तक फैली थी।[4]

माता–पिता :– अमरमुनि के पिता का नाम श्री लालसिंह था तथा माता का नाम श्रीमती चमेली देवी था। इनके माता–पिता जैनमुनि मोतीराम में श्रद्धा भाव रखते थे।[5]

बाल्यकाल में ही वैराग्य :– अमरमुनि जी का मन सांसारिक भौतिक सुखों में नही रमा। माता–पिता का वात्सल्य उन्हें बांध न सका। अल्प आयु में ही वे वीतरागी स्वभाव के हो गये। जैनधर्म का प्रभाव उनके मन मस्तिष्क पर छा गया। और उन्हें संसार से पूर्ण वैराग्य हो गया।

"ममत्वं मोहत्वं जननीजनकत्वं परिहरन्।
वयस्यल्पे नल्पं जिनकतिलकल्पं परिवजन्।।"[6]

गुरु पृथ्वीचन्द्र से दीक्षा :– वैरागी बालक अमरमुनि अपने मन में जैनविद्वान पृथ्वीचन्द्र को अपना गुरु बना चुका था। उनके मानसपटल पर गुरु का चित्र अंकित हो चुका था। गुरुभक्ति का परिपाक होने पर अमरमुनि ने गुरु पृथ्वी चन्द्र से दीक्षा ले ली, और संसार में अमरमुनि नाम से विख्यात हो गये।[7]

अखिलेश मुनि से बंधुभाव :– अमरमुनि जी की बंधुता उस समय के प्रसिद्ध सन्त अखिलेश मुनि जी से हुई। अखिलेश जी का हृदय पवित्र तथा स्नेहभाव से

---

1. अमरशतकम् : ले. शारदाचरण दीक्षित : श्लोक सं0।
2. रघुवंश महाकाव्यम् : महाकविकालिदास कृत, द्वितीय सर्ग
3. अमरशतकम् : आचार्य शारदाचरण दीक्षित : श्लोक सं0 3
4. प्रवाले पांचाले प्रबल पटियाला जनपदे, विशाले भूभाले प्यहह। नरनौले निवसिते श्लोक : 4
5. अमरशतकम् : आचार्य शारदाचरण दीक्षितकृत – श्लोक सं0 5
6. अमरशतकम् : आचार्यदीक्षित कृत – श्लोक सं0 6
7. वही : श्लोक सं0 7

भरा हुआ था। दोनों मुनिवर एक दूसरे का सान्निध्य पाकर कृतकृत्य हो उठे–
"अहो ! यद्दीधित्यामखिलमखिलेशो मुनिवरो।
लभद्भातृस्नेहं पयसि धृतभावेन भरितम्।।"[1]

शिष्य परम्परा :– गुरुधाम में निवास करते हुये अमर मुनि ने जैनधर्म के प्रचार एवं प्रसार के कार्य को आगे बढ़ाया। इस श्रृंखला में उन्होंने परमविनीत कामजयी अनुशासित, आज्ञाकारी तथा उदात्त चरित्र वाले विजय तथा सुरेश नामक दो मुनियों को जैनधर्म की शिक्षा दीक्षा दी। इन दोनों मुनियों को उन्होंने विविध प्रकार से उपदिष्ट किया। अमरमुनि जैसे शिक्षादीक्षा गुरु को पाकर दोनों दीक्षित मुनि धन्य हो उठे।[2]

विमार्गियों से टकराव :– जैनधर्म के प्रचार–प्रसार से क्षुब्ध कुछ ईर्ष्यालु कुमार्गियों ने भीनासरी नामक स्थान पर सभा का आयोजन किया, सभा का मुख्य प्रयोजन जैन मतावलम्बियों को नीचा दिखाना था। अमरमुनि ने इस सभा में जाकर इन कुपथगामियों को शास्त्रार्थ द्वारा पराजित कर दिया, तथा जैनधर्म के उच्च एवं मान्य सिद्धान्तों को सिद्ध करके दिखला दिया।

उपाध्याय की उपाधि से अलंकृत :– कुमार्गीयों के पराभव एवं जैनधर्म के उत्कर्ष से सभा में विराजमान जैन मतानुयायी प्रसन्नता से झूम उठे। सभा में स्थित जैन सन्तों ने अमरमुनि के पाण्डित्य से प्रभावित होकर उन्हें उपाध्याय की पदवी (उपाधि) से विभूषित किया। सर्वत्र उनके ज्ञान की चर्चा होने लगी।[3]

सादड़ी में धर्मप्रचारः– सन्त अमरमुनि जी ने जैन परिव्राजकों की एक संघ तैयार किया। इस टोली में जैनधर्म के लिए समर्पित सन्तों की बहुत बड़ी संख्या थी। धर्म प्रचार की परम्परा (श्रृंखला) में उन्होंने सादड़ी नामक स्थान पर एक विशाल सभा का आयोजन किया। विगत 24 महीने के धार्मिक अनुभवों को उन्होंने लोगों को समझाया। अमरमुनि दूसरों के विचारों और सिद्धान्तों को सुनकर स्वमत का इस प्रकार विश्लेषण करते कि श्रोता मुग्ध हो जाते। उन्होंने दूसरे धर्मों के अनुयायियों की निन्दा न करते हुए सादड़ी को सभा में जैन धर्म की ध्वजा को गौरव के साथ समुत्तोलित किया।[4]

अम्बाला में वियजबल्लभ मुनि से भेंट :– पंजाब प्रान्त में जैनधर्म का अलख जगाते अमरमुनि जी एक बार अम्बाला में पधारे। वहीं उनकी भेंट जैनधर्म के यशस्वी सन्त वियजवल्लभ जी से हुई। दोनों सन्तों का यह मिलन अतीव सुखद रहा। दोनों ने वहीं पर चतुर्मास किया। दोनों साथ–साथ धर्मप्रचार कार्य में जुटे जिसका परिणाम

---

1. वही : श्लोक सं0 8
2. अमरशतकम् : आचार्य शारदाचरण दीक्षित : श्लोक सं0 9
3. वही : श्लोक सं0 14–15
4. शारदाचरण दीक्षित कृत : अमरशतक : श्लोक सं0 17

सुखदायक रहा। अम्बाला में ही दोनों ने विविध धर्मानुयायियों से भेंट की।
"लभाख्यो म्बालायां यति तंति नुतायामपि तदा।
शरण्यः सारण्योऽमर मुनिवरेण्यो विजयते।।"[1]

सोजत में मुनि कल्याण मुनि जी से भेंट :– सोजत नामक नगर में जैनियों का विशाल सम्मेलन हुआ। मार्ग में मुनि कल्याण मुनि जी से उनकी भेंट हुई। दो महान जैन सन्तों के मिलन से अपार आनन्द छा गया। मुनि कल्याण विजय द्वारा प्रदर्शित स्नेहभाव से आर्द्रीभूत अमरमुनि जी कृतकृत्य हो गये।

अमरमुनि जी का आगरा पदार्पण :– एक बार मुनि जनकविजय जी समुद्राचार्य जी तथा आचार्य तुलसी जी समवेत होकर ताजनगरी आगरा में पधारे। सौभाग्य से अमरमुनि जी का पदार्पण उसी समय आगरा में हुआ। इन सन्तों को पाकर आगरा नगरी धन्य हो उठी। जैन सन्तों का नगरी ने भव्य स्वागत किया। आगरा नगर में जैनधर्म की गंगा प्रवाहित हो उठी।[2]

अमर मुनि जी का पुष्कर प्रयास :– धर्मप्रचार कार्य से अमर मुनि जी तीर्थ नगरी पुष्कर पहुंचे। पुष्कर हिन्दुओं का प्रसिद्ध तीर्थस्थल है। यहाँ वेदों के प्रसिद्ध विद्वान श्री शरणानन्द जी महाराज से अमर मुनि जी की भेंट हुई। शरणानन्द जी मुनिवर से अतीव प्रभावित हुए।[3]

राष्ट्रपिता महात्मा गांधीजी से दिल्ली में साक्षात :– अमरमुनि जी 1947 ई. में दिल्ली पहुंचे। वहाँ राजधानी में राष्ट्रपिता महात्मागांधी से मिले। बापू जैनधर्म के अहिंसा सिद्धान्त से पहले से ही प्रभावित थे। मुनिवर से अहिंसा विषयक चर्चा सुनकर वे बड़े प्रसन्न हुए।[4]

बौद्ध भिक्षुओं से मिलना :– सम्पूर्ण संसार को अहिंसा का पाठ पढ़ाने वाले अमर मुनि धर्मानन्द और नागार्जुन प्रभृति बौद्ध भिक्षुओं से मिले। बौद्ध भिक्षुओं से वार्तालाप के अवसर पर मुनि जी थोड़ी भी धार्मिक कटुता नहीं आने देते थे। मुनिवर की सहृदयता और प्रेमालायता से बौद्ध भिक्षु अत्यन्त प्रभावित हुए।
"क्वचिद्धर्मानन्दैः क्वचिदपि च नागार्जुनवरै–
रयं बौद्धैः साकं सहृदय हृदाल्हाद चतुरः।।
विनीतः सन्नीतौ सकलमत भेदाननुहरन्।
शरण्यः सारण्यो मर मुनि वरेण्यो विजयते।।"[5]

महामहिम राष्ट्रपति जी से भेंट :– वर्ष 1950 में मुनि जी ने भारत गणराज्य के प्रथम राष्ट्रपति महामहिम राजेन्द्र प्रसाद जी से भेंट की। जैनधर्म के सिद्धान्तों

---

1. वही : श्लोक सं0 21–23
2. आचार्य दीक्षित कृत : अमरशतकम् : श्लोक 25–26
3. वही : श्लोक सं0 28
4. वही : श्लोक सं0 29
5. वही : श्लोक सं0 30

की व्याख्या मुनि जी के मुख से सुनकर राष्ट्रपति महोदय अत्यन्त प्रसन्न हुए।

"तथैव राष्ट्रीयं भरतभुवनीयं गणपतिम्।
प्रसादं राजेन्द्रं नयन पथिकत्वे विहितवान्।।
यदाब्दे पंचाशत् परिमिततमे ख्रीष्ट रवचिते।
शरण्यः सारण्योऽमर मुनिवरेण्यो विजयते।।"[1]

अछूतोद्धार में प्रवृत्त :– धर्म प्रचार की इस श्रृंखला में मुनि जी का ध्यान अछूतों की दीनदशा पर गया। दलितों और समाज के पिछड़े वर्ग की दीन दशा को देखकर उनका हृदय द्रवीभूत हो गयां उन्होंने अछूतों के उद्धार का बीड़ा उठाया और पूर्ण मनोयोग से अछूतों के उद्धार में जुट गये। छूआछूत दूर भगाने हेतु उन्होंने समाज से मार्मिक अपील की।[2]

लालमणि हरिजन की जैनधर्म में दीक्षा :– अमर मुनि कथनी और करनी में तादातम्य के प्रबल पक्षधर थे। अछूतोद्धार के उनके उपदेश कोरे उपदेश ही न रह सके अपितु उन्हें कार्यरूप भी मिले, यह विचार कर मुनि जी में लाल मणि परमार नामक हरिजन को जैनधर्म में दीक्षित कर दिया।

नयायासीयो लालमणि परमारौ हरिजनः।
शुभे स्त्रुहने जैनं धबयति कथीनां सुकृपया।।
अदोऽम्यत्मिन्वाथ्ये किमपि कथनीयं कविरतः।
शरण्यः सारण्योऽमर मुनि वरेण्यो विजयते।।[3]

अछूतोद्धार की यह परम्परा अनवरत रूप से प्रवाहित होती रही। इसी क्रम में व्यावर नामक नगर में खटीक बिरादरी के कई लोगों को भी जैनधर्म में दीक्षित किया।[4]

इस्लाम मतावलम्बियों का जैनधर्म में प्रवेश :– अहिंसा मानवता का दूसरा मूर्तस्वरूप हैं। इस सिद्धान्त का विरोध सहज नहीं है। महात्मा गांधी ने भी अपने तीन निर्देशक तत्वों (मानवीय मूल्यों) सत्य, अहिंसा और प्रेम में अहिंसा को प्रमुख स्थान दिया। जैनधर्म के इस सिद्धान्त से यवन भी प्रभावित हुए बिना न रह सके। भारत की राजधानी दिल्ली में जमील नामक यवन ने अपने अनेक अनुयायियों सहित जैनधर्म में प्रवेश किया तो पूरी राजधानी में तहलका और हंगामा मच गया। भारी विरोध को सहन करते हुए मुनि जी अपने कर्तव्य मार्ग से थोड़े भी विचलित न हुए–

"सुगोचर्यां चर्यां भरतमुनि धुयां मनुभवन्
जमीलाख्यं दिल्लयां जिन जगति कुल्यां कलयितुम्।।"[5]

---

1. आचार्य दीक्षित कृत : अमर शतकम् : श्लोक 31
2. वही : श्लोक 33
3. आचार्य दीक्षित कृत : अमर शतकम् : श्लोक 34
4. वही : श्लोक 35
5. वही : श्लोक 36

समीर मुनि के प्रेरणा स्त्रोत :– अमरमुनि ने जैनधर्म के प्रचार कार्य के लिये पूर्ण समर्पित साधुओं की एक टोली तैयार कर ली थी। धर्मप्रसार मंडल के अग्रणी साधू समीर मुनि थे। समीर मुनि के प्रेरणा स्त्रोत अमर मुनि ही थे।

"यदीयं सिद्धान्तं विनयति समीरो मुनिवरः।
समाजानुन्नेतुं जगति जिन सेतुं समुदयन्।।
नयानामध्यायान्हवनयन मितोऽसौ कविवरः।
शरण्यः सारण्योऽमर मुनि वरेण्यौ विजयते।।"[1]

हरिजनों के हितैषी :– अमरमुनि युग निर्माता थे। पृथ्वी पर उनका अवतरण "बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय" हुआ था। उन्होंने हरिजनों को समाज में पूरा सम्मान दिलाने का व्रत लिया हुआ था। हरिजनों को लगा कि उनका सच्चा हितेषी कोई पृथ्वी पर है।

"जिनत्वै जैनत्वे जिन–जगति सत्वे सुखकरे।
कुतः स्थानं मानं हरिजन–जनानामिति दिशन्।।
इयन्तं सन्देहं प्रशमनपटुः पाटय–जनै।
शरण्यः सारण्योऽमर मुनि वरेण्यौ विजयते।।"[2]

इस छन्द का पदानुवाद आचार्य शारदाचरण दीक्षित के शब्दों में–
जरा जैन जैनत्व का तत्व देखो। सभी पूत हैं छूत हैं जीवधारी।।
भगा के छुआ–छूत की भावना को। करौ जैने धर्मांगमी साधना को।।[3]

आचार्य दिनेश गंगेश झा से वेदों का अध्ययन :– अमरमुनि जी सभी धर्मों के ज्ञानी थे। धार्मिक ग्रन्थों में उपदिष्ट वचनों में वे गहन आस्था रखते थे। वेद भारतीय संस्कृति के मूल आधार हैं। अतः मुनिवर में उस समय के प्रख्यात वैयाकरण एवं वैदिक विद्वान आचार्य दिनेश गंगेश झा से आगम निगम का गम्भीर अध्ययन किया।

पुनर्झोपाह्वैः स्वैः प्रखर–खर–माव्यै र्बुध वरैः।
दिनेशे गंगेशेः निगम–निपुणैर्धीर–पिष्णैः।।
रधीयानः सोऽयं सविनय–नयानः श्रृति–पथम्।
शरण्यः सारण्योऽभर मुनवरेण्यो विजयते ।।[4]

प्रस्तुत शिखारिणी का पद्यानुवाद आचार्य शारदाचरण दीक्षित के शब्दों में इस पकार है–

"दिनेश गंगेश बुध–प्रसाद से, पढ़े सभी देवगिरानुराग से।
कवीन्द्रजी थे नरनौल आदि में, तथा सिंधाणा मुनि के समाज में।।"[5]

---

1. आचार्य दीक्षित कृत : अमर शतक : श्लोक 80
2. वही : श्लोक सं0 40
3. पद्यानुवाद : आचार्यदीक्षित कृत 40
4. आचार्य शारदाचरण दीक्षित : अमरशतकम् : श्लोक 46
5. अमरशतकम् : पद्यानुवाद

सांख्य, व्याकरण, न्यायादि शास्त्रों का अध्ययन :– अमर मुनि ने जैन धर्म का एक और जहां भरपूर प्रचार किया वहीं वैद्वष्पार्जन में दत्तावधान से। नारनौल जनपद के तिषाणी तथा खेतड़ी स्थान पर कपिलमुनि के सांख्यशास्त्र, न्यायशास्त्र, साहित्यिक लाक्षणिक ग्रन्थों, महावैयाकरण पाणिनि कृत संस्कृत व्याकरण तथा षड्दर्शन का अध्ययन किया, और फिर दिली पहुँच गये।

"समा संख्यं सांख्यं नयनय–नितान्तं नियमवन्।
वयणन् काव्यादशं पठनमिमतं पाणिनि–पदम्।।
सहैत्यं साहित्यं दिशि दिशि दिशन् दर्शनंमुखम्।
सिधाण्यां खैताउयाहह नरनौले जनपदे।।"[1]

बौद्ध, जैन और वैदिक ज्ञान के भण्डार :– अमरमुनि जी की चिहवा पर माँ सरस्वती जी खेला करती थी, उन्होंने शास्त्रों का गहन आलोडन विलोडन किया था। उन्होंने मतों के प्रतिनिधि ग्रन्थों का अध्ययन किया था। बौद्धधर्म के ग्रन्थ उन्हें आते थे। वेद ज्ञान विज्ञान के भंडार हैं, यह जानकर उन्होंने वेदों का सांगोपांग अध्ययन किया था–

ततो बौद्धं जैनं विदित–विभवं–वैदिक मतम्।
परिज्ञानेच्छायां धययति चयो वैदिक–धनम्।।
संगीताऋग्वेदाऽध्ययन्–विधपे साहतमलन्।
शरण्यः सारण्योऽमरमुनिवरेण्यो विजयते।।[2]

छन्द का हिन्दी पद्यानुवाद आचार्य दीक्षित के शब्दों में–

इसीलिए वैदिक धर्मशास्त्र में, लिए सभी मृग यजुरादिवेद को।।
पुराण पारायण के अधीन हो, संयोग वेदान्त पढ़े प्रवीन हो।।

शिष्य परम्परा में अग्रणी प्रेममुनि जी :– अमरमुनि जी की शिष्य परम्परा सशक्त रही है। गुरु के समस्त गुणों को लेकर प्रेममुनि अच्छे धर्म प्रचारक सिद्ध हुए। सुयोग्य शिष्य को पाकर अमरमुनि भी निश्चित हो उठे।[3]

सुयोग्य शिष्य अमोलक मुनि :– सुयोग्य गुरु के पदचिन्हों का अनुगमन करने वाले शिष्य अमोलक मुनि ने अमर मुनि के यश को दूर–दूर तक फैलाया। विद्वान गुरु ने शिष्य को सम्पूर्ण निगमागमन की विधायें सौंप दी।

ततोऽध्याप्ये ध्याये अध्ययन–निपुणोऽमोलकमुनिः।
प्रशस्ताश्वस्तानां गुरुवर–पदानामुपगतः।।
अहो ! तस्मै नानागम–निगमसारानुप दिशन्।
शरण्यः सारण्योऽमरमुनि वरेण्यो विजयते।।[4]

---

1. आचार्यदीक्षित कृत : अमरशतकम् : श्लोक 50–51
2. आचार्यदीक्षित कृत : अमरशतकम् : 52
3. वही : श्लोक सं0 56
4. वही : श्लोक सं0 57

फरीदकोट में चन्दनमुनि को दीक्षा :– मुनि फरीदकोट में चातुर्मास कर रहे थे कि वहीं जैनधर्म के पिपासु सन्त चन्दनमुनि को प्राकृत भाषा की शिक्षा दी, तथा जैन धर्म में दीक्षित कर दिया।

पुनर्वर्धापाते वसति सति पंजावसरणौ।
फरीदाब्यै–कोटे जनपदंपदै चन्दनमुनियम्।।
स्वप्राकृत्यां भाषां विविध–विधिकाशामुपदिशन्।
शरण्यः सारण्योऽमरमुनिवरेण्यो विजयते।।[1]

उपरलिखित छन्द का पद्यानुवाद आचार्य दीक्षित के ही शब्दों में–

"प्रवास पंजाब फरीदकोट में, प्रसिद्ध पंजाब महन्त सन्त को।
महामुनिचन्दन को पढ़ा दिया, दिखा दिया प्राकृत के दिगन्त को।।"[2]

अभयमुनि तथा मुनि नेमिचन्द्र को जैनसूत्रों का उपदेश :– अमरमुनि जी ने शिष्य मंडली की जो पंक्ति बड़ी की उसका और छोर नहीं। उन्होंने दिल्ली में अभय मुनि को तथा व्यांवर नगर में मुनि नेमिचन्द्र को जैनसूत्रों का उपदेश किया।[3]

भरतपुर में रोशन मुनि को धर्मोपदेश :– मुनिवर राजस्थान के भरतपुर नगर में पधारे थे। सत्पात्र के कुशलपार्खी अमर मुनि ने रोशन मुनि को जैन धर्म का उपदेश दिया।

स्वसाम्राज्ये भ्राज्ये भरतपुर राज्येऽप्यधिवसन्।
मूर्श स्वानांगख्यं सततमनुशाख्यंधिषणया।
धुतित्वाच्छौतत्वादनुवदनहो रोशन मुनमि्।
शरण्यः सारण्योऽमर मुनिवरेण्यौ विजयते।।

जयपुर में मधुकरजी को जैन दीक्षा :– जयपुर राजस्थान प्रान्त की राजधानी है। इस नगरी में जैनियों की प्रचुरता है। अमरमुनि जी जयपुर पधारे, जैनमतावलम्बियों ने उनका अभिनन्दन किया वहां जयपुर में आपने वर्षाकालीन प्रवास किया तथा श्री मिश्रीमल मधुकर को जैनधर्म की दीक्षा दी।

"पुनः पूर्वांत्पूर्वे जयपुर पुरे राज्यनिकरे।
गणनां तं गण्यं गणधरकथादं व्युपदिशन्।।
स्वयं मिश्रीमल्लं मधुकरमुपाख्यं प्रतिदिने।
शरण्यः सारण्योऽमरमुनिवरेण्यो विजयते।।"[4]

उपरलिखित छन्द का पद्यानुवाद आचार्य दीक्षित के ही शब्दों में –

"जो मधुकर कवि हैं लेखक हैं राजस्थानी।

---

1. आचार्य शारदाचरणदीक्षित कृत : अमरशतकम् श्लोक 58
2. वही : श्लोक सं0 58
3. वही :
4. अमरशतकम् : आचार्य शारदाचरण दीक्षित : श्लोक 61

कवि जी ने उनको भी दी गणधर की बानी।।
जयपुर वर्षावास धर्म को धार धनी ने।
मुनि पुष्कर भी पढ़ा दिया था अमर मुनिमे।।"[1]

भारतवर्ष में जैनधर्म का डिण्डिमघोष :– उपाध्याय अमरमुनि ने भारतवर्ष के सुदूर स्थानों पर जाकर जैनधर्म की दुन्दुभि बजायी। अम्बाला, अजमेर, जयपुर, आगरा, कानपुर, फरीदकोट आदि सैकड़ों स्थानों पर जैन मतानुयायियों को धर्मोपदेश किया।

"नराणां नारीणां जिन चरण–चारिण–विधिना।
सदात्तादार्यासु व्यधिकरण–धर्मागममिवम्।।
समन्तादास्वान्तात्समुवदिशवम् स्वाधिकरणात्।
शरण्यः सारण्योऽमरमुनि वरण्यो विजयते।।"[2]

आगरा से लगाव :– पूर्व में भी निवेदन किया जा चुका है कि अमर मुनि जी का आगरा से विशेष लगाव रहा। लोहामण्डी स्थित जैनभवन में आकर वे प्रयास किया करते थे। निकटस्थ नगरों में धर्मप्रचार के बाद वे लोहामण्डी में आकर रूका करते थे।

"अथं स्त्रुहने देशे सरणि तनया तीर पुलिमे।
स्वयं लोहामण्डयां जगति विदिते जैन भवने।।
चरन् स्थानं–स्थानं स्थिति–हितामते स्थानकमये।
शरण्यः सारण्योऽमर मुनिवरेण्यौ विजयते।।"[3]

इस छन्द का पद्यानुवाद आचार्य शारदाचरण दीक्षित के शब्दों में–

"लोहामण्डी जगविदित है आगरा में अनोखी।
जो जैनों का गहन वन है साधुमार्गी जनों का।।
संचारी हो कविवर वहीं स्थान कस्या दशा में।
आचारों की अनुपम कथा काव्य में है सुनाते।।"[4]

वाराणसी में भी जिनत्व का उद्घोष :– वाराणसी नगरी भारत की सांस्कृतिक राजधानी है। विश्वप्रसिद्ध काशी हिन्दु विश्वविद्यालय, वाराणसी नगर की गौरवमयी शलाका है, यहाँ विश्वविद्यालय के सभाकक्ष में उपाध्याय जी ने प्राकृत भाषा में जिनत्व का उपदेश देकर सभी को मन्त्रमुग्ध कर दिया। काशी के ही राजकीय संस्कृत कालेज सम्प्रति (सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय के नाम से प्रसिद्ध है) में संस्कृत भाषा के माध्यम से विद्वत्गोष्ठी में जैनधर्म का गुणगान किया, और इस प्रकार वाराणसी की पवित्र भूमि में जिनत्वोपदेश किया।[5]

---

1. वही : पद्यानुवाद
2. वही : श्लोक सं0 66
3. आचार्य दीक्षित कृत : अमरशतकम् : 94
4. अमरशतकम् – पद्यानुवाद पेज 41
5. वही : श्लोक : 94–95

रस :– अमरशतकम् में शान्तरस उद्भावित हुआ है। आचार्य विश्वनाथ ने शान्त रस का वर्णन करते हुए लिखा है–

शान्तः शर्म स्थायिभाव उत्तमप्रकृतिर्भतः।
कुन्देन्दुसुन्दरकायः श्रीनारायण देवतः।
अनित्यत्वादिना शेषवस्तु निःसारता तया।
परमात्मस्वरूपं वा तस्यालम्बनमिष्यते।
पुण्याश्रमहरिक्षेत्र तीर्थरम्यवनादयः।
महापुरूषं संगावास्तस्योदीपनः।
रोमांचाचाश्चानुभावास्तथा स्युर्व्यमिचारिणः।
निर्वेदहर्षस्मरणमति भूतदयादयः।।[1]

अर्थात "शांतरस का स्थायी भाव शम, आश्रय, उत्तमपात्र, वर्ण कुन्द पुण्य तथा चन्द्रमा आदि के समान सुन्दर शुक्ल और देवता भगवान लक्ष्मीनारायण हैं। अनित्वत्व दुःखमयत्व आदि रूप से सम्पूर्ण संसार की असारता का ज्ञान अथवा परमात्मा का स्वरूप इस रस में "आलम्बन" होता है। और कवि आदिकों के पवित्र आश्रम, हरिद्वार आदि पवित्र तीर्थ, रमणीय एकान्त वन तथा महात्माओं का संग आदि उद्दीपन विभाव होते हैं। रोमांच आदि इसके अनुभव होते हैं। निर्वेद, हर्ष, स्मरण, मति, प्राणियों पर दया आदि इसके संचारी भाव हैं।

शान्तरस की स्थिति के विषय में न केवल आधुनिक विद्वानों में अपितु प्राचीन विद्वानों में भी मतभेद पाया जाता है। भरतमुनि के "अष्टौनाट्यै रसाः स्मृताः"[2]। कथन के आधार पर वह मतभेद प्रारम्भ हुआ। आचार्य मम्मट, भामह, दण्डी आदि ने भरत के इसी वचन के आधार पर आठ रसों का ही उल्लेख किया तथा शान्त रस का प्रतिवादन नहीं किया। इसके विपरीत उद्भट, आनन्दवर्धन तथा अभिनव गुप्त ने स्पष्ट रूप से शान्त रस का प्रतिपादन किया है।

प्राचीन टीकाकारों के अनुसार –"अष्टौनाट्ये रसास्मृता इस वचन का आशय केवल नाट्य में आठ रसों का प्रतिपादन करना है। काव्य में शान्त रस की सम्भावना को नकारा नहीं जा सकता। इसलिए भरतमुनि ने आगे चलकर शान्त रस का भी प्रतिपादन किया, अतएव मम्मट ने "निर्वेद स्थायी भावी स्तिशान्तोपपि नवमो रसः"[3] लिखकर शान्त रस का प्रतिपादन किया। "अमरशतकम्" में शान्तरस का सुन्दर परिपाक हुआ है। अमरमुनि का वैराग्य, निर्विकार चित्तता, निरहंकारता, शम को शान्तरस का स्थायीभाव बनाने में सहायक होते है। मम्मट प्रतिपादित निर्वेद और विश्वनाथ के

---

1. साहित्यदर्पणं : आचार्य विश्वनाथकृत सं.
   प्रकाशन : चौखन्या प्रकाशन वाराणी वर्ष 1978
   पृष्ठ :
2. भरतमुनिकृत नाट्यशास्त्र, अ0 6, श्लोक 16
3. आचार्य मम्मटकृत काव्य प्रकाश उल्ला. 4, कारिका 35 सूत्र 47 पृ0 138

श्रम में कोई अन्तर नहीं है। ध्वनिकार आनन्दवर्धन ने निर्वेद के अभिप्राय के प्रकाशनार्थ जिस ''तृष्णा क्षय सुख'' का उल्लेख किया है, वह अमरमुनि के व्यक्तित्व में सुलभ है। अमर मुनि में तो तृष्णाएं समाप्त ही हो चुकी हैं–

''ममत्वं मोहत्वं जननीजनकत्वं परिहरन्।
गुरुं पृथ्वीचन्द्रं निजन्मनसि धामै विहितवान्।।''[1]

छन्द :– ''अमरशतकम'' का मंगलाचरणात्क प्रथम श्लोक इन्द्रवज्रा छन्द में निबद्ध है जिसका लक्षण है–

''स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः।''

शेष 11 श्लोक शिखरणी छन्द में निबद्ध है। ऐसा प्रतीत होता है कि शिखरिणी छन्द आचार्य जी को विशेष प्रिय है। अमरशतक के प्रारम्भ में उन्होंने इस बात का उल्लेख भी किया है कि वे इस खण्डकाव्य की रचना शिखरिणी छन्द में करने जा रहे हैं–

विचित्रं तच्चित्रं प्रतिपदपवित्रं चपयितुम्।
प्रयत्नं तन्वानो मनसि मनुजोडरूं मृगयते।।
तदाशीराशीभिः। सहजसबलां स्वानतहरिणीम्।
क्वणन्ती कल्याणीं कवि–कलितवाणी शिखरिणीम्।।[2]

उभयभाषा काव्यों की परम्परा में अमरशतकम् का स्थान :– संस्कृत साहित्य में ही नहीं अपितु विश्व की सभी भाषाओं में ऐसे अनेक ग्रन्थरत्न हैं जिनका पद्यमय अनुवाद दूसरी भाषाओं में हो चुका है। रामायण, गीता, श्रीमदभागवत तो विश्व की अनेक भाषाओं में अनूदित हो चुके हैं। गद्य कथाकाव्य कादम्बरी संस्कृतगीतिकाव्य में भी परिवर्तित हो चुकी है।[3]

श्री प्रभुदत्त ब्रह्मचारी कृत हिन्दी पद्यानुवाद में श्रीमदभागवत ललितआकार पा चुकी है। कदाचित स्वयं की संस्कृत रचना को हिन्दी पद्य में आबद्ध करने का दीक्षित जी का यह प्रथम प्रयास हैं। ''अमरशतकम्'' को संस्कृत एवं हिन्दी दोनों भाषाओं में आकारित कर दीक्षित जी ने सुरभारती के साथ राष्ट्रभारती की भी अद्वितीय सेवा की है।

उभय खण्डकाव्यों का तत्कालीन समाज एवं राजनैतिक परिस्थितियों पर प्रभाव :– ''गांधिचरितम्'' और ''कांग्रेसचरितम्'' तत्कालीन सामाजिक एव राजनैतिक परिस्थितियों के प्रतिबिम्बकाव्य हैं। दोनों खण्डकाव्यों की रचना स्वातन्त्रय प्राप्ति से पूर्व की है। अतः इन खण्डकाव्यों में यथार्थचित्रण की झलक दृष्टिगोचर होती है। आचार्य दीक्षित जी स्वयं भी स्वाधीनता संग्राम के कारागार सेवी सैनानी रहे थे। हृदय

---

1. अमरशतकम् श्लोक सं0 6 : ले. शारदाचरण दीक्षित
2. अमरशतकम् : ले. आचार्य शारदाचरण दीक्षित श्लोक सं0 3
3. अमीरचन्द्र शास्त्री : भीतिकादम्बरी : ला.ब.शा. प्रकाशन, नई दिल्ली।

में प्रज्वलित देशप्रेम की ऊष्मा का उन्होंने काव्य के माध्यम से संवाहन किया। राष्ट्रभक्ति के इस ऊष्मा विकिरण से अनेक लोग प्रभावित हुए और स्वातंत्रय समर में कूदे। आगरा स्वाधीनता की लड़ाई में अपना विशिष्ट स्थान रखता है। यहां के अनेक क्रान्तिकारी देशभक्तों ने भारत की मुक्ति के लिये अपना अमूल्य योगदान किया है। आचार्य दीक्षित जी इन सभी के प्रेरक पुंज थे। वे अपने काव्यपाठ से उनमें नूतन रक्त का संचार करते थे। कांग्रेस एक ऐसा मंच उस समय बन चुका था जिसके झंडातले बैठना एवं संघर्ष करना सामयिक आवश्यकता थी। स्वदेशी का ग्रहण और विदेशी की परित्याग भावना का प्रबल प्रचार इन खण्डकाव्यों से हुआ। विदेशी वस्त्रों की होलियां जलाई गयीं। घर–घर में गांधि चरखे का धर्धरनाद गूंजने लगा था। दीक्षित जी के काव्यों ने "वन्देमातरम्" को अभिवादन उद्घोष बनवा दिया था। राष्ट्रभक्ति की चर्चा चौपालों पर होनी लगी थी। राष्ट्र के लिये त्याग और समर्पण की भावना का बिगुल सर्वत्र बज रहा था। कारागार लोगों के घर बन चुके थे, और हथकड़ियां आभूषण। अंग्रेजों से लोहा लेने के लिये महिलायें अपने शरीर से स्वर्ण तक उतार रही थीं–

परस्यछन्दचरिताय छैदिर, करेषु कृत्वा परिणाम कांक्षिणः।
विसर्जयामासुरप्रक्रियाक्रमा, दहो शरीराणि सुवर्णकान्यपि।।[1]

---

1. कांग्रेसचरितम् : आचार्य शारदाचरण दीक्षित : श्लोक 49

सप्तम अध्याय
जैन धर्म का दार्शनिक आधार

जैन धर्म क्या है ? :–

जैन धर्म का अर्थ है 'जिन' के द्वारा कहा गया धर्म। 'जिन' ईश्वरीय अवतार नहीं होते, वे तो स्वयं अपने पौरूष के बल पर अपने काम क्रोधादि विकारों को जीत कर 'जिन' बनते हैं। 'जिन' शब्द का अर्थ होता है – जीतने वाला। जिसने अपने आत्मिक विकारों पर पूरी तरह से विजय प्राप्त कर ली हो वही जिन है। जो जिन बनते हैं वे हम प्राणियों में से ही बनते हैं। प्रत्येक जीवात्मा 'जिन' होकर परमात्मा बन सकता है। 'जिन' हो जाने पर प्रत्येक जीव सर्वज्ञ और वीतराग हो जाता है। वह जो उपदेश देता है वह उपदेश प्रामाणिक होता है।

जैन धर्म के विचारों का मूल है स्याद्वाद और आचार का मूल है अहिंसा। जैन धर्म जीवात्मा का सर्वज्ञ हो सकना स्वीकार करता है। अतः जैन धर्म किसी ईश्वरीय या किसी स्वयं सिद्ध पुस्तक के द्वारा नहीं कहा गया है। उस मानव के द्वारा जो कभी हम जैसा ही अल्पज्ञ और रागद्वेषी था किन्तु जिसने अपने पौरूष से प्रयत्न करके अपनी आत्मा को रागद्वैष से मुक्त कर लिया और इस तरह वह सर्वज्ञ और वीतरागी होकर जिन बन जाता है। अतः 'जिन' हुए उस मानव के अनुभवों का सार ही जैन धर्म है।

जैन धर्म और दर्शन :– धर्म और दर्शन में अन्योन्याश्रम संबन्ध हैं। जिस प्रकार मनुष्यों के विचारों का प्रभाव उनके आचार पर पड़ता है उसी प्रकार दर्शन का प्रभाव धर्म पर पडता है व धर्म का दर्शन पर। धर्म के भी दो भेद किए जाते हैं एक साध्य रूप धर्म और दूसरा साधनरूप धर्म। परमात्मत्व साध्यरूप धर्म है और आचार या चरित्र साधनरूप धर्म है क्योंकि आचार के द्वारा ही आत्मा परमात्मा बनता है।

जैन दर्शन का आधार : अनेकान्तवाद या स्याद्वाद

जैन दर्शन ने जीवन को मूर्त और अमूर्त इन दो भागों में विभक्त किया है। जीवन अमूर्त है इसलिये उस मौलिक अमूर्त तत्व को जीव नाम दिया गया और मूर्त तत्व की जीवन से भिन्नता दिखलाने के लिये उसे अजीव नाम दिया गया। इस प्रकार जीव और अजीव ये दो मौलिक तत्व मान लिये गए। अजीव तत्व भी पांच भागों में विभाजित है– पुदगल, धर्म, अर्ध, आकाश और काल। इस तरह यह संसार इन छह छह धर्मो से बना हुआ है। गुण क्रिया सम्बन्ध आदि जो अन्य तत्व दूसरे दार्शनिकों ने माने हैं जैन दृष्टि से वे सब द्रव्य की ही अवस्थायें हैं क्योंकि जो कुछ सत् है वह सब द्रव्य हैं। सत् ही द्रव्य का लक्षण हैं। असत् या अभाव नाम का कोई स्वतंत्र तत्व जैन धर्म में नहीं है। भारत में ऐसी दार्शनिक परम्पराओं की कमी नहीं है जो

जीवन में केवल एक तत्व अमूर्त को ही सत्य मानती है और मूर्त तत्व को अमूर्त तत्व से ही निकलने वाला एक अमौलिक पदार्थ मानती है। इस प्रकार वे एक ही मूल तत्व की कल्पना करती हैं और वह तत्व है चैतन्य जड़ का विकास चैतन्य से ही होता है।

जैन दर्शन का मध्यमार्ग :– जैन दर्शन उपर्युक्त दोनों परम्राओं के बीच में है। वह इन दोनों को सत्य मानता है। यह विषय मूलतः तत्वज्ञान का है कि जीवन का कौन सा मौलिक तत्व सत्य है ? तत्वज्ञान का आचार–मीमांसा सें घनिष्ठ संबन्ध है। समन्तभद्र ने कहा है कि तत्वज्ञान के बिना पुण्य–पाप और बन्ध मोंक्ष की व्यवस्था ही समाप्त हो जावेगी।[1] यदि जैन धर्म बौद्धों की यह दृष्टि मान ले कि प्रत्येक पदार्थ क्षण–क्षण में मूलतः परिवर्तित हो जाता है तो मान्यतानुसार धर्म की समस्याएं दूर तथा सांसारिक समस्याएं यथा आर्थिक लेन देन, पति–पत्नी संबन्ध आदि उठ खड़ी होंगी।

भावात्मक ऐक्य की प्रधानता :– जैन दर्शन ने भावात्मक ऐक्य पर, जो सब प्राणियों की समानता का मूल आधार है, विशेष बल दिया है। महान् दार्शनिक सर्वपल्ली डॉ. राधा कृष्णन के शब्दों में यही दर्शन परिलक्षित होता है– "चैतन्य आत्मा को पंचभूतों का कार्य समझना आचार–मीमांसा की दृष्टि से उतना ही निष्प्रयोजित है जितना कि यह मानना कि यह विविधरूप जगत एक ही चैतन्य तत्व का विविध रूप हैं।[2]

जैन दर्शन ने द्रव्यात्मक ऐक्य जो प्राणियों की समानता का नहीं प्रत्युत एकता का आधार बनता है, उसका खण्डन किया। इस प्रकार जैन दर्शन ने जीवन की सरिता को मूर्त और अमूर्त, जीव और अजीव इन दो किनारों के बीच बहने वाली धारा के रूप में स्वीकार कियां। इस तथ्य को जोड़ने वाली कड़ी हमारे संस्कार हैं। संस्कार या कर्म, मूर्त और अमूर्त को जोडते हैं इसलिए इनमें मूर्त और अमूर्त दोनों गुण हैं। यह भावरूप भी हैं और द्रव्य रूप भी हैं। इनका द्रव्य रूप मूर्त को पकड़े हुए है और इनका भावरूप अमूर्त को पकड़े हुए है। इस प्रकार जड़ और चैतन्य की संधि इस संसार का मूल कारण है। इस संधि को तोड़ देना ही चैतन्य की जड़ के प्रभाव से मुक्ति है। इस प्रकार कषाय, मिथ्यादर्शन, अविरति, प्रमादयोग और बन्ध, चैतन्य को जड़ से पकड़े हुए हैं। इन प्रवृत्तियों के कारण जो संस्कार हममें पहले से विद्यमान हैं उनका उन्नूमलन करना कर्तव्य है। चैतन्य को वैभाविक गुणों से मुक्त करके अपने स्वाभाविक गुणों में अनन्तज्ञान व दर्शन स्थापित करने चाहिए। तभी इस आत्मा की सच्ची स्वतंत्रता है। तभी व्यक्ति अपने में से सहज स्फूर्त होने वाले सुख को अनुभव

---

1. नैकान्तवादे सुख दुख भोगौ, न पुण्य पापे न च बन्धमोक्षौ,
(स्यादवाद मंजरी. श्लोक 33 बम्बई 1935)
डॉ. दयानन्द भार्गव, जम्मू
2. इंडियन फिलासफी : डॉ. राधाकृष्णन् : प्रथम अध्याय : पृ0 312

करता है, जो हमारी निधि है।

स्यादवाद : एक विवेचना जब वस्तु बहुधर्मात्म हो जाती है और शब्द उसके सम्पूर्ण धर्मों का कथन एकधा करने में अपना सामर्थ्य खो बैठता है तब प्रत्येक वक्ता अपनी अपनी दृष्टि से वचन व्यवहार करता है। वस्तु का स्वरूप अन्यथा ग्रहीत होने के भय से स्यादवाद का आविष्कार हुआ। 'स्यात्' शब्द के बिना 'अनेकान्त' का प्रकाशन संभव नहीं है। अतः अनेकान्त दृष्टि से प्रत्येक पदार्थ 'स्यात् सत्' और 'स्यात् असत्' है। उक्त वचन व्यवहारों को दार्शनिक भाषा में 'स्यात् सत्' 'स्यात् असत्' 'स्यात् सदसत्' और 'स्यात् अवक्तव्य' कहते है।

द्रव्य व्यवस्था : व्यवस्थापन गुण और पर्यायों के समूह को द्रव्य कहा जाता है। साधारण रीति से गुण नित्य होते है और पर्याय अनित्य। अतः द्रव्य को नित्यानित्य कहा जाता है। जैन दर्शन में सत् का लक्षण उत्पाद, व्यय और ध्रुवता माना गया है। अर्थात् जिसमें प्रतिसमय उत्पत्ति, विनाश और स्थिरता पाई जाती है वही सत् या द्रव्य है। प्रतिपल होने वाला परिवर्तन अदृश्य है। द्रव्य का स्वरूप बतलाते हुए आचार्य कुन्द कुन्द ने कहा है कि – द्व धातु से जिसका अर्थ जाना है द्रव्य शब्द बना है। अतः जो अपने तत् तद् पर्यायों को प्राप्त करता है उसे द्रव्य कहते हैं। वह द्रव्य सत्ता से अभिन्न है।[1] इससे यह ज्ञात होता है कि द्रव्य सत् स्वरूप है। जैसे पर्यायों का प्रवाह सतत् जारी रहता है वैसे ही सत् स्वरूप द्रव्य का प्रवाह भी जारी रहता है। द्रव्य अनादि और अनन्त है। वह गुण और पर्याय का आश्रय है।[2] जैन दर्शन के अनुसार द्रव्य का न तो उत्पाद होता है और न विनाश, वह तो सत् स्वरूप है किन्तु उसी की पर्यायें उसके उत्पाद, व्यय और ध्रुवता को करती है।[3]

जैन दर्शन के इसी सिद्धान्त का प्रतिपादन महर्षि पतंजलि ने भी किया है– "द्रव्य नित्य है और आकार यानी पर्याय अनित्य है। सुवर्ण किसीएक विशिष्ट आकार से पिण्डस्वरूप होता है। पिण्डरूप का विनाश करके उससे माला बनाई जाती है। माला का विनाश करके उससे कड़े बनाए जाते हैं। कड़ों को तोड़कर उससे स्वस्तिक बनाए जाते हैं स्वस्तिकों को गलाकर फिर सुवर्णपिण्ड हो जाता है। उससे फिर दो कुण्डल बना लिये जाते हैं। आकृति के नष्ट होने पर भी द्रव्य शेष रहता ही है।[1]

---

1. "दवियदि गच्छदिताइं ताइं सब्भाव पज्जयाइं जं।
दवियं त मण्णंते अणण्णभूदं तु सत्तादो।।"
(आचार्य कुन्द कुन्द कृत : प्रवचन सार : श्लोक0 प्रः)
2. "दव्वं सल्लक्खणियं उप्पादव्वयधुवत संजुत्तम्।
गुणपज्ज़यासयं वा जं तं भण्णति सव्वण्हू।।"
(प्रवचन सार : आचार्य कुन्द कुछ : श्लोक 10)
3. "उप्पत्तीव विणासो दव्वस्स य णत्थि अत्थि सब्भावो।
विगमुप्पादधुवत्तं करेति तस्सैव पज्जाया।।" वही श्लोक 11

जीव : स्वरूप निर्धारण :– जीव का असाधारण लक्षण चेतना है। वह चेतना जानने और देखने रूप है, अर्थात जो जानता और देखता है वह जीव है।

जीव द्रव्य के सम्बन्ध में जैन दर्शन की मान्यता है कि जीव चैतन्य स्वरूप है, जानने देखने रूप उपयोग वाला है। प्रभु है, कर्त्ता है, भोक्ता है, और अपने शरीर के बराबर है। यद्यपि वह मूर्तिक नहीं है तथापि कर्मों से संयुक्त है।[2]

जीवन के मूल भेद हैं– संसारी जीव और मुक्त जीव। कर्मबन्धन से बद्ध जो जीव एक गति से दूसरी गति में जन्म लेते हैं और मरते हैं वे संसारी हैं और जो इससे छूट चुके हैं वे मुक्त है। संसारी जीव चार प्रकार के होते है नारकी, तिर्यच, मनुष्य और देव।

जैन दर्शन में ईश्वर :– जगत में ईश्वर की कल्पना के पीछे मूल भावना यह होती है कि हर कर्म का कोई न कोई कर्त्ता अवश्य होता है। अतः इस विश्व का भी कोई कर्त्ता तथा नियन्ता है। जैन दर्शन इस तर्क को युक्तिसंगत नहीं मानता। वह किसी को इस विश्व का रचयिता नहीं मानता है। यदि ईश्वर है तो वे अन्नत हैं, अभी भी वे अनन्त काल तक होते रहेंगे। जैन सिद्धान्त के अनुसार प्रत्येक आत्मा अपनी स्वतंत्र सत्ता को लेकर मुक्त हो सकता है। ये मुक्त जीव ही जैन धर्म के ईश्वर है। जिस प्रकार हिन्दू वैष्णवों में भगवान श्री राम की व बौद्धों में बुद्ध जी को ईश्वर के रूप में मान्यता है वैसे ही जैन धर्म में तीर्थकरों की मान्यता है। ये तीर्थकर किसी परमात्मा का अवताररूप नहीं होते अपितु सांसारिकों में से ही कोई जीव प्रयत्न करते करते तीर्थकर पद प्राप्त करता है। तीर्थकर को अर्हत भी कहा जाता है। जैन मतानुयायी ईश्वर के जगत् अकर्तृत्व के प्रमाण में गीता का यह प्रमाण उपस्थित करते है 'ईश्वर जगत के कर्मों को नहीं बनाता है और न कर्मफल के संयोग की व्यवस्था करता है। मात्र स्वभाव काम करता है। परमात्मा न किसी को पाप का फल देता है न पुण्य का। अज्ञान से ज्ञान ढका हुआ है इसी से जगत के प्राणी मोहित हो रहे हैं।[3]

जैन दर्शन व्यक्ति की उपासना नहीं करता अपितु सिद्धान्त की उपासना करता

---

1. "द्रव्यं नित्यम्, आकृतिरनित्या। सुवर्णं कयाचिदाकृत्या युक्तं पिण्डो भवति. पिण्डाकुतिमुपमृद्य रूचकाः क्रियन्ते, रूचकाकृतिमुपमृद्य कटकाः क्रियन्ते, कटकाकृतिमुपमृद्य स्वस्तिकाः क्रियन्ते। पुनरावृत्तः सुवर्ण पिण्ड।....."

(महाभाष्य : पतंजलि : पशपशान्हिकम्)

2. "जीवोऽत्ति ह वदि चेदा उवओगविसेसिदो पहू कत्ता।
भोत्ताय देहमत्तो ण हि मुत्तो बम्मसजुत्तो।।"

(पंचास्तिकाय : श्लोक सं0 27)

3. "न कर्तृत्वं न कर्माणि लोकस्य सृजति प्रभुः।
न कर्मफल संयोगं स्वभावस्तु प्रवर्वते।।
नादत्ते कस्यचित् पापं न कस्य सुकृतुं विभुः।
अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुहयन्ति जन्तवः।।"

(श्रीमदभगवदगीता : 5: 14–15)

है। जैन धर्म में ईश्वर रूप में माने हुए अर्हन्तों और मुक्तात्माओं का उस ईश्वरत्व से कोई सम्बन्ध नहीं है, जिसे अन्य लोग संसार के कर्त्ता हर्ता ईश्वर मानते हैं। उस ईश्वरत्व की तो जैनदर्शन के विविध ग्रन्थों में व्यापक आलोचना की गई है। इस दृष्टि से जैन धर्म को अनीश्वर वादी कहा जा सकता है। उसमें इस तरह के ईश्वर के लिए कोई स्थान नहीं हैं।

<u>मुक्ति का मार्ग : रत्नत्रय :–</u> सुख का साधन धर्म है। धर्म का स्वरूप आचार्य समन्त भद्र ने इस प्रकार निरूपित किया है–

"धर्म के प्रवर्तक सम्यग्दर्शन, सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चरित्र को धर्म कहते हैं। इनके विपरीत मिथ्यादर्शन, मिथ्या ज्ञान और मिथ्या चरित्र संसार के मार्ग हैं।"[1] इन तीनों तत्वों को ही रत्नत्रय धर्म कहते हैं। यही रत्नत्रय धर्म मुक्ति का उपाय है। इस रत्नत्रय के दो भेद है– (1) निश्चय रत्नत्रय और (2) व्यवहार रत्नत्रय।

अपनी आत्मा के असली स्वभाव का श्रद्धधान, ज्ञान तथा उसमें लीनता निश्चय रत्नत्रय हैं तथा जीवादि साततत्वों का व सच्चें देव, गुरु धर्म का श्रद्धधान व ज्ञान तथा साधु या श्रावक गृहस्थ का हिंसादि पापों से छूटना व्यवहाररत्नत्रय है।[2] इन रत्नत्रयों के समावेश से मुक्ति प्राप्त होती है। जैन दर्शन में आत्मा एक स्वतंत्र द्रव्य है जो ज्ञाता और दृष्टा है किन्तु अनादिकाल से कर्मबन्धन से बंधा हुआ होने के कारण अपने किए हुए कर्मों का फल भोगता रहता है। जब वह उस कर्मबन्धन को दूर कर लेता है तो मुक्त कहलाने लगता है। मुक्त अवस्था में उसके अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त सुख, अनन्त वीर्य आदि स्वाभाविक गुण विकसित हो जाते है। मुक्त अवस्था में बिना शरीर के केवल शुद्ध आत्मा रहता है। उसका आकार उसी शरीर के समान होता है जिससे आत्मा ने मुक्ति लाभ किया है। जैसे धूप में खड़े होने पर शरीर की छाया दृष्टिगोचर होती है वैसे ही शरीरकार आत्मा मुक्तावस्था में होती है जो अमूर्त होने के कारण दिखाई नहीं देती।

<u>सप्तभंगी न्याय की ऐतिहासिक, तार्किक एवं दार्शनिक विवेचना</u>

<u>नय :–</u> जैन दर्शन में तत्वज्ञान के लिए नय, निक्षेप, और प्रमाण को आधार माना गया है। 'नय' और प्रमाण यद्यपि तात्विक दृष्टि से एक ही हैं, क्योंकि इन दोनों के समवेत सहकार के द्वारा ही किसी विषय का ज्ञान याथार्थ्येन प्राप्त होता है। जहाँ प्रमाण से किसी अखण्ड वस्तु का ज्ञान होता है वहां 'नय' से केवल आशिक ज्ञान

1. "सद् दृष्टि ज्ञानवृत्तानि धर्मं धर्मेश्वराः विदुः।
   यदीप प्रत्यनीकानि भवन्ति भव पद्धतिः।।"
   (रत्नकरंडश्रावकाचार : समन्त भद्र : उरा श्लोक)
2. "आयारादी णाणं जीवादी दंसणं च विण्णेयम्।
   छज्जीवाणं रक्खा भणदि चरित्तं तु वव हरो।।
   आदाखु मज्झाणायै आदा मे दंसणे चरित्तेय।
   आदा पच्चक्खाणे आदा में संवरे जोगे।।"
   (समयसार कुन्दकुन्दाचार्यकृत : 294–295)

होता है। दोनों के मध्य यही विभाजन रेखा है। आचार्य गैरोला के अनुसार जीवादि पदार्थों का जो बोध कराये उस तर्क प्रक्रिया को 'नय' कहते है।[1] जैन दर्शन में जिन प्रमाणों का उल्लेख मिलता है, उनमें – 'नय' का प्रमुख स्थान है। न्याय दर्शन में इस नय को परामर्श संज्ञा से अभिहित किया गया है। इसको अन्वयी तथा व्यतिरेकी अथवा अस्तिवाचक तथा नास्तिवाचक इन दो भेदों में विभाजित किया गया है। इस दर्शन में 'नय' के सात भेद बताये गये हैं जिनके अन्तर्गत तर्कशास्त्र के उक्त दोनों भेद समाविष्ट हो जाते है।

सम्पूर्ण जगत के स्वावर और जंगम, चेतन और अचेतन समस्त वस्तुओं का सम्यक् निर्णय एवं निर्धारण 'नयं' द्वारा ही किया जाता है।

सत्पभिंगी 'नय' (न्याय) क्या है ? सप्तभंगी 'नय' वह 'नय' है जिसमें सात भंग (वाक्य) हों 'सप्तानां' भंगानां वाक्यानां समाहारः' इति सप्तभंगी जैन दर्शन में वस्तु को अनेक धर्मात्मक निर्दिष्ट किया गया है। ये धर्म अविरूद्ध होते है। इन अविरूदध धर्मो का निश्चय करना ही "सप्तभंगी नय" के सात वाक्यों का कार्य है। अतः सप्तभंगी नय को इन शब्दों में परिभाषाबद्ध किया जा सकता है – "सप्तभंगी जैन दर्शन का वह नय है जिसके द्वारा किसी वस्तु के नाना विध धर्मों का निश्चय एवं निर्धारण तात्विक आधार पर किया जाता है। जैन दर्शन के अनेकान्तवाद की आधारभित्ति इसी सप्तभंगी नय पर आधारित है। जैन दर्शन यह भी स्वीकार करता है कि एक ही समय में और एक ही अर्थ में किसी पदार्थ के परस्पर विरोधी गुण नहीं रह सकते।

सप्तभंगी न्याय : एक विवेचना

जैन परम्परा में प्रत्येक पदार्थ जटिल स्वरूप का है। अर्थात् भेदों के रहते हुए भी एकात्मरूप में विद्यमान है। वास्तविक सत्ता अपने अन्तरभेदों को समाविष्ट रखती है। ऐसे गुण जो भावात्मक या अमूर्तरूप में परस्पर विरोधी हैं जीवन में अनुभव के साथ–साथ रहते है। महान दार्शनिक सर्वपल्ली डॉ0 राधाकृष्णन ने इस प्रकरण की विवेचना में दोलायमान वृक्ष को उदाहृत किया है–

"वृक्ष हिलता है अर्थात उसकी शाखाएं हिलती है, किन्तु स्वयं वृक्ष नहीं हिलता, क्योंकि वह अपने स्थान में स्थिर है, और मजबूती से भूमि में गड़ा हुआ है। हमारे लिये यह आवश्यक है कि हम एक पदार्थ को स्पष्ट रूप में, और अन्य पदार्थो से भिन्न रूप में जानें, उसकी अपनी निजी सत्ता के रूप में अन्य पदार्थो के सम्बन्धों में भी उसकी सत्ता को पहचान कर रखें।[1]

सप्तभंगी न्याय अनेकान्तवाद का स्वाभाविक परिणाम है, जिसका तात्पर्य है कि

---

1. "भारतीय दर्शन : वाचस्पति गैरोला पृष्ठ 100
   लोक भारती प्रकाशन इलाहाबाद 1972
2. "भारतीय दर्शन : डॉ. राधाकृष्णन : पृष्ठ 280
   (राजपाल एण्ड सन्स दिल्ली सन् 1962)

यथार्थ सत्ता के अनेक रूप हैं। चूँकि यथार्थ सत्ता की अनेक आकृतियाँ है, और वे सदा परिवर्तनशील है, अतः किसी भी पदार्थ को सर्वदा, सर्वत्र, हर प्रकार से वर्तमान रहने वाला नहीं कहा जा सकता है।

सप्तभंग स्वरूप :–

सप्तभंग या वाक्य इस प्रकार है :–

1. स्यादस्ति घटः (शायद घट है)
2. स्यान्नास्ति घटः (शायद घट नहीं है)
3. स्यादस्ति नास्ति च घटः (शायद घट है भी और नहीं भी)
4. स्यादवक्तव्यो घटः (शायद घट वर्णनातीत है)
5. स्यादस्ति चावक्तष्व्श्च घटः (शायद घट है भी और अवक्तव्य और अवर्णनीय भी हैं)
6. स्यान्नास्तिचादक्तव्यश्च घटः (शायद घट नहीं है और अवर्णनीय भी है)
7. स्यादस्ति नास्ति चावक्तव्यश्च घटः (शायद घट है, नहीं भी है और अवर्णनीय भी नहीं है)

शंकराचार्य जी ने चतुर्थ भंग "स्यादवक्तव्य" के विषय में उसका खण्डन पक्ष प्रस्तुत किया है। शंकराचार्य जी का मानना है कि पदार्थों को अवक्तव्य कहना क्या कथमपि सम्भव है। यदि ये पदार्थ अवक्तव्य होते तो इनका कथन ही कैसे किया जा सकता है। कथन भी किया जाये और अवक्तव्य भी कहा जाये ये दोनों बातें परस्पर विरूद्ध हैं।[1]

शंकराचार्य की जिज्ञासा के समाधान में जैन विद्वानों का कहना है कि जैन दर्शन वस्तु को सर्वथा अवक्तव्य नहीं मानता, प्रत्युत अपेक्षा की दृष्टि से ही अवक्तव्य मानता है। इसी बात को सूक्ति करने के लिये "अवक्तव्य" से पूर्व "स्यात्" शब्द का प्रयोग उक्त भंग में किया गया है। वस्तु सर्वथा अवक्तव्य नहीं है केवल दृष्टिकोण विशेष से अवक्तव्य है।[2]

सप्तभंगीवाद का विकास दार्शनिक क्षेत्र में हुआ था, इसलिए उसका उपयोग भी दार्शनिक क्षेत्र में ही हुआ। सप्तभंगी वाद को जैनवाङ्.मय के दार्शनिक क्षेत्र में प्रवर्तित करने का श्रेय सर्वप्रथम स्वामी समन्तभद्र को ही प्राप्त है। उन्होंने अपनी आप्त मीमांसा में सांख्य को सदैकान्तवादी, माध्यमिक को असदैकान्तवादी, वेशेषिक को सदसदैकान्तवादी और बौद्ध को अवक्तव्येकान्तवादी बतलाकर मूल चार भंगों

---

1. नचैषां पदार्थानाम् अवक्तव्यं संभवति। अवक्तव्यश्चेत् नोच्येरन्।
उच्यन्ते चावक्तव्यश्चेति विप्रतिसिद्धम्।"
ब्रहमसूत्र : शांकर भाष्य : 2/2/33
2. जैनधर्म : कैलाश चन्द्र शास्त्री : पृष्ठ 70
भारतीय दिगम्बर जैन संघ "मथुरा" 1955

का उपयोग किया, और शेष तीन भंगों का उपयोग करने का संकेत किया है।[1]

श्री अकलंकदेव ने आप्तमीमांसा पर अष्टशती नामक भाष्य लिखा है। समन्तभद्र द्वारा अप्रयुक्त वाद के तीनों भंगों का प्रयोग करके उस कमी को पूरा कर दिया। उनके मत से शंकराचार्य का अनिर्वचनीय वाद, सदवक्तव्य, बौद्धों का अन्यायोहवाद, असदवक्तव्य और योग का पद्धार्थवाद सदसदवक्तव्य में अन्तर्निहित है। इस प्रकार सातों भंगों का उपयोग जैन वाड्मय में परिलक्षित हो जाता है।

सप्तवाक्य का आशय समझने के लिये, उनमें प्रयुक्त स्यात्, अस्ति, और घट इन तीनों शब्दों का आनुपूर्वी अभिप्राय समझना आवश्यक है।

स्यात् :– स्यात् शब्द का प्रयोग ''नय'' में इसलिए किया गया है कि कोई वाक्य किसी एक निश्चयात्मक अर्थ का बोध नहीं कराता हैं, अपितु उसके दूसरे अर्थ भी ध्वनित होते हैं।

अस्ति :– ''अस्ति'' शब्द वस्तु में धर्मों की स्थिति का सूचक हैं। वस्तु में धर्मों की स्थिति आठ प्रकार से होती है– काल, आत्म रूप, अर्थ सम्बन्ध, उपकार, गुणिदेश, संसर्ग और शब्द। इन आठ प्रकार के वस्तुधर्मो का स्पष्टीकरण सप्तभंगीनय से किया जाता है।

घट :– जिस प्रकार किसी वस्तु के धर्मों की स्थिति आठ प्रकार से विद्यमान रहती हैं वैसे ही वस्तु की वास्तविक स्थिति चार प्रकार की मानी गयी है– नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव। उदाहरणार्थ– मिट्टी से अनेक वस्तुओं का निर्माण होता हैं, किन्तु घट संज्ञा से एक ही वस्तु का अभिज्ञान होता है। ''स्थापना'' का आशय उस स्थान से हैं जहाँ वह घट अवस्थित हैं। घट में जो मृत्तिका है वही द्रव्य है। घट जिस काल में वर्तमान है, वह उसका भाव कहलाता है, वह काल वर्तमान ही हो सकता है भूत, भविष्य नहीं हो सकता।

सप्तभंग सिद्धि :– 1. स्यादस्ति घट :– जैन तार्किकों ने सातों नय के साथ 'स्यात्' शब्द की योजना विशेष अभिप्राय से की है। उनका यह मन्तव्य रहा होगा कि कोई भी 'नय' सम्पूर्णतया निरपेक्ष या एकान्त रूप से सत्य नहीं है, अपितु आपेक्षिक हैं।

शायद घट है इसका प्रथम आशय यह है कि घट अपने नाम, स्थापना, द्रव्य और भावरूप में विद्यमान है। शायद शब्द घट के साथ इसलिए जोड़ दिया गया है कि यह न समझा जाये कि घट में ये ही बातें सातत्येन विद्यमान रहती हैं। घट में जो बाल वर्ण है वह परिस्थिति जन्य है। घट में रक्त वर्ण की उपस्थिति सार्वदेशिक और सार्वकालिक नहीं है।

2. स्यान्नास्ति घटः– शायद घट नहीं है इसका तात्पर्य यह है कि परनाम, पररूप,

---

1. आप्तमीमांसा : आचार्यसमन्तभद्र : कारिका 9–20

परद्रव्य और परकाल ये घट नहीं हैं किनतु इस वाक्य से घट के निषेध की अभिव्यक्ति नहीं होती है। नहीं कहने से उसका सर्वथा अभाव नहीं होता बल्कि घट की सत्ता प्रधान नहीं रहती। यह वाक्य प्रथम वाक्य के विरूद्ध नहीं है। 'स्यात्' शब्द से यह आशय निकलता है कि जिस घट में सम्बन्ध में परामर्श हुआ है, वह विशेष समय में नही है, अर्थात् इस समय वह उस स्थान पर नहीं है जहां के लिये सम्बन्ध में परामर्श दिया गया था।

3. स्यादस्ति नास्ति च घटः– शायद घट है और नहीं भी है। इस संयुक्त परामर्श की इसलिये अपेक्षा हुई कि घट रक्तवर्ण का हो सकता है, तथा कभी दूसरे रंग का भी हो सकता है। इस तृतीय तार्किक नय से किसी वस्तु के होने और न होने इन दोनों बातों का समवेत बोध होता है। 'अस्ति' से घट की निजरूप सत्ता का होना बताया गया है, और नास्ति से परसत्ता प्रधान होने के कारण उसका नहीं होना बताया गया है।

4. स्यादवक्तव्यो घटः– शायद घट है जिसके विषय में कुछ कहा नहीं जा सकता है इस नय वाक्य का तात्पर्य यह है कि एक समय में घट के निजरूप की सत्ता और उसके पररूप की सत्ता प्रमुख होने के कारण वह वर्णनीय नहीं रह जाता वह अवक्तव्य हो जाता है। ऐसी वस्तु जो एक ही समय में अपने निजरूप तथा पररूप दोनों की प्रधानता रखती हो उसके सम्बन्ध में इसके अतिरिक्त और कहा ही क्या जा सकता है कि वह अवक्तव्य (वर्णनातीत) है।

इस 'नय' में एक वस्तु के परस्पर विरोधी गुणों को एक साथ वैचारिक निष्कर्ष पर परखा जाता है। ऐसी दशा में उसको 'स्यातवक्तव्य' ही कहना तर्कसंगत लगता है। उदाहरणार्थ – यदि यह पूंछा जाय कि घड़े का रंग प्रत्येक काल तथा प्रत्येक अवस्था में कैसा रहता है तो इसका उत्तर देना नितान्त दुष्कर एवं असम्भव है।

5. स्यादस्तिचावक्तव्यश्च घटः– शायद घट है, और अवक्तव्य भी है, इस परामर्श वाक्य का अर्थ यह है कि यदि घट के निर्मिति द्रव्य (मूर्त्तिका) को देखें तो घट है किन्तु उसके द्रव्यरूप मूर्त्तिका और उसके परिवर्तनशील रूप दोनों को एक काल में देखें तो घट की सत्ता स्वीकार करने पर भी यह कथन स्वतः निःसृत होगा कि वह अवक्तव्य है। उदाहरण के लिये किसी विशेष परिस्थिति में हम घट को लाल कह सकते हैं किन्तु जब नेत्र व्यापार का निश्चितीकरण न हो उस दशा में घड़े के रंग का वर्णन करना असंगत हो जाता है, उस दशा में यह कहना पड़ता है कि घट लालवर्ण का तो है किन्तु अवक्तव्य है।

6. स्यान्नस्ति चावक्तव्यश्च घटः– "शायद घट नहीं है और अवक्तव्य भी है" इस परामर्श वाक्य का अभिप्राय यह है कि घट अपने पर्याय रूप की अपेक्षा नहीं रखता क्योंकि वे रूप प्रतिक्षण परिवर्तन की प्रक्रिया से गुजरते हैं। इसमें असत्ता रहित अवक्तव्य की भावना प्रबल होती है। अतः यह आशय ध्वनित होता है कि शायद

घट नहीं है और वह अवक्तव्य भी है।

7. स्यादस्ति नास्ति चावक्तव्यश्च घटः– "शायद घट है, नहीं भी है और वह एवक्तव्य भी हैं" इस परामर्श वाक्य में द्रव्य पर्यायों के एक साथ होने और पृथक्–पृथक् होने के कारण घट का अस्तित्व, अनस्तित्व, तथा अवक्तव्यत्व सूचित किया गया है। उदाहरणार्थ– निर्मिति द्रव्य मृत्तिका की सत्ता के कारण वह घट है, उसके रूप प्रतिक्षण, परिवर्तनशील हैं अतः वह घट नहीं है तथा इन दोनों पर्यायों के एक साथ समन्वय होने के कारण वह वर्णन से रहित अर्थात् अवक्तव्य भी है।

इस प्रकार जैन दर्शन नय की इन सात मंगियों (वाक्यों) को देखकर, तथा अनुशीलन कर कहा जा सकता है कि किसी एक वस्तु का धर्मनिर्णय प्रतिपादन करने के लिये उसको अनेक तार्किक एवं वैचारिक दृष्टिकोणों से देखना पड़ता है। जब तक हम वस्तु में विद्यमान नानाविध धर्मों का समीक्षण एवं परिशीलन कर उनका सम्पूर्ण परिचय प्राप्त न कर लें तब तक उस वस्तु के प्रति हमारा अवगम अपूर्ण और अव्यवस्थित ही रहेगा। आचार्य बलदेव प्रसाद उपाध्याय ने भी जैनधर्म में सप्तभंगी न्याय का महत्व प्रतिपादन करते हुये वस्तुनिष्ठ धर्म के अवगम के लिये इस नय की प्रमुखता को स्वीकार किया है।[1]

"अवैदिक भारतीय धर्मों में जैनधर्म का स्थान"

भौतिकवादी विचारधारा का उदय :– भारतीय प्राचीन इतिहास का अनुशीलन करने पर स्पष्ट लक्षित होता है कि यहां की सामाजिक एवं वैचारिक मान्यताएं दो धाराओं में विभक्त हो चुकी थीं। एक विचारधारा का प्रतिनिधित्व वैदिकधर्म के अनुयायी आर्य कर रहे थे– तो दूसरी विचारधारा का प्रतिनिधित्व भौतिकवादी अनार्य कर है थे। वैदिक साहित्य के अन्तिम भाग उपनिषद ग्रन्थों में आर्य और अनार्य समूहों के परस्पर विरोधी विचारों का उल्लेख हुआ है। उपनिषदों की स्थिति वेदों के अनुकूल नहीं है। एक ओर वे वेद की मौलिकता को स्वीकार करते हैं तो दूसरी ओर वे कहते हैं कि वैदिक ज्ञान सत्यदेवी परिज्ञान से बहुत न्यून है और हमें मुक्ति नहीं दिला सकता।[2] वैदिक युग में ही एक ऐसे समाज का जन्म हो चुका था जो भारतीय वैदिक विचारधारा में भौतिकवादी अवधारणाओं की आधारभित्ति का निर्माण करने में जुटा था। यह वह समय था जब मानव मस्तिष्क नियमित क्रियाखण्ड की परिधि में ही घूमा करता था। समस्त वातावरण विधि विधानों से रूंधा हुआ था। कुछ मंत्रों का उच्चारण किये बिना कोई न जाग सकता था, न उठ सकता था और न कुछ खा सकता था। क्षुद्र और निष्पल धर्म ने एक सारहीन आवरण में मनुष्यों को बांध लिया था। इन उपनिषदों का ब्रहमवाद व वेदों का याज्ञिक क्रिया काण्ड यह तर्कविरूद्ध

---

1. भारतीय दर्शन सार : बलदेव प्रसाद उपाध्याय : पृष्ठ 139
   सस्ता साहित्य प्रकाशन दिल्ली 1962
2. भारतीय दर्शन : डॉ. एस. राधाकृष्णन् भाग पृष्ठ 149

संयोग अधिक दिनों तक नहीं चल सकता था। समय एक ऐसे धर्म की प्रतिक्षा कर रहा था जो गम्भीर और अधिक आध्यात्मिक हो तथा मनुष्यों के साधारण जीवन में उतर सके। पूर्वोक्त विचारक समूह दृष्ट तथा अनुभूत सत्यों का समर्थक था। ये विचारक आर्यों की वैदिक परम्परा से सम्बन्ध तोड़कर जीवन तथा जगत की पहेलियों को अपने निराले ढंग से हल करने के लिये उद्यत थे। उपनिषदों के युग में भी भौतिकवादी विचारधारा ने अपनी स्वतंत्र वैचारिक सत्ता की प्रतिष्ठा कर ली थी।[1] उपनिषदकालीन भौतिकवादी विचारकों में उद्दालक, आरूणि, और सत्यकाम जाबाल का नाम प्रमुख है। तत्कालीन भारत में भौतिकवादी विचारकों में उद्दालक, आरूणि और सत्यकाम जाबाल का नाम प्रमुख है। तत्कालीन भारत में भौतिकवादी विचारकों के अनेक केन्द्र स्थापित हो चुके थे। जिनमें कुरू, पांचाल, पंजाब, काशी और मिथिला का नाम महत्वपूर्ण है। अवैदिक आर्यों जिनका अपर नाम व्रात्य भी है ने वैचारिक परिवर्तन की इस प्रक्रिया में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका प्रस्तुत की, इस विचारधारा का प्रतिनिधित्व बृहस्पति, चार्वाक और कपिल ने किया। बौद्धों, जैनों और चार्वाकों ने चलित धर्म की बनावटी दशा का आकलन कर अपने अपने धर्मों की प्रतिष्ठा की।

अवैदिक चार्वाक् दर्शनः— चार्वाक् दर्शन की व्याख्या भिन्न—भिन्न आचार्यों ने पृथक्—पृथक् दृष्टिकोणों से की है। कुछ विद्वान चार्वाक शब्द को अभिधानवाची न मानकर विचारधारा का प्रतीक मानते है। "चारू वाक्" (मधुर वाणी) इस व्युत्पत्ति से भी कुछ लोग सहमत हैं। इस मत का उपदेश था "खाओ पीओ मौज उड़ाओ" इन मीठे वचनों के आधार पर ही चार्वाक् नाम की प्रतिष्ठा सिद्ध होती है। चार्वाक् मत का दूसरा नाम वाल्मीकि रामायण में लोकायत है, रामायण में कहा गया है कि लोकायतिक अपने को पण्डित समझते हैं, वे बाल बुद्धि होते हैं तथा अनर्थकारी कृत्यों में कुशल होते हैं। धर्मशास्त्र का ये निरादर करके अपनी कृतार्किक बुद्धि से निरर्थक बातें करते हैं।[2]

चार्वाक दर्शन की तत्वमीमांसा :—

चारतत्व देहात्मवादः— आचार्य चार्वाक् मूलतः प्रत्यक्षवादी विचारक थे। सृष्टि के निर्माण में पृथ्वी, जल, तेज और वायु इन चार तत्वों का सहयोग एवं सहकार वे मानते हैं, पाँचवा आकाश तत्व उनकी दृष्टि में अनावश्यक है। उनके मत में चैतन्यविशिष्ट देह ही आत्मा है। देह से अतिरिक्त आत्मा का कोई अस्तित्व नहीं है। देह नष्ट हो जाने पर चैतन्य नष्ट हो जाता है।

---

1. भारतीय दर्शन : गैरोला पृ0 66
2. कचिन्न लोकायतिकान् ब्राह्मणांस्तात सेवसे।
   अनर्थकुशलता ह्येते बालाः पण्डित मानिनः।।
   धर्मशास्त्रेषु मुख्येषु विद्यमानेषु दुर्बुधाः।
   बुद्धिमान्वीक्षिकीं प्राप्य निरर्थं प्रवदन्ति ते।।

   रामायण अयोध्या काण्ड / 02 : 38—39

प्रत्यक्ष ही एकमेव प्रमाणः– चार्वाक दर्शन में प्रत्यक्ष प्रमाण को ही एकमात्र प्रमाण माना गया है। इन्द्रियगोचरता ही सत्यता का निकषोपल है। इन्द्रियों के द्वारा जो कुछ भी ज्ञेय बोध्य एवं गम्य है वही सत्य है, और वही प्रमाण्य भी है। अतः प्रत्यक्षा तिरिक्त अनुमानादि प्रमाणों को चार्वाक् दर्शन प्रामाणिक नहीं मानता।

वेद धूर्तों का प्रलापः– चार्वाकों का मन्तव्य है कि वेद स्वतः प्रामाण्य एवं ईश्वरोक्त नहीं है। संसार को प्रवंचित करने के लिये ही कतिपय, स्वार्थी लोगों ने वेदों की रचना कर डाली है। वेदों में निर्दिष्ट यज्ञ, उपवास, व्रत, तीर्थ, स्वर्ग, नरक आदि बातें मनगढ़न्त है। शशश्रंग एवं खपुष्पवत् यज्ञादिक कपोलकल्पित हैं। सर्वदर्शन संग्रह में चार्वाकों का यह मत उद्धरण के रूप में प्राप्त होता है कि वेदों के कर्ता भाण, धूर्त, और निशाचर हैं–

''त्रयो वेदस्य कर्तारो भण्डधूर्तनिशाचराः।
जर्फरीतुर्फरीत्यादि पण्डितानां वचः स्मृतम्।।

सुखवाद में आस्थाः– चार्वाक सुखवादी दार्शनिक थे। भौतिक सुख की अवाप्ति को वे जीवन का एकमेव लक्ष्य मानते हैं सुख की प्राप्ति अर्थ से ही होती है, इसलिए अर्थ भी अवान्तर पुरूषार्थ है। चार्वाक् की शिक्षा है कि जब तक जीओ खूब मौज से जीओ। यदि पास में धन न हो तो किसी धनवान से ऋण लेकर भी घी पीओ। अपने मन में ऋण चुकाने का डर तनिक भी न रखो। भस्म हो जाने वाले देह का फिर इस संसार में आना थोड़ा ही होता है अतः जैसे भी हो सुखों का भोग करो–

''यावत् जीवेत् सुखं जीवेत ऋणं कृत्वा घृतं पिवेत्।
भस्मी भूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः।।

अनीश्वरवादः– चार्वाक् दर्शन अनीश्वरवादी है। ईश्वर की सत्ता प्रत्यक्ष प्रमाण से सिद्ध नहीं होती। स्वभाव से ही जगत की विचित्रता तथा सृष्टि एवं ''नय'' मानने से चार्वाकों के लिये ईश्वर की सत्ता मानने की आवश्यकता नहीं होती। श्रुति को प्रमाण न मानने से वह ईश्वर की सत्ता शब्द के आधार पर नहीं मानते।

नैयायिक जगत को कार्य मानकर अनुमान के द्वारा ईश्वर में– जगत का कर्तृत्व निर्धारित करते हैं, पर चार्वाक् शब्द की तरह अनुमान को भी अप्रामाणिक मानता है, और ईश्वर को असिद्ध मानता है।

चार्वाक दर्शन समीक्षाः– भारतीय दृष्टि से चार्वाक् दर्शन पूर्णरूपेण नास्तिक है। वह न वेद को मानता है, न परलोक को, न ईश्वर को, और न धर्म को। वह अर्थ और काम को ही पुरूषार्थ मानता है। वह प्रत्यक्षवादी दर्शन है। वह केवल इन्द्रियानुभूत पदार्थों को सत्य मानता है। भौतिक सुखों में आसवित की पराकाष्ठा इस दर्शन में प्रतिबिम्बित होती है। इसीलिए पास में धन न रहने पर भी ऋण लेकर घृतपान करने की चार्वाक् प्रवृत्ति की अवैदिक बौद्ध और जैन दर्शन ने भी निन्दा की है।

आचार्य बलदेव उपाध्याय ने चार्वाकों को प्राचीन भारतीय तार्किक मानते हुए

उन्हें पुरातन वैज्ञानिक सिद्ध करना चाहा है, उनके मत में "आधुनिक वैज्ञानिकों की अपेक्षा ये संयमी है। तथा संयत जीवन बिताने के पक्षपाती है। इसलिये वे ऋण लेकर भी घी पीने का उपदेश देते हैं, शराब पीने का नहीं। सुन्दर समाज में रहकर ही प्राणी अपनी उन्नति कर सकता है, इस बात की ओर चार्वाकों ने अधिक आग्रह दिखलाया है। अतः उनके सिद्धान्तों का भी मूल्य है। वे एकदम निस्सार नहीं है।[1]

बौद्ध दर्शन : विवेचन

बौद्ध दर्शन :– बौद्ध दर्शन विश्व के महनीय धर्मों में अन्यतम है। भगवान बुद्ध ने पवित्र भारत भूमि पर अवतीर्ण होकर बौद्ध धर्म के जिस धर्मचक्र का प्रवर्तन किया, वह इतना सजीव, व्यावहारिक, तथा मंगलकारी था, कि आज ढाई हजार वर्ष के बाद भी उसका प्रभाव मानव समाज पर तनिक भी कम नहीं हुआ है। इस धर्म ने कोटिशः प्राणियों का मंगलसाधन किया है। समूचे विश्व में धर्मानुयायियों की गणना की दृष्टि से बौद्धधर्म ही सर्वप्रथम सिद्ध होता है। भगवान बुद्ध इस धर्म के प्रवर्तयिता, द्रष्टा और आदि प्रचारक थे। बुद्ध निर्वाण के सौ वर्षों के बाद 327 वि.पू. में बौद्ध संघ में फूट पैदा होकर दो वादों का जन्म हुआ– 1. स्थविर वाद 2. महासंधिक या संशोधनवादी

थेरवाद या स्थविरवाद वह है जिसमें धर्माचार्य रंचमात्र भी संशोधन करने के प्रतिकूल थे। स्थविर वाद को ही हीनयान कहा जाता है।

महासंधिक धार्मिक संशोधन के पक्षपातियों का संघ है। अनेक अवान्तर परिवर्तनों के बाद इसे महायान की संज्ञा से सम्बोधित किया जाने लगा, इस प्रकार हीनयान और महायान इन दो बौद्ध विचारधाराओं का उद्गम हुआ।

बौद्ध धर्म का मूल सिद्धान्त :–

1. प्रतीत्य समुत्पाद :– बौद्ध विचारधारा में जीव आत्मा, जगत और जन्म विषयक अवधारणाओं का आधार प्रतीत्य समुत्पाद है। इस सिद्धान्त के अनुसार वस्तुओं का अस्तित्व असंदिग्ध है, किन्तु उनको नित्य नहीं कहा जा सकता। वस्तु की उत्पत्ति दूसरी वस्तुओं से होती है। दूसरे शब्दों में वस्तुओं का पूर्ण विनाश भी नहीं होता। इसलिए वस्तुएं न तो पूर्ण नित्य है और न पूर्ण विनाशशील एक वस्तु के बाद दूसरी वस्तु उत्पन्न होती है। इसी सनातन एवं शाश्वत नियम को प्रतीत्य समुत्पाद नाम दिया गया है। प्रतीत्य समुत्पाद का अर्थ है पराश्रित उत्पादन अर्थात् एक वस्तु का दूसरी वस्तु से उत्पादन होना।

अनित्यतावाद : क्षणिकवाद :– बौद्धधर्म की विचारणा यह है कि – किसी वस्तु का अस्तित्व तभी संभव है, जब वह पहले अनित्य हो। विश्व का वस्तु समूह अनित्य धर्मों के संघात पर टिका है। अतः वे अनित्य है। उनमें उत्पाद हैं, स्थिति है, और निरोध भी है। यही बौद्धधर्म का अनित्यतावादी सिद्धान्त है। बुद्ध ने जिस अनित्यतावादी

---

1. भारतीय दर्शन : आचार्य बलदेव उपाध्याया : शारदा मन्दिर वाराणसी 1971– पृ0 89

विचारधारा का प्रतिपादन किया था, उनके अनुयायियों ने उसे क्षणिकवाद के नाम से अभिहित किया। क्षणिकवाद प्रत्येक वस्तु को अनित्य तो मानता है किन्तु वह इससे भी बढ़कर प्रत्येक वस्तु की सत्ता को क्षणभंगुर भी मानता है।

जगत के समस्त पदार्थों को क्षणिक मानने से व्यवहार तथा परमार्थ की उत्पत्ति की सिद्धि नहीं हो सकती। वस्तुओं के क्षणिक होने पर किसी क्षण की क्रिया फल उत्पन्न किये बिना ही अतीत के गर्भ में विलीन हो जाती है।[1]

<u>अनात्मवाद :–</u> बौद्धदर्शन का मानना है कि जीव के भीतर ऐसा कोई तत्व नहीं है जिसे हम आत्मा कह सकें। रूपवेदना, संज्ञा, संस्कार और विज्ञान, इन पांचों का समूह पंच स्कन्ध कहलाता है। पंचस्कन्ध का संहरण, शरीर के रूप में उत्पन्न होता है। रूपवेदना आदि को आत्मा समझना भूल है। क्योंकि एक तो वे रोग तथा बाधाओं से ग्रस्त हैं और दूसरे वे क्षणिक है। इनको आत्मा नहीं वरन् दुःख कहा जा सकता अनात्मवाद को मानते हुए भी बौद्ध विचारकों ने पुनर्जन्म के सिद्धान्त में अपनी आस्था व्यक्त की है। पुनर्जन्म का सम्बन्ध त्रैकालिक है। मनुष्य या जीव तब तक भवचक्र में घूमता रहता है जब तक कि उसका अज्ञान नष्ट न हो जाए।

<u>निर्वाण :–</u> बुद्ध की दृष्टि से निर्वाण का अर्थ है बुझ जाना। यह विषय बौद्धदर्शन में अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं क्योंकि हीनयान और महायान के विचारों में नितान्त वैविध्य है। नागसैन की सम्मति में जिस प्रकार जलती हुई आग की लपट बुझ जाने पर दिखाई नहीं जा सकती, उसी प्रकार निर्वाण प्राप्त हो ज़ाने के बाद वह व्यक्ति नहीं दिखाया जा सकता। निर्वाण के अनन्तर व्यक्तित्व की सत्ता किसी भी प्रकार सिद्ध नहीं होती।[2]

बुद्ध ने उस अवस्था को निर्वाण है जहाँ तृष्णा नष्ट हो जाती है। महाकवि अश्वघोष का कहना है कि बुझा हुआ दीपक न तो पृथ्वी पर जाता है न अन्तरिक्ष में, न किसी दिशा में और न किसी विदिशा में। प्रत्युत तेल के क्षय होने से वह केवल शान्ति प्राप्त कर लेता है उसी प्रकार ज्ञानी पुरूष कहीं नहीं जाता है। केवल क्लेश के क्षय हो जाने पर वह शान्ति प्राप्त कर लेता है।[3]

वैभाषिकों के मत में निर्वाण प्रति संख्या निरोध है, अर्थात् विशुद्ध प्रज्ञा के सहारे

---

1. श्लोक : वार्तिक : कुमारिल भट्ट पृ0 217
   न्याय मंजरी : जयन्त भट्ट भाग 2 पृ0 16
   शांकर भाष्य : शंकराचार्य 2 : 2 : 18
2. मिलिन्द प्रश्न : नागसैन पृ0 92
3. दीपो यथा निर्वृतिमम्युपेतो नैवावनिं गच्छति नान्तरिक्षम्।
   दिशं न काचिद् विदिशं न काचित् स्नेहक्षयात् केवलमेति शान्तिम्।।
   तथा कृति निवृत्तिमम्युपेतो जैवावनिं गच्छति नान्तरिक्षम्।
   दिशं न कांचित् विदिशं न कांचित् क्लेश क्षयात् केवलमेति शान्तिम्।।
   सौन्दरानन्द : अश्वघोष : 16 : 28–29

सांसारिक धर्मों तथा संस्कारों का अन्त हो जाना निर्वाण है।[1]

अवैदिक धर्मों में जैन धर्म की स्थिति :– वेद की प्रामाणिकता मानने से शैव, वैष्णव, शाक्त आदि धर्म आस्तिक या वैदिक धर्म माने जाते हैं तथा वेद की प्रामाणिकता न मानने से चार्वाक, जैन तथा बौद्ध अवैदिक या नास्तिक धर्म माने जाते है। आस्तिक वह है जो वेद की प्रामाणिकता में विभूवास करे तथा नास्तिक वह है जो वेदों की प्रामाणिकता को ना मानकर उनकी निन्दा करें। मनुजी ने वेदनिन्दक को नास्तिक कहा है।[2] पाणिनी ने परलोक की सत्ता में विश्वास करने वाले पुरूष को आस्तिक तथा विश्वास न करने वाले को नास्तिक माना है। आस्तिक, नास्तिक, तथा दैष्टिक शब्दों की व्युत्पत्ति ठक् प्रत्यय के द्वारा सिद्ध की है।[3] पाणिनी व्युत्पत्ति के अनुसार जैन तथा बौद्ध अवैदिक होते हुये भी आस्तिक धर्म कहे जा सकते हैं, किन्तु अवैदिक होने की गणना में बौद्ध जैन एवं चार्वाक् इन तीनों दर्शनों का ग्रहण होता है।

उपर्युक्त तीनों अवैदिक धर्मों की पूर्वापर समीक्षा करने के उपरान्त जो तथ्य सामने आते है, उनके अनुसार जैनधर्म की वेदानुगामिता भले ही सिद्ध न होती हो, किन्तु उसके आचार एवं सिद्धान्त सर्वथा अनुकरणीय है। सामान्य प्राणी भी कर्मबन्धन से मुक्त होकर लोक कल्याण की भावना से तीर्थकर जैसे महत्वपूर्ण पद को प्राप्त कर लेता है, जैन दृष्टि से अर्हन्तपद और सिद्धपद को प्राप्त हुए साधारण धर्माजीव ही ईश्वर कहे जाते हैं। प्रत्येक जीव में इस प्रकार के ईश्वर होने की शक्ति विद्यमान होती है। इस अवस्था को प्राप्त करने के लिए धर्मावलम्बी जिस सदाचरण का पालन करते हैं, वह निश्चय ही लोक मंगलकारी सिद्ध होता है। वेदों में जैन तीर्थकरों के नामों का निर्देश है। ताक्ष्र्य रूप अरिष्टनेमिः हमारा कल्याण करें।[4]

हे अर्हन् ! आप वस्तु स्वरूप धर्म रूपी बाणों को उपदेश रूपी धनुष को तथा आत्मचतुष्टय रूप आभूषणों को धारण किये हुए हो।[5] मात्र तीर्थकारों के नामोल्लेख से जैनधर्म वैदिक बंधनों में न बंध सका। वैदिक धर्म यज्ञ प्रधान होने के कारण पुरोहितों का राज्य स्थापित हो गया था अतएव जैनधर्म का अभ्युदय हुआ।

भगवान बुद्ध को विष्णु के दशावतारों में मान लेने से बौद्धधर्म, अवैदिक हिन्दू धर्म का अवान्तर भेद बन चुका था। ब्राहमणों के परिव्राजक और बौद्धभिक्षु ब्राहमण शर्मन रूप से एकाकार हो गये थे, यही कारण है कि बौद्धधर्म का विस्तार भारत की सीमाओं को पार करके विदेशों में जा पहुंचा।

दिगम्बर जैन एवं श्वेताम्बर एवं वैषम्य :– भगवान महावीर से 250 वर्ष पहले

---

1. यशोमित्र कृत अभिधर्मकोशं व्याख्या पृ0 16
2. नास्तिकोवेदनिन्दकः मनुस्मृति 2–11
3. अस्तिनास्तिदिष्टं मतिः अष्टाध्यायीः पाणिनि 4/460
4. स्वस्ति नस्ताक्ष्यों अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातुः
   ऋग्वेद 1/16/16
5. अर्हन् विभर्षि सायकानि : ऋग्वेद 217/17

भगवान् पार्श्वनाथ हो चुके थे। भगवान महावीर ने उन्हीं के बताये मार्ग पर चलकर तीर्थकर पद प्राप्त किया और उसी मार्ग का उपदेश किया। उनके समय में समस्त जैन संघ अभिन्न रहा। महावीर स्वामी की शिष्य परम्परा में जिन शिष्यों ने संघ का कार्य सुचारू रूप से संचालित किया उनमें भद्रबाहु का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। उन्होंने 317 ईसा पूर्व में संघ का कार्यभार अपने शिष्य स्थूलभद्र के ऊपर छोड़कर आचार्य भद्रबाहु भ्रमण हेतु दक्षिण की ओर चले गये। इसी बीच स्थूलभद्र ने पाटलिपुत्र में साधुओं की एक बृहद सभा का आयोजन किया, जिसमें जैनधर्म के अंगों का संग्रह करने के लिये योजनाएं बनायी गयीं। बहुत दिनों के बाद जब भद्रबाहु दक्षिण से वापस आये तो उनके समक्ष पाटलिपुत्र की साधुसभा द्वारा पारित प्रस्तावों को स्वीकृति हेतु रखा गया। भद्रबाहु ने उनको मानने से मना कर दिया। भद्रबाहु की अनुपस्थिति में यह बात और प्रारम्भ हो गयी कि स्थूलभद्र की आज्ञा से जैन साधुओं ने वस्त्र पहनना भी आरम्भ कर दिया था। भद्रबाहु को साधुओं द्वारा वस्त्र धारण करने की बात रूचिकर न लगी। भद्रबाहु अपनी शिष्यमंडली के साथ अन्यत्र चले गये और उन्होंने अपनी पुरानी दिगम्बर (निर्वस्त्र) परिपाटी को बनाये रखा। इस प्रकार जैन साधुओं के दो दल बन गये। स्थूलभद्र अनुमत श्वेताम्बर सम्प्रदाय और भद्रबाहु समर्पित दिगम्बर (नग्न) सम्प्रदाय।

इस प्रकार 300 ईसा पूर्व में जैन मुनि समाज में सैद्धधान्तिक मतभेद के कारण 2 दल बन गये। इन दोनों दलों में दूरियां बढ़ती गयीं। आज भी इन दलों में पूर्ववत मतभेद विद्यमान हैं।

<u>दिग्मबर जैन परम्परा और सप्तभंगी न्याय सिद्धान्त :–</u> दिगम्बर सम्प्रदाय के साधु नग्न रहते हैं। यह पक्ष साधुओं की नग्नता का पक्षपाती था, और नग्नता को ही महावीर का मूल आचार मानता था, इसको मूलसंघ के नाम से भी कहा जाता है। दिगम्बर सम्प्रदायी जैन साधु जीव जन्तु को दूर करने के लिए मोरपंख की एक पीछी रखते हैं। मल मूत्र की बाधा के लिए एक कमण्डलु रखते हैं, जिसमें प्रासुख जल रहता है। वे दिन में केवल एक बार खड़े होकर अपने हाथ में ही भोजन कर लेते हैं। उन्हें भोजन के लिये पात्र की आवश्यकता नहीं होती। दिगम्बर परम्परा का यह स्वरूप प्रारम्भ से प्रायः ऐसा ही चला आ रहा है। आचारग्रन्थों में वर्णित है कि मुनियों को बस्ती से बाहर, उद्यानों या शून्यगृहों में रहना चाहिये, इसमें अवश्य शिथिलता आयी।

मुनियों ने वनों को छोड़कर धीरे–धीरे नगरों में रहना प्रारम्भ कर दिया। ईसा की नवम् शताब्दी के जैनाचार्य गुणभद्र ने मुनियों की इस प्रवृत्ति पर खेद प्रकट करते हुए लिखा है कि जैसे रात्रि में इधर उधर से भयभीत होकर मृग गांव के समीप

---

1. भारतीय दर्शन : डॉ. उमेश मिश्रा : पृ0 / 02
   लखनऊ 1957

आ बसते हैं वैसे ही त्रस कलिकाल में तपस्वी जन भी वन को छोड़कर ग्राम में आ बसते हैं। यह दुखद स्थिति है।[1]

दिगम्बर सम्प्रदाय में संघभेद परम्परा :– दिगम्बर सम्प्रदाय में आचार्य इन्द्रनन्दि ने संघ या गण परम्परा स्थापित की। जो मुनि गुहाओं से आये थे उनमें से कुछ को नन्दि और कुछ को "वीर" नाम दिया गया। कुछ को अपराजित और कुछ को देव नाम दिया। जो मुनि पंच स्तूप्य निवास से आये थे उनमें से कुछ को सैन और कुछ को भद्र नाम दिया। जो मुनि शाल्पलि महावृक्ष के नीचे से आए थे उनमें से कुछ को गुणधर और कुछ को गुप्त नाम दिया।

आयातौ नन्दिवीरौ प्रकटगिरिगुहावास तोडशोकवाटाढ़।
देवश्चान्यो पराजित इति यतिपो सेनभद्रा ह्वयौच।।
पंचस्तुप्यातरागुप्तौ गुणधरवृषमः शाल्मली वृक्षमूला।
न्निर्यासौ सिंहचन्द्रौ प्रथतगुणगणौ केसरात् खंडपूर्वात्।।[2]

श्वेताम्बर जैन परम्परा का विस्तार एवं दार्शनिक एवं सामाजिक मान्यताएँ :– श्वेताम्बर जैन श्वेत वस्त्र धारण करते हैं। उनके पास 14 उपकरण होते हैं :– 1. पात्र 2. पात्रबन्ध 3. पात्र स्थापन 4. पात्र प्रमार्जनिका 5. पटल 6. रजस्त्राण 7. गुच्छक 8–9. दो चादेर 10. ऊनी वस्त्र 11. रजोहरण 12. मुखवस्त्र 13. मात्रक 14. चोल पट्टक।

इन उपकरणों के अतिरिक्त वे अपने हाथ में एक लम्बा दण्ड भी लिये रहते हैं। पहले वे भी नग्न ही रहते थे। बाद में वस्त्र स्वीकार कर लेने पर भी विक्रय की सांतवी शताब्दी तक कारण होने पर ही वे वस्त्र धारण करते थे। वह भी कटिवस्त्र विक्रम की आठवीं शताब्दी के श्वेताम्बराचार्य हरिभद्रसूरि ने अपने संबोध प्रकरण में अपने समय के साधुओं का वर्णन करते हुए लिखा है कि वे बिना कारण भी कटिवस्त्र बांधते हैं। इस प्रकार उन्हें क्लीब–कायर कहा जाता है।

इस सम्प्रदाय के लोग आवश्यकता पड़ने पर लंगोट वस्त्र धारण करते थे शनैः शनैः श्वेतवस्त्र धारण करने लगे। फिर जिन मूर्तियों में भी लॅगोट का चिन्ह बनाया जाने लगा। इसके बाद उन्हें वस्त्र आभूषणों से सजाने की प्रथा चलाई गयी। महावीर के निर्वाण से लगभग 1000 वर्ष के पश्चात् साधुओं की स्मृति के आधार पर ग्यारह अंकों का संकलन करके उन्हें सुव्यवस्थित किया गया और फिर उन्हें लिपिबद्ध किया गया। इन आगमों को दिगम्बर सम्प्रदाय नहीं मानता।

---

1. इतस्ततश्च त्रस्यन्तो विभावयां यथा मृगाः।
   वनाद्वविशन्त्युपग्रामं कलौकष्टं तपस्विनः ।। 297
   गुणभद्र : आत्मानुशासनम्

2. जैनधर्म : इन्द्रनन्दि। 96
   पृ. 282 की टिप्पणी से उदधृत। ले. कैलाश शास्त्री
   भारतीय दि0 जैन संघ 84 मथुरा।

श्वेताम्बर सम्प्रदाय मानता है कि स्त्री को भी मोक्ष हो सकता है तथा जीवन्मुक्त केवली भोजन ग्रहण करते हैं। दिगम्बर सम्प्रदाय इन दोनों सम्प्रदायों को भी स्वीकार नहीं करता। दिगम्बर और श्वेताम्बर सम्प्रदाय में इन्हीं सिद्धान्तों को लेकर मुख्य भेद है। श्वेताम्बर सम्प्रदाय निम्न बातों को मान्यता प्रदान करता हैं–
1. केवली का कवलाहार। 2. केवली का नीहार। 3. स्त्री मुक्ति। 4. शूद्र मुक्ति। 5. वस्त्रमुक्ति 6. गृहस्थवेश में मुक्ति 7. अलकार और कछोटे वाली प्रतिभा का पूजन 8. मुनियों के 14 उपकरण 9. तीर्थकर मल्लिनाथ का स्त्री होना 10. ग्यारह अंगों की मौजूदगी 11. भरत चक्रवर्ती को अपने भवन में केवल ज्ञान की प्राप्ति 12. शूद्र के घर से मुनि आहार ले सकें। 13. महावीर का गर्भहरण 14. महावीर स्वामी को तेजोलेश्या से उपसर्ग 15. महावीर विवाह, कन्या जन्म 16. तीर्थंकर के कन्धे पर देदूष्यवस्त्र 17. मरुदेवी का हाथी पर चढ़े हुए मुक्तिगमन 18. साधु का अनेक घरों से भिक्षा ग्रहण करना।

सम्पादन :– संस्कृत सेवा व्रती विद्वानों में प्रायः यह बात प्रचुरता से पायी जाती है कि वे संस्कृत के प्रचार प्रसार के लिये सर्वविध पूर्णात्मना समर्पित रहते हैं। प्रकाशन, मुद्रण, सम्पादन, भाषण, अध्यापन, लेखन आदि सभी उपायों का आश्रय लेकर संस्कृत सेवा का अनुष्ठान करने वाले संस्कृत विद्वानों में स्वनामधन्य दीक्षित जी अग्रगण्य थे।

संस्कृत पत्र पत्रिकाओं का सम्पादन एवं उनमें लेख प्रेषण उनका नियमित कार्य था। आस्थानी संस्कृत पत्रिका का तो उन्होंने स्वयं प्रकाशन, मुद्रण एवं सम्पादन भी किया था। इस पत्रिका के सम्पादन एवं प्रकाशन का महनीय कार्य 1965 वीं ईसवी के जून मास में आरम्भ किया। "आस्थानी" मासिक पत्रिका के रूप में प्रकाशित होती थी।

वाराणसी से प्रकाशित "गाण्डीवम्" व देववाणी प्रयाग से प्रकाशित सुरभारती, आगरा से प्रकाशित आगरापंच, ज्वालापुर से प्रकाशित "भारतोदय" में उनके नियमित लेख प्रकाशित होते थे। नियमित लेख प्रेषण के लिए इन संस्कृत पत्रों में अनेक बार दीक्षित जी का आभार प्रदर्शन किया। गाण्डीव ने तो उनकी इस सेवा के लिए उन्हें वाराणसी बुलाकर संस्कृत विश्वविद्यालय में कुलपति जी से सम्मानित भी कराया। अपने 5 नवम्बर 1972 के अंक में "गाण्डीवम्" ने इसकी घोषणा की – "गाण्डीवे गतवर्षे सर्वाधिक तात्विकरधना येषां प्रकाशिताः सन्ति तेषां त्रयाणां विदुषां सम्मानः विधास्यते गाण्डीव परिवारेण तत्कृते डूंगरपुर निवासी श्री गणेश राम शर्मा, आगरा निवासी मीमांसकः महाकविः श्री शारदाचरण दीक्षितः, बलिया निवासी पं० रघुनाथ शर्मा च निर्णीताः सन्ति।।

---

1. जैनधर्म : पं० कैलाश चन्द्र शास्त्री पृष्ठ 288
   प्र० भा.दि. जैन संघ चौरासी, मथुरा।

अखिल भारतीय संस्कृत परिषद की त्रैमासिकी पत्रिका ''अजस्त्रा'' दीक्षित जी के लेखों से प्रभावित रहती थी। जनवरी 78 के अंक में ''विजितं भिक्षुणा'' नामक लेख को इस पत्रिका ने पुनः प्रकाशित करके दीक्षित जी का सम्मान बढ़ाया था।

अवतारवादी मीमांसा :– ''अवतार'' शब्द की व्युत्पत्ति ''अव'' उपसर्ग पूर्वक 'तृ' धातु से ''धञ्'' प्रत्यय करने से होती है। अवतार शब्द का अर्थ है किसी ऊँचे स्थान से नीचे उतरने की क्रिया। इस सामान्य अर्थ के अतिरिक्त इसका विशिष्ट अर्थ है– ''किसी गहनीय शक्ति सम्पन्न भगवान् या देवता का उपरिलोक से नीचे के लोक में उतरना। इसी अर्थ में आविर्भावं शब्द का प्रयोग भी पुराणों में पाया जाता है।[1]

अवतारवा प्रयोजन :– पुराण के प्रधान विषयों में अवतार तत्व अन्यतम है। पुराण के अनुसार धर्म विश्व का नियामक तत्व है। इस धर्म का नियमन एवं अनुपालन, सर्वशक्तिमान् परमात्मा की शक्ति का भ्रूविलास है। जब–जब इस धर्म की ग्लानि तथा अधर्म का अभ्युत्थान होता है, तब तब भगवान विश्व में अपने को पैदा करते हैं।[2]

ऊर्ध्वलोक से पृथिवीलोक पर भगवान का उतर कर आना ही अवतार पदवाच्य है। भगवान श्री कृष्ण का यह कथन कि ''साधुओं के परित्राण व पापियों के नाश के लिये मैं युग युग में स्वयं उत्पन्न होता हूँ, अवतार का स्वरूप है।[3]

धर्म की व्यवस्था तथा अधर्म का नाश, अवतार के दो प्रयोजन वायुपुराण[4] महाभारत[5] तथा देवी भागवत[6] में कहे गये है। इस प्रयोजन के अतिरिक्त भागवत में अव्यक्त, अप्रमेय, गुणहीन, तथा गुणात्मक भगवान की अभिव्यक्ति (अवतार) मनुष्यों के परमकल्याणभूत मोक्ष के साधन के लिए हैं।[1]

---

1. तस्यतच्चेतसो देवः स्तुति मित्यं प्रकृर्ततः।
   आविबर्भूव भगवान् पीताम्बरधरो हरिः।।
   विष्णु पु0 1–20–14
2. यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भावति भारत।
   अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।।
   श्रीमद्भागवत् गीताः 4:3
3. परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
   धर्मसंस्थापनार्थाय संभावति युगे युगे।।
   श्रीमद्भागवत् गीताः 4–4
4. जज्ञे पुनः पुनः विष्णुः यज्ञे च शिथिलः पुनः।
   कर्तु धर्म व्यवस्थानं अधर्मस्य च नाशनम्।।
   वायु 98–69
5. वहवीः संसरमाणो वै योनीर्वर्त्तामि सत्तम।
   धर्मसंरक्षणार्थाम् धर्म संस्थापनाय च।।
   महाभारत : आश्वमेधिक 54–13
6. यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भूधर।
   अभ्युत्थानमधर्मस्य तदावेषान् विभर्म्यहम्।।
   देवी भागवत 7–39

अवतार के बीज :– अवतार के बीज वैदिक ग्रन्थों में स्पष्टतया उपलब्ध है। ऋग्वेद में इन्द्र को अपनी माया के द्वारा नाना प्रकार के रूपों को धारण करने वाला निरूपित किया गया है।[2] अवतारवाद के ऋग्वेद संहिता में दिए गये बीज ब्राह्मण ग्रन्थों में विकसित होते दृष्टिगोचर होते है। शतपथ ब्राह्मण में इस भावना का स्पष्ट रूप मिलता है। प्रजापति ने ही मत्स्य का[3], कूर्म का[4] तथा वराह का[5] अवतार लिया था। प्रजापति के वराह रूप धारण करने की कथा तैत्तिरीय ब्राह्मण[6] में तथा काठक संहिता[7] में भी बीजरूप में मिलती है। अवतारों का संबंध प्रजापति के साथ था। कालान्तर में विष्णु प्राधान्य स्थापन के कारण ये अवतार विष्णु के ही माने जाने लगे। ऋग्वेद में विष्णु को "ऊरूगाव" तथा "ऊरूक्रम" के विशेषणों से मंडित किया गया है। तीन डगों से पृथ्वी का नाम लेना उनका विशिष्ट कार्य माना गया है। शतपथ ब्राह्मण में विष्णु के वामन होने की कथा विस्तार से कही गयी है। ब्राह्मण साहित्य में अवतारवाद अवश्यमेव वर्तमान था, परन्तु उस समय इन अवतारों की पूजा नहीं होती थी। भागवत् सम्प्रदाय के उदय होने पर जब कृष्ण बलराम की भक्ति उद्भावित हुई तब अवतारवाद का उत्कर्ष सम्पन्न हुआ। वासुदेव कृष्ण के विष्णु अवतार होने की अवधारणा का उदय आरण्यक युग में हो गया था।

अवतारों की संख्या :– अवतारों की संख्या के बारे में पुराणों में ऐक्यमत नहीं है। श्रीमद् भागवत में नारायण के असंख्य अवतार बताए गये हैं। जिस प्रकार गम्भीर सरोवर से हजारो छोटे–छोटे नाले निकलते हैं उसी प्रकार अवतार भी असंख्य हैं। ऋषि, मनु, प्रजापति आदि सभी भगवान के अंशावतार हैं, परन्तु श्री कृष्ण स्वयं भगवान हैं।[1] पदमपुराण में अवतारों की संख्या दस मानी गयी हैं। वे हैं– मत्स्य, कूर्म, वराह, नरसिंह, वामन, परशुराम, राम, कृष्ण, बुद्ध और कल्कि।[2]

---

1. नृणां निःश्रेय सार्थाय व्यक्तिर्भगवतो नृप।
   अव्यक्तस्या प्रमेयस्य निर्गुणस्य गुणात्मनः।। भागवत जी 10–29. 14

2 क रूपं रूपं मधव बोभवीति।
   मायाः कृण्वानस्तन्वं परिस्वाम।। ऋग्वेद : 3.53.8

ख इन्द्रो मायामिः पुरूरूप ईयते।
   युक्ता हृदस्य हरयः शतादश।। ऋग्वेद 6.47.18

3 शतपथ ब्राह्मण 1.8.1.1

4 वही 7.5.15

5. वही 14.1.2.11

6. तैत्तिरीय0 1.1.3.5

7. काठक संहिता 8.2

आचार्य शारदाचरण जी की अवतार विषयक मान्यता :– आचार्य दीक्षित जी भारतीय संस्कृति की साकार प्रतिभा थे। वे पौराणिक विचारधाराओं और मान्यताओं के अनुगामी थे। भगवत्गीता के मत से अपनी सहमति व्यक्त करते हुये उन्होंने कहा कि जब जब धर्म का पराभव होता है तब तब लोकपालक भगवान श्री नारायण स्वयं उदित होते हैं–

यदायदा धर्मधरायशश्चय
श्चुचुम्बकुत्सांकितकिल्विसं विषं।
तदापरित्राणकृपाणपाणिव्रद–
व्युदेति लोके स्वयमेव लोकमृत्।।[3]

यवनों और अंग्रेजों के अत्याचारों से पीड़ित भारत की आत्मा करूण क्रन्दन कर उठी, हे दयाधन। आप इन दुष्टों को मारने के लिए क्यों नहीं प्रगट होते हों–

अदोऽपि किं नोदयसै दयाधनः
परानिहोदात्तस्वरानिवस्वयम्।
निहन्तुमेकैक पदेयथायथं
परम्पराधर्मधराधीरधिया।।[4]

सप्तभंगी न्याय, पुदगल विवेचन एवं जैनधर्म :–

सप्तभंगीवाद :– सप्तभंगीवाद का विकास दार्शनिक क्षेत्र में हुआ था, इसलिये उसका उपयोग भी वहीं हुआ। उपलब्ध जैनवाड मय में दार्शनिक क्षेत्र में सप्तभंगीवाद को चरितार्थ करने का श्रेय सर्वप्रथम स्वामी समन्तभद्र को ही प्राप्त हो उन्होंने अपनी आत्ममीमांसा में सांख्य को सदैकान्तवादी, माध्यमिक को असदैकान्तवादी, वैशेषिक को सदसदैकान्तवादी और बौद्ध को अवक्तध्यैकान्तवादी बतलाकर मूल चार भंगों का उपयोग किया और शेष तीन भंगों का उपयोग करने का संकेतमात्र कर दिया। उसके पश्चात "आप्तमीमांसा" पर "अष्टशासी" नामक भाष्य के रचयिता श्री अकलंकदेव ने शेष तीन भंगों का उपयोग करके उस कमी को पूरा किया।

सप्तभंगी न्याय वह न्याय है, जिसमें सात भंग हों। "सप्तानां भंगानां वाक्यानां

---

1. अवताराः हयसंख्यैयाः हरेः सत्वनिषेः द्विजाः।
   यथाऽविदासिनःकुल्याः सरसः स्युः सहस्त्रशः।।
   ऋषयो मनवो देवाः मनुपुत्राः महौजसः।
   कलाः सर्वे हरे रेव सप्रजापतयस्तथा।।
   एते चांसकलाः पुसः कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्।।
   भागवत् 1.3.26.27.28
2. मत्स्यः कूर्मो वराहश्च नरसिंहो थ वामनः।
   रायै रामश्च कृष्णश्च बुद्धः कलिकश्च ते दश।।
   पदमपुराण उत्तर 257–40
3. गान्धिचरितम् : आचार्य दीक्षित जी 23
4. वही : श्लोक 26

समाहारः" इति सप्तभंगी। जैन दर्शन में वस्तु को अनेक धर्मात्मक निर्दिष्ट किया गया है। ये धर्म अविरूद्ध होते हैं। इन अविरूद्ध धर्मों का निश्चय करना ही "सप्तभंगी नय" के सात वाक्यों का कार्य हैं। अतः सप्तभंगी न्याय को इन शब्दों में परिभाषाबद्द्ध किया जा सकता है। सप्तभंगी जैनदर्शन का वह न्याय है जिसके द्वारा किसी वस्तु के नानाविध धर्मों निश्चय एवं निर्धारण तात्विक आधार पर किया जा सकता है। जैनदर्शन के अनेकान्तवाद की आधारमिति इसी सप्तभंगी न्यायकर आधारित है। जैनदर्शन यह भी स्वीकार करता है कि एक ही समय में और एक ही अर्थ में किसी पदार्थ के परस्पर विरोधी गुण नहीं रह सकते। जैन दर्शन में जिन प्रमाणों का उल्लेख मिलता है उनमें "न्याय" का महत्वपूर्ण स्थान है। न्याय दर्शन में इस "नय" को परामर्श संज्ञा से अविहित किया गया है। इसको अन्वयी तथा व्यतिरेकी, आस्तिवाचक अथवा नास्तिवाचक इन दो भेदों में विभाजित किया गया है। इसमें नय से सात भेद बताए गये हैं जिसके अन्तर्गत तर्कशास्त्र के दोनों भेद समाविष्ट हो जाते हैं।

पुद्गल विवेचन :– जैन दर्शन में "पुद्गल" शब्द का प्रयोग अद्भुत है, जो टूटे–फूटे, बने और बिगड़े वह सब पुद्गलद्रव्य है। हम जो कुछ देखते हैं, छूते हैं, सूँघते हैं, खाते हैं और सुनते हैं वह सब पुद्गल द्रव्य है। अतः जैनशास्त्रों में पुदगल का लक्षण रूप, रस, ग्रन्थ और स्पर्शवाला बताया गया है। छहौ द्रव्यों में एक पुदगल द्रव्य ही मूर्तिक है, शेष द्रव्य अमूर्तिक हैं। न्यायदर्शन को पृथिवी, जल, तेज और वायु को जुदा जुदा द्रव्य मानते हैं।

पुद्गल के दो भेद हैं– परमाणु और स्कन्द। प्राचीन शास्त्रों में परमाणु का स्वरूप इस प्रकार कहा गया है–

"अत्तादि अत्तमज्झं अतंतं जैव इंदियगेच्छां।
जं द्रव्यं अविभागी तं परमाणु वियाणाहि।।[1]

जो स्वयं ही आदि, स्वयं ही मध्य, और स्वयं ही अन्त रूप है। जिसमें आदि, मध्य, और अन्त का भेद नहीं है और जो इन्द्रियों के द्वारा भी ग्रहण किया जा सकता है उस अविभागी द्रव्य को परमाणु जानना चाहिए। अनेक परमाणुओं के बन्ध से जो द्रव्य तैयार होते हैं उसे स्कन्द कहते हैं। दो परमाणुओं के मेल से द्वयणुक बनता है। तीन परमाणुओं के मेल से त्रयणुक तैयार होता है। इसी तरह, संख्यात, असंख्यात और अननत परमाणुओं के मेल से संख्यात प्रदेशी असंख्यात प्रदेशी और अनन्त प्रदेशी स्कन्द तैयार होते हैं।

पुद्रगल द्रव्य की अनेक पर्यायें होती हैं। यथा–

शब्द, बन्ध, सूक्ष्मता, स्थूलता, आकार, खण्ड, अधिकार, छाया, चांदनी और

---

1. सददोबन्धो सुहुमोथूलो संठाणभेदतम छाया।
उज्जोदादवसहिआ पुग्गलदव्वस्स पज्जाया।। 16 द्रव्य संग्रह

धूप से सब पुद्गल द्रव्य की पर्यायें है।[1]

अन्य दार्शनिकों ने शब्द को आकाश का गुण माना हैं, किन्तु जैन दार्शनिक उसे पुद्गल द्रव्य की पर्याय मानते हैं। शब्द स्कन्द से उत्पन्न होता हैं। अनेक परमाणुओं के बन्ध विशेष को स्कन्द कहते हैं। उन स्कन्धों के परस्पर में टकराने से शब्दों की उत्पत्ति होती है।

जैन धर्म :–

जैन धर्म का उदय तथा विस्तार :– जैनधर्म का उदय बौद्ध धर्म से पहले की घटना है। जैन धर्म का अर्थ जिन के द्वारा कहा गया धर्म। शत्रुओं पर विजय पाने के कारण वर्धमान की उपाधि "जिन" थी। अतः उनके द्वारा प्रचारित धर्म जैनधर्म कहलाता है। इन नामकरणों के मूल में इस धर्म की प्राचीन आचार–प्रधानता ही कारण है। जैन लोग अपने धर्म के प्रचारक सिद्धों को 'तीर्थकर' कहते हैं। जिनमें आद्य तीर्थकर ऋषभदेव थे। जैनधर्म का आरम्भकाल सुनिश्चित रीति से ईस्वी सन् से 800 वर्ष पूर्व मान लिया गया है। किन्तु जहाँ अब कुछ विद्वान भगवान को जैनधर्म का संस्थापक मानते हैं वहां कुछ विद्वान ऐसे भी हैं जो उससे पहले भी जैनधर्म का अस्तित्व मानते हैं। जैन परम्परा प्रथम तीर्थकर ऋषभदेव का संस्थापक मानने में एकमत हैं। डॉ. सर राधाकृष्णन के अनुसार – "जैन परम्परा ऋषभदेव से अपने धर्म की उत्पत्ति होने का कथन करती है, जो बहुत सी शताब्दियों पूर्व हुए है– "ईस्वी पूर्व प्रथम शताब्दी में प्रथम तीर्थकर ऋषभदेव की पूजा होती थी। इसमें संदेह नहीं कि जैनधर्म वर्धमान और पार्श्वनाथ से भी पहले प्रचलित था। भागवत पुराण भी इस बात का समर्थन करता है कि – ऋषभदेव जैनधर्म के संस्थापक थे।

आगरा की विद्वत परिषद में विभिन्न शास्त्रार्थ :– आगरा नगर संसार के सात आश्चर्यों में से एक, ताजमहल की अवस्थिति के कारण विश्व विख्यात है। मुगलकाल में इस नगर को भारत की राजधानी होने का गौरव प्राप्त है। वहीं यह नगरी संस्कृत सेवियों की भी प्रियस्थली रही है। डॉ. हरिदत्त शास्त्री, डॉ. भगवत स्वरूप सिंह, डॉ. वाचस्पति पाण्डेय, वागीश शास्त्री, श्री हृषीकेश चतुर्वेदी, आचार्य रामचरण जी दीक्षित, डॉ. गया प्रसाद उपाध्याय प्रभृति अनेक विद्वान कभी नागरी प्रचारिणी सभा के तत्वावधान में, तो कभी विद्याधर्मवर्धिनी सभा के सभागार में शास्त्रार्थो को आयोजन करते थे। यह पण्डित मण्डली कभी कभी अवसरानुकूल बाहर के पंडितो को भी शास्त्रार्थ के लिए बुलाती थी। नरवराश्रम के प्रसिद्ध वैयाकरण एवं नैयायिक पं. बांकेलाल त्रिवेदी, श्री होमनिधि पाठक इन गोष्ठियों और शास्त्रार्थ सभाओं में आते थे। एक बार ज्येष्ठमास में दशहरा पर्व पर शास्त्रार्थ सभा में उपस्थित विद्वानों को उनके शास्त्र अज्ञान को

---

1. सद्दो रवंधप्पभवो खंधो परमाणुसंग संघादो।
   पुट्ठेसु तेसु जायदि सद्दो उप्पादगो णियदो।। 7।।

   पंचांस्तिकाया

निर्दिष्ट किया–

केयं कदर्थित सभा क्वच तत प्रवीणाः
सर्वेलसन्त्यहह यत्रविचारहीनाः।
दीनां दशां समधिगम्यमलेमलीनाः
हाथीः यथा दशहरा विजयां विलीना।।[1]

आगरा की एक शास्त्रार्थ सभा में जब पराजित पक्ष ने चूंचपड़ की तो दीक्षित जी ने स्पष्ट कह दिया कि मैं हाथियों के गंडस्थलों का मद भंग करता हूँ तुम जैसे खरहै और बकरों का नहीं। मैं तुम्हें आगम निगम की बात सिखाने में सक्षम हूँ–

आचार्य दीक्षित जी विद्वान सर्वत्र पूज्यते के मूर्तिमान स्वरूप थे। उनका जितना आदर बाहर होता था, उतना ही अपने गृह नगर आगरा में भी।

काशी के विद्वान राजेश्वर शास्त्री द्राविण से शास्त्रार्थ :– काशी नगरी भारत की सांस्कृतिक राजधानी कही जाती है। काशी की अपनी विद्वत परम्परा है। आज भी वहां वीथियों में वेदमंत्रों की ध्वनि सुनाई देती है। शास्त्रार्थ महारथियों की तो यह प्राकट्य स्थली है। सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय तथा काशी विद्यापीठ के अतिरिक्त शतश संस्कृत पाठशालाएं संस्कृत और संस्कृति के धारण पोषण में अपना गौरवपूर्ण योगदान करती हैं। पुण्यसलिला गंगा के तटों पर नित्यकर्म से निवृत पंडितों को देखा जा सकता है। शालाओं और पाठशालाओं में तो शास्त्रार्थ– चलता ही है। काशी विद्वतपरिषद, काशी पण्डितसभा और काशी शास्त्रार्थ महासभा गूढ़ एवं विवेचनीय शास्त्रीय पंक्तियों पर शास्त्रार्थो का आयोजन कर आज भी शास्त्रार्थ की सनातन परम्परा का निर्वाह कर रही है। महामहोपाध्याय गोपीनाथकविराज, म.म. गंगानाथ झा, म.म. बापूदेव शास्त्री, म.म. गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी म.म.पं. रामशास्त्री पं. शिवकुमार शास्त्री, म.म.पं. हरिनारायण शास्त्री, डा. टी. गणपति शास्त्री, पं. कुत्पू स्वामी शास्त्री प्रभूति शास्त्रार्थजी काशी विद्वानों की एक लम्बी श्रृंखला है।

पं0 राजेश्वर शास्त्री द्रविण इस परम्परा के उद्‌भट विद्वान रहे हैं। वे परम वैय्याकरण एवं देश के प्रमुख ज्योतिर्विद हैं। काशी के विद्‌वान उन्हें व्याकरण का सूर्य कहते थे।

आचार्य शारदाचरण जी दीक्षित चौथे दशक में प्रयाग में आयोजित कुम्भ पर्व का सेवन कर वाराणसी पहुंचे, और काशी नरेश श्री विभूतिनारायण सिंह के अतिथि बने। वैदुष्यपारखी नरेश ने दीक्षित जी का पूरा स्वागत किया। काशी नरेश के महलों में ही दीक्षित जी की भेंट श्री राजेश्वर शास्त्री द्रविण से हुई। पारस्परिक परिचय के बाद ज्योतिष विषय के कुछ बिन्दुओं को लेकर दोनों विद्‌वान अहमहमिकया स्व स्व

---

1. डायरी से उदधृत : आ.शा. दीक्षित

पक्ष प्रस्तुत करने लगे।

दीक्षित जी ने द्राविण जी को सम्बोधित करके, स्वपक्ष प्रस्तुत किया।[1]

"शास्त्रार्थों में प्रभाव एवं प्रामाण्य विवेचन"

कवि गणपति आचार्य शारदाचरण दीक्षित शास्त्रार्थ मंडली में अपना निश्चित एवं अप्रतिम प्रभाव छोड़ते थे। पं0 मण्डली उनके तर्कों एवं व्याख्याओं से संतुष्ट हो जाती थी। वे पण्डितों की सभा में उस वनराज के समान शोभा पाते थे जिसके बारे में "स्वयमेव मृगेन्द्रता" का सम्बोधन दिया जाता है। शास्त्रार्थ सभा में अनावश्यक एवं तर्कहीन बात कहने वाले को वे मेढ़कों का चिल्लाना कहते थे।

मिथ्यामलिम्लुच मलिम्लुचतांम्लुचन्तः
संसर्पसर्पण समर्पण विस्मरन्तः।
कुर्वन्ति दुर्दुरखेदुरिंत दुरायम्
धर्म्यागमध्वनि विवर्जित विप्रलापम्।।[2]

दीक्षित जी उन विद्वानों को अपने सामने न बैठने का विनम्र परामर्श देते जिन्हें शास्त्र न आता हो।

साहित्यशास्त्र सलिलावलिलालितेन,
गीर्वाणगीर्गुणगणार्जित गौरवेण।
शारदाचरण इतिमंजुबदा मिथेन,
मूढ़ाः कथं ह्वलयिताः बुध मानसेन।।[3]

दीक्षित जी शास्त्रार्थ सभा में अपने जिस पक्ष को प्रस्तुत करते वह अकाट्य होता था। उनके तर्कों को देखकर पण्डित मण्डली बगलें झांकने लग जाती थीं। ज्योतिष के एक विवेच्यस्थल पर अपने पक्ष को प्रस्तुत करते हुए दीक्षित जी ने पंडितों से कह दिया कि अगर आप लोगों में शक्ति हो तो मेरे पक्ष का खण्डन करो—

नक्षत्र सूचक पदेन भवादृशाणाम्
पंचागमेवहि प्रमाण पुरः सराणाम्।
आलोच्यशास्त्र विषयींयतमस्त गन्धम्।
चेच्छक्ति खण्ड्यम दर्पितमन्निबन्धम्।।[4]

आचार्य दीक्षित जी बहुश्रुत एवं बहुद्रष्टा थे। यही कारण है कि शास्त्रार्थ सभाओं

---

1. उत्कादुहाह्मत मुदन्त मुदन्तुदानाम्
   आलोच्यलोच्यनिगम द्रवद्राविडानाम्।
   हन्तः। किमत्र कर वाणिखाण्यमानाम्
   नायष्टयैर्मम दलं दलनं दलानाम्।.
   डायरी से पृ0 7
2. डायरी से पृ0।
3. डायरी से पृ0।
4. वही

में वे पाण्डित्य की अमिट छाप छोड़ते, तथा विषय वस्तु का प्रमाणिक विवेचन प्रस्तुत करते थे।

शास्त्रार्थ एवं सभाजय में पाण्डित्य प्रदर्शन एवं अपूर्व तर्कना का निदर्शन :– आचार्य दीक्षित जी ने अपने जीवन काल में असंख्य शास्त्रार्थों में भागीदारी की थी। लक्ष्मणपुरस्थ संस्कृत अकादमी में संस्कृत दिवस पर शास्त्रार्थसभा हुई। प्रदेश के मूर्धन्य विद्वानों की उपस्थिति थी। निर्णय सिन्धु के कालनिर्णय अध्याय को लेकर शास्त्रार्थ प्रारम्भ हो गया। अकादमी के अध्यक्ष पं0 करूणापति त्रिपाठी मध्यस्थता कर रहे थे। दीक्षित जी के पक्ष में निर्णय हुआ। दीक्षित जी ने विद्वानों को परामर्श दिया– कि में आपलोगों की शक्ति से परिचित हूँ। अभी और अध्ययन करो–

"सत्यं व्रतीमिपुनप्ययुनीय वन्धुः,
नान्दोलितः कथयनिर्णय धर्मसिन्धु।
देव्युत्सवेशरदि सर्वगुणाग्रगण्या,
कन्यैव केवल कृतौ कथितेति धन्या।।"[1]

उल्लेखतः परिचिनोमि त्वदीय शक्तिम्,
आलक्ष्यधर्म निगमागमतो विरवितम्।
किं वर्णनं भवतुतेऽल्पपराक्रमस्य,
विद्याविहीन विहितस्य च ब्राह्मणस्य।।"[2]

अपने भारत देश में नाना प्रकार के ज्योतिषं पंचांग प्रति वर्ष प्रचलित होते हैं, जिनमें विवाहादि मुहूतों को लेकर ऊहापोह की स्थिति बन जाती हैं। एक बार ऐसे ही अवसर पर आगरा की विद्याधर्मवार्धिनी सभा में दीक्षित जी ने शास्त्रोक्त निर्णय दिया, जिसे पण्डितों ने स्वीकार कर लिया–

ज्योतिः क्रमस्यरचनाविधि वर्णनायाम्
शास्त्रोदितं वचनमेव परं प्रमाणम्।
व्यर्थेव विप्रलपनं लपनं भ्रमाय,
पंचागमस्ति नहिपक्ष सुपोषणाय।।[3]

शास्त्र विरूद्ध बात कहने वाले को दीक्षित जी महाराक्षस की कोटि में गिनते थे–

"ये जानन्ति न सम्प्रदाय सरणिं शास्त्राणि वायेयदि,
प्रभ्रष्टाः नवरात्रिकार्चन विधिं साधारणां मन्वते।
ते मूढ़ाः समुपेक्षणीय वचनाः, एके पुनः पंण्डिताः,
उच्छास्त्रं प्रलपन्ति ते खलु महाधोराः महाराक्षसाः।।"[4]

आचार्यत्व की स्थापना :– कविवर दीक्षित जी आकाश में सम्पूर्ण चमकते उस

1. डायरी से आ. दीक्षित
2. वही
3. डायरी से : आचार्य दीक्षित
4. वही

पूर्ण सूर्य के समान थे, जिसके उदय होने पर अन्य नक्षत्र विलीन हो जाते हैं। पंडित सभाओं में दीक्षित जी अपने आचार्यत्व की स्थापना करवा कर ही रहते। ऐसा नहीं कि दीक्षित जी अन्य विद्वानों को पक्ष प्रस्तुति का अवसर न देते हों, वे उन्हें इसका पूरा अवसर देते थे और कहते कि यदि सामर्थ्य हो तो मेरे पक्ष का खण्डन करो, और यदि कोई अन्य तुम्हारे पक्ष को और अच्छे ढंग से प्रस्तुत कर सकता हो उस विद्वान को भी बुलालो–

चेच्छाक्ति खण्ड्य वितण्डयमावितण्डी,
आहूयतं सपदि सम्प्रति मः शिखण्डी।
तं मूर्च्छयामि कुतुकेनहि चैतवेन्द्रम,
जानाति किन्न कवितार्किक दीक्षितेन्द्रम्।।[1]

महामहोपाध्याय दीक्षित जी भ्रम एवं शास्त्र शंका के निवारण में अत्यन्त दक्ष थे। वे तर्कों का आश्रय लेकर विद्वानों के शिरोमणि बन जाते थे–

योत्पाठयत् "भ्रमनिवारणपत्रमूलम्
सन्दर्शययन्निखिल शास्त्र समृद्धिधकूलम्।
यस्तर्क कर्कशनिबन्धं निवन्धनेन्द्रः
सोऽयं समादिशाति तार्किकदीक्षितेन्द्रः।।[2]

तार्किक शिरोमणि श्री दीक्षित जी को विद्वानों का सहज आदर और स्नेह प्राप्त था। प्रख्यात सन्त स्वामी करपात्री जी महाराज द्वारा संस्थापित धर्मसंघ संस्कृत महाविद्यालय दिल्ली में विद्यालय के वार्षिकोत्सव में जिसकी अध्यक्षता प्रभुदत्त जी ब्रहमचारी जी कर रहे थे, दीक्षित जी को सत्कृत एवं अभिनन्दित करते हुए यह पद्य पढ़ा गया–

श्रुतीनां सौन्दर्यं स्मृतिसहजशौर्यं समुदयन्
विधेर्वैधं बोधं विविधविधि शोधं व्युपदिशन्।
जरीहर्तुं जाड्यं दुरिततिमिराढ्यं जड़धियां,
कदम्बं काव्यानां कलयति सतां दीक्षित कविः।।[3]

संस्कृत भाषा के अनन्य सेवक आचार्य शारदाचरण जी अपनी प्रतिभा के धनी थे। उन्होंने आचार्यत्व की स्थापना अनेक अवसरों पर की।

जीव आवागमन चक्र :– भारतीय दर्शन में ब्रहम का साक्षात्कार करने तथा उसे पहचानने के लिए आत्मतत्व का जानना आवश्यक बताया गया है। आत्मा को अजर, अमर, सनातन तथा शाश्वत कहा गया है। यह आत्मा शस्त्र द्वारा अवध्य है, पावक

---

1. डायरी से : आचार्य दीक्षित श्लोक 20
2. डायरी से : आचार्य दीक्षित
3. अभिनन्दन पत्र से

द्वारा अदाहय व वायु के द्वारा अशोष्य है।[1] जिस प्रकार जीवात्मा को इस देह में कुमार, युवा, और वृद्धावस्था की प्राप्ति होती है, उसी प्रकार उसे शरीरान्तर की भी प्राप्ति होती है।[2] कोमार्यादि विकासर स्थूल शरीर के हैं आत्मा के नहीं। जैसे मनुष्य पुराने वस्त्रों को त्यागकर दूसरे नये वस्त्रों को धारण कर लेता है वैसे ही जीवात्मा भी पुराने शरीरों को त्यागकर दूसरे नये शरीरों को प्राप्त होता है।[3] संसार में जन्म लेने वाले की मृत्यु निश्चित है और मरने वाले का जन्म होना निश्चित है।[4] जन्ममरण की इसी शाश्वत पद्धति का नाम जीवागमन चक्र या भवचक्र के नाम से शास्त्रों में विनिर्दिष्ट किया गया है। आचार्य शारदाचरण जी दीक्षित ने अपने अनेक निबंधों में जन्मान्तर प्राप्ति सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। यथा– मानवजीवनंधर्मश्चे शीर्षक निबंध में–

"प्रज्ञावन्तः। चलाचलेऽस्मिन् रथचक्रवदाकारे परिवर्तिनि संसारे को नाम नं जायते म्रियते वा प्राणी ? प्रतिघस्रं सहस्त्रशोविलीयन्ते ह्युत्पद्यन्ते त्र प्राणिसंघाः – कानामृतेषां गणना पश्चायं खलुस्वभाव एव संसारस्य जनिर्मरणं पुनरपिजननं पुनर्मृतिः अन्वर्थे यं संसरणशीलस्य जगतः संसार इति संज्ञा, किंच एव एवायं संसारपरिपाक इति सुनिपुणं विचिन्वानाः प्रतिक्षणं विलोकयन्तश्च गतागतं जीवसंवायस्य न जानन्ति प्रवलतरमोहान्ध कारच्छन्नदृष्टयोमृढाएतदवस्था मेवातम्नोऽपि परिणतिमित्याश्चर्यमजानन् हि को नामाऽस्मिन्नासज्यते।"[5]

आयुसिद्धान्त :– आयुर्वेद निरामय पूर्वक जीवन जीने का विज्ञान है। वह आयु का समेकित ज्ञान है। मनुष्य को स्वस्थ रहते हुये जीवन यापन करने का निर्देश शास्त्रों में वर्णित हैं–

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविच्छतं समाः।

वेदों में जीवेम शरदः शतम् पश्येम शरदः शत कहकर सौ वर्ष तक जीने की मान्यता है। आचार्य दीक्षित जी आयुर्वेद के प्रकाण्ड पंडित थे। उनका विचार था वे लोग धन्य है जो स्वास्थ्य के संवर्धन एवं संरक्षण के प्रति सावधान रहते हुये जीवन की गाड़ी को हांकते हैं–

---

1. नैनंछिन्दन्ति शस्त्राणि, नैनं दहति पावकः।।
   गीता 2–23
2. देहिनोऽस्मिन् यथा देहे कौमारं यौवनं जरा।।
   तथा देहान्तरप्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुहयति।।
   गीता 2–12
3. वासांसि जीर्णानि यथा विहाय, नवानि गृहणाति नरो पराणि।
   गीता 2–22
4. जातस्य हि ध्रुवो मृत्यु र्ध्रुवं जन्म मृतस्य च।। गीता 2–27
5. मानवजीवनं धर्मश्च।।

ते धन्या धरणीतलेधृतिमता यैः साछितं साधनम्,
स्वास्थ्यस्यापि सुरक्षणाय गदवं स्वं पावितं पावनम्।
लोकेदक्षपरमपराप्रचलितां मिन्द्रादिमिस्सेविताम्,
आयुर्वेदविभां गतिक्रमक्रशां स्वामुन्निनीषन्ति ये।।[1]

दीक्षित जी की मान्यता थी यक्ष्माकृत चन्द्रमा ने आयुर्वेद के नियमों का पालन करते हुए पुनः नूतन स्वास्थ्य प्राप्त कर लिया था। वृद्ध च्यवन पुनः युवा हो गये थे–

यक्ष्माग्रस्त कलेवरौ हिमकरः स्वास्थ्यं च लेभे पुनः
वृद्धोऽपि व्यवनो युवा समभवद्देहस्ययस्यायुषो।।[2]

आचार्य जी का विचार था कि पूर्ण स्वास्थ्य का लाभ केवल भारतीय चिकित्सा पद्धति से ही प्राप्त किया जा सकता है। पाश्चात्य चिकित्सा पद्धति भारतभूमि पर पूर्ण सफल नहीं हो सकी है। रोगों पर तद्देशोंत्पन्न औषधियां ही अधिक प्रभावकारी हो सकती हैं। अतः विद्ववानों को चाहिए कि वे नैरोग्य प्राप्ति के लिए भारतीय चिकित्सापद्धतियों का प्रचार–प्रसार करें–

दुर्देवाभ्रसमावृतेरविनिभे ज्ञानस्यलुप्तेतथा,
हयसो कारिभिषग्भिरस्य च निजेत्यक्ते शुभेकर्माणि।
पाश्चात्वं मतमाश्रयत्पुनरथौशारीर शास्त्रैहितम्,
विज्ञानेन महत्वमस्य सुधियः प्रख्याप्यतां भूतले।।[3]

आचार्य जी उत्तम स्वास्थ्य के लिए यम, नियम तथा व्यायाम को भी आवश्यक मानते थे– "व्यायाम निषेवमाणस्य पुरूषस्य चिरमेवाग्नि बलसत्वात् च। कार्यकर्मविशेषत्वेन व्यायामात्मिका शरीर चेष्टा स्थिरताधर्मरूपा न तु न्यूनातिरिक्तरूपा बलवर्धिनी।"[4]

<u>त्रिदोषविमर्श :–</u> शरीर की वृद्धि, रोग ग्रस्तता, तथा आरोग्यता में सभी शरीरदोषों पर निर्भर करता है। बात, पित्त और कफ को त्रिदोष कहा जाता है। जब त्रिदोष अपना अपना स्वाभाविक कर्म करते रहते हैं तो स्वास्थ्य ठीक रहता है और अपथ्य के कारण विषमता आ जाने पर इनमें रोग उत्पन्न हो जाते हैं। दोष उसे कहते हैं जो शरीर को दूषित कर सकता हो, और यह शक्ति बात, पित्त और कफ में ही हैं तीनों दोष विकृत होकर रंसादि धातुओं और मूत्रादि मलों को दूषित कर देते हैं। वात, पित्त, कफ और शरीर की उत्पत्ति, स्थिति एवं रोगोत्पित्ति में कारण है।[5]

बात, पित्त और कफ स्वास्थ्य के तीन स्तम्भ हैं, जिस प्रकार चन्द्रमा, सूर्य और

---

1. आयुर्वेद रहस्यम् : आ. शारदाचरण दीक्षित
2. आयुर्वेद रहस्यम् : आ. शारदाचरण दीक्षित
3 वही
4. गाण्डीवम् : 20 अप्रैल 1975
5. वातपित्तश्येष्माणः देहसंभवहेतवः ।। सुश्रुत सूत्र 1–21

वायु विसर्ग, आदान और विक्षेप से संसार को धारण करते हैं उसी प्रकार बात, पित्त और कफ भी प्राणधारियों के शरीर का धारण, पोषण करते हैं।[1]

वात, पित्त और कफ शरीर के प्रत्येक स्थूल और सूक्ष्म अवयव में विद्यमान रहते हैं। तर्कशिरोमणि मीमांसक आचार्य शारदाचरण दीक्षित ने अपने "स्वास्थ्यम्" शीर्षक निबन्ध में स्वस्थ पुरूषं का लक्षण निरूपित करते हुए त्रिदोष की समता पर बल दिया है। इस निबंध में उन्होंने सुश्रृत के श्लोक को उदाह्रित किया हैं–

समदोषः समाग्निश्च ससुश्रुतुः मलक्रिय।
प्रसन्नात्मेन्द्रियमनाः स्वस्थ इत्यभिधीयते।।[2]

दोषों की समानता से अग्नि समान रहती हैं। अग्नि की समानता से रसादि धातु तथा मूत्रादिमलों की क्रिया सम रहती है। धातु आदि के सम रहने से आत्मा, इन्द्रिय और मन प्रसन्न रहते हैं, और यही स्वस्थ पुरूष का लक्षण हैं–

"एवं सुश्रुतेन समदोषलिंगात्वेन समाग्निरूक्तः समाग्निना लिंगत्वेन समधात्वादिरूवतः समधात्वादिलिंगत्वेन प्रसन्नात्मादिरूक्तः।।[3]

जैनधर्म और पौराणिक धर्म :– आदान प्रदान की प्रथा धर्मों में सदां से चली आई है। जैनधर्म ने अपना स्वत्व व्यक्तित्त्व स्थापित न करके ब्राह्मण धर्म के खण्डन में अधिक यत्न किया। जैनधर्म वेद को प्रामाण्य नहीं मानता, यह बात पुराणधर्म के अधिक विपरीत है। वेद को प्रमाण न मानने के कारण जैन दर्शन की गणना नास्तिक धर्मो में होती है। कर्मसिद्धधान्त, पुनर्जन्म, तपयोग, और देवादि विग्रहों में विश्वास जैसी कई ऐसी बातें हैं, जो थोडे उलटफेर के साथ पुराणधर्म और जैनधर्म में वर्णित हैं।

भारतीय विद्वानों की प्रायः यह मान्यता है कि जैन और पुराण दर्शन का उदगम उपनिषदों से ही हुआ है। श्रीमद्भागवत में वर्णन है कि जब ब्रह्मा ने देखा कि पृथिवी पर मनुष्य संख्या में वृद्धि नहीं हो रही है तो उन्होंने स्वयं मनु और शक्तिरूपा को उत्पन्न किया। उनकी वंशपरम्परा में ऋषभदेव के चरित्र को सुनकर कुटुकदेशों का राजा अर्हनस्वधर्म को छोड़कर कुमार्गधर्म (जैनधर्म) का परिवर्तन करेगा। शौच आचार को छोड़कर ईश्वर की अवज्ञा धारण करेंगे। स्नान आचमन, यज्ञ सबके निन्दक ऐसे पुरुष होंगे जो वेद विरूद्ध आचरण करके नर्क में गिरेंगे– "येन ह वाव कलौ मनुजापसदादेवमायामोहिताः स्वर्विधनियोगशैचचारित्रविहीना देवहेलनान्यपव्रतानि निजनिजैच्छया गृहणाना ब्रह्मब्राह्मणयज्ञ पुरूषलोक विदूषकाः प्रायेण भविष्यन्ति।।"[4]

---

1. विसर्गादान विक्षेपैः सोमसूर्यानिलायथा।
   धारयन्ति जगत् देहें कफपित्तानिलास्तया।।
2. "स्वास्थ्यम" : आचार्य जी विलिखितः गाण्डीवम् 20 अप्रैल 1978
3. "स्वास्थ्यम्" : आचार्य जी विलिखितः गाण्डीवम् 20 अप्रैल 1978
4. श्रीमद्भागवत् 5:6:10–11

इससे जैनधर्म और पुराण धर्म का अन्तर स्पष्ट है। जैन धर्म पुराण धर्म का विपरीताचरण करने वाला, वेद–यज्ञ, स्नान, नित्यकर्म, शौच आदि का विरोधी रहा है। श्रीमद्भागवतकार ने जैनधर्मावम्बियों की कुपथगामी एवं पाखण्डी कहकर अपना पार्थक्य व्यक्त कर दिया है। उन्हें देवमाया से मोहित और शौचचरित्रहीन बताकर उनके धर्माचरण पर प्रश्नंचिन्ह लगा दिया है।

यथार्थ तो यह है कि जैनधर्म ब्राह्मणधर्म के विरोध में अधिक मुखरित नहीं हुआ। पुनर्जन्मादि अनेक सिद्धान्तों के आधार पर वह भारतीय प्रज्ञा में आज भी महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त किए हुए हैं।

श्वेताम्बर परम्परा में णमोंकार महामन्त्र :– णमोंकार महामंत्र का स्वरूप इस प्रकार हैं–

णमोअरिहंताणं।
णमो सिद्धधाणं।
णधमो उवज्झायाणं।
णनमो लोए सत्व–साहूणं।

ऐसो पंच – नमोदकारो, सत्व–पाव–प्पणासणो।
मंगलाणं च सव्वेसिं, पदमं हवइ मंगलम्।।

यह "णमोंकार" सूत्र समस्त जैन आराधनाओ का मूल बिन्दु है। शुभ कार्य करने से पूर्व, आँख खुलते ही तथा रात्रि के समय शैयया पर सोते समय नमस्कार सूत्र पढ़कर ही शयन किया जाता है।

महामंत्र का भावार्थ :– श्री अरिहन्तों को नमस्कार हो, श्री सिद्धों को नमस्कार हो। श्री आचार्यों को नमस्कार हो। श्री उपाध्यायों को नमस्कार हो। मानव संसार में वर्तमान साधुओं तथा मुनियों को मेरा नमस्कार हो।

उक्त पंच महापरमेष्ठी आत्माओं को किया हुआ यह नमस्कार सब प्रकार के पापों को पूर्णतया नाश करने वाला हैं, और सब लोकिक एवं लोकोत्तर मंगलों में प्रथम तथा प्रधान मगल है। नमस्कार करने की परम्परा अनादिकाल से चली आ रही है। अपने से उत्कृष्ट गुणवाले बड़ों को नमस्कार करना शास्त्रविहित है।

नमस्कार महामंत्र में व्यक्तिविशेष का नाम न लेकर केवल आध्यात्मिक भूमिकाओं का ही नाम लिया गया है। यह जैनधर्म की भव्य एवं विराट भावना है। मनुष्य के हृदय की कोमलता, सरसता, गुणग्राहकता, एवं भावुकता का परिचय तभी मिलता है जब वह अपने से उत्कृष्ण गुणों वाले श्रेष्ठ पुरूषों को भावनापूर्ण नमस्कार करता है। सद्‌गुणों के समक्ष अपने अहंकार को त्यागकर गुणवान के चरणों में सर्वात्मना समर्पण कर देता है।

"णमोंकार" महामंत्र का अपर नाम "परमेष्टी मंत्र" भी है। णमोंकार महामंत्र में नौ पद हैं तथा पांच पद मूलपदों के हैं और चार पद चूलिका के, अतः इसे नवकरामंत्र भी कहते हैं।

अष्टम अध्याय

उत्तर प्रदेश की परम्परा में आगरा के विद्वानों का वैदुष्य

आचार्य शारदाचरण दीक्षित बीसवीं शदी के ऐसे कालजयी हस्ताक्षर हैं, जिनकी समता का दूसरा तद्युगीन एवं तादृशगुणगण सम्पन्न दूसरा संस्कृत विद्वान् नहीं मिलता। उनका समकालीन विद्वान उनसे प्रेरणा व वैचारिक ऊर्जा प्राप्त करने को सदैव लालायित रहते थे। सुरभारती के समुपासकों में वैचारिक विद्युत प्रवाह के लिये वे विद्युतगृह के सामन थे। वैचारिक आदन–प्रदान के लिये उनके द्वारा विद्वानों से उनका वैचारिक आदान–प्रदान हुआ उनकी नामावली प्रस्तुत करने का प्रयास किया जा रहा है। उपलब्ध पत्रों में कतिपय पत्र ऐसे भी हैं, जिनमें केवल सभा स्थल एवं समय की संसूचनामात्र हैं, तो कुछ में विचारणीय विषय का संकेतग्रह भी है।

आगरा के विद्वान् :– आचार्य पं० हृषीकश चतुर्वेदी, डॉ. जय कुमार मुदगल, पं० ऋषीकेश भट्ट, श्रीराम शर्मा, श्री पदम सिंह शर्मा, श्री रोशन लाल गुप्त करूणेश, श्री देवी प्रसाद दिव्य, श्री शान्ती प्रसाद पाठक, श्री गणपति चन्द्र, पो. अम्बिका चरण सेंट जौंस कालेज आगरा, आचार्य हरिदत्त शास्त्री, श्री द्वारिका प्रसाद द्वारिकेश, श्री प्रयागदत्त शास्त्री, श्री फूल सिंह नीरव, श्री तोता सिंह पंकज, पं० हरिशंकर शर्मा, डॉ. दयाशंकर शर्मा, श्री घनश्याम अस्थाना, डॉ. श्याम सुन्दर दीक्षित, कविवर सोम ठाकुर, पं. कैलाश मिश्र प्रभृति आगरा के विद्वानों से दीक्षित जी का वैचारिक आदान–प्रदान विविध विषयों के आलोचन विलोचन, विचार विमर्श एवं परामर्श को लेकर सम्पन्न हुआ।

आगरा की विद्वत परम्परा में– पितामह प्रभूदयाल शास्त्री पितृचरण– आयुर्वेदाचार्य पं० टीकाराम शास्त्री, एवं तत्पुत्र आचार्य शारदाचरण दीक्षित का स्थान :– आचार्य जी के पितामह पं० प्रभूदयाल शास्त्री एवं पिता टीकाराम जी अपने समय के सुप्रसिद्ध ख्यातिप्राप्त आयुर्विद एवं ज्योतिर्विद रहे। आचार्य शारदाचरण दीक्षित सुयोग्य पिता महामहोपाध्याय पं० टीकाराम दीक्षित के सुयोग्य पुत्र थे। इनका नाम एक ऐसे व्यक्तित्व का परिचय कराता है जो आनरव–शिख सुरभारती संस्कृत के लिये सर्वात्मना समर्पित रहे। संस्कृत प्रचार प्रसार के व्रती आचार्य दीक्षित जी ने संस्कृत कवित्व को अपना मिशन बनाया न कि व्यवसाय।

आचार्य जी के व्यक्तित्व में साहित्यक, सांस्कृतिक एवं चिकित्सकीय परम्पराओं की त्रिवेणी प्रवाहित होती थी। आयुर्वेद के क्षेत्र में आचार्य जी का सर्वतोमुखी स्थान था। वे बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। उनका आयुर्वेद ज्ञान अद्वितीय था। वे सफल चिकित्सक थे।[1]

---

1. आचार्य विलिखित : धन्वन्तरि स्तोत्र

आयुर्विदामादिविवक्षिताय
चञचच्चरित्राय चिकित्सकाय।
तस्मै दिवोदास नरेश्वराय,
नमो स्तु धन्वन्तरयेऽमराय।।

मैं निःसंकोय भाव से यह कह सकता हूँ कि आचार्य शारदाचरण दीक्षित इन सबका अद्भु समन्वय थे। वे तत्काल रचना करने में सक्षम और आशुकवि के रूप में प्रसिद्ध थे।

आचार्य जी का वैशिष्ट्य यह था कि किसी विषय के प्रस्तुत होने पर वे तत्काल श्लोकबद्ध रचना करते थे। डॉ. चतुर्वेदी जी महाभाग के अनुसार उन्हें– सरस्वती सिद्ध थी। कल्पनायें ''रसनाग्र–नर्तकी'' के रूप में सार्थक होती थीं। ऐसा प्रतीत होता था कि महाकवि कालिदास की आत्मा पुनः जागृत हो गयी हो।

इस प्रकार उनके जीवन का वैदुष्य पक्ष अनेक भावनाओं तथा संभावनाओं से ही युक्त नहीं, संगति और असंगतियों का अद्भुद भान्डार है। उनका संस्कृत साहित्य में उच्च्य स्थान है।

संस्कृत काव्य एवं समसामयिक घटनाओं का सामंजस्य एवं स्वतंत्रता आन्दोलन में वैचारिक योगदान आचार्य जी ने अपने जीवन के प्रारम्भिक 36 वर्ष परतन्त्र भारत में गुजारें, अतः उनकी रचनाओं में तत्कालीन परिस्थितियां दृष्टिगोचर होती हैं। वे श्रीमती इन्दिरागांधी से पूर्णतया प्रभावित रहे अतः उन्होंने ''इन्दिरोपाख्यानम्'' तथा ''पाकचरितम्'' की रचना की।

इन्दिरोपाख्यानम् की रचना आचार्य जी ने सन् 1971 के भारत पाक युद्ध के प्रसंग में कर ली थी। उस समय कांग्रेस का वैभव आचार्य जी ने देखा अतः कांग्रेस वैभवम् लिखा। मेघदूत उत्तरार्द्ध की रचना मन्दाक्रान्ता छन्द में की एवं उज्जैन वि. वि. से आधुनिक कालिदास के सम्मान को स्वीकार किया तो अपने ही जैन मुनि के चरित्र पर उभयभाषी काव्य ''अमरशतकम्'' लिया। इन सभी रचनाओं में आचार्य जी का वैदुष्य कूट–कूट कर भरा पड़ा है।

आचार्य जी ने सब युवावस्था में कदम रखा उस समय स्वाधीनता आन्दोलन अपनी चरम सीमा पर था। उन्होंने राष्ट्रव्यापी आन्दोलन में अपनी सक्रिय भागीदारी दी। आचार्य जी स्वाधीनता आन्दोलन में संघर्ष करते हुये कारागार भी गये। भौतिक शरीर से अपनी गिरफ्तारी देकर जहाँ आपने कायिक योगदान दिया वहीं उनकी लेखनी से स्वाधीनता आन्दोलन सम्बन्धी उद्गार निकले। निश्चय ही स्वाधीनता आन्दोलन का प्रभाव आपके कृतित्व में सहायक बना। परिणामस्वरूप ''गान्धी चरितम'' तथा ''कांग्रेस वैभवम्'' जैसे काव्य आचार्य जी ने संस्कृत समाज को दिये। ''कांग्रेस वैभवम्'' तो राष्ट्रीय विचारधारा का उद्रेक करने वाली मनोहारिणी रचना है। इस काव्य में भारत देश के भव्य स्वरूप का वर्णन किया गया है। ''कांग्रेस चरितम्'' स्वाधीनता

आन्दोलन जन्य प्रभाव से प्रभावित रचना है। आचार्य जी ने इस रचना में स्वाधीनता आन्दोलन के प्रमुख नायकों तिलक, जवाहर, मालवीय, राजगुरू, चन्द्रशेखर, सुखदेव एवं भगतसिंह आदि वीरों का स्मरण उन्हें अपनी विनम्र श्रद्धांजलि अपिर्त की है।[1]

गान्धि चरितम् के रूप में काव्य जीवनी का आधुनिक परिवेश में प्रथम प्रणयन :– महात्मागांधी अहिंसात्मक राजनीति और आध्यात्मिकता के देवदूत थे। भारतीय इतिहास में बुद्ध जी के उपरान्त गांधी जी से महान् पुरूष नहीं हुआ। उनके लिये विश्वबन्ध का विशेषण उचित ही नियत किया गया है। यथा लेनिन के बिना रूस और मार्क्स के बिना अमेरिका की कल्पना नहीं की जा सकती उसी प्रकार महात्मा जी के बिना भारतीयता का रेखांकन करना असंभव है।

हमारे विवेच्य आचार्य शारदाचरण जी ने राष्ट्रपिता महात्मागांधी को समीप से देखा एवं समझा था। आचार्य जी ने स्वयं स्वतंत्रता के संग्राम में बढ़चढकर भाग लिया था। वे भारत माता की जय का उद्घोष करते हुये कारागार भी गये थे। आचार्य जी की अमर लेखनी ने सर्वप्रथम "गान्धिचरितम्" खण्डकाव्य लिखकर अपने विनम्र भावसुमन प्रस्तुत किये हैं। आचार्य जी गांधी जी को कांग्रेस से और कांग्रेस को गांधी जी से पृथक नहीं समझते थे। उन्होंने जिस रचना को "गांधिचरित" लिखा है उसी को कांग्रेस चरितम् के नाम से भी अभिहित किया है। "गांधीचरितम्" कविगणपति आचार्य शारदाचरण दीक्षित द्वारा रचित लघुरचित काव्य है। भारतीय स्वाधीनता आन्दोलन के जनक विश्वबन्ध महात्मा गांधी को पूरा विश्व जानता है। यद्यपि गांधी के व्यक्तित्व को लेकर गांधिचरितम् की रचना का प्रादुर्भाव छठवें दशक में हो चुका था।[2]

गांधिचरितम् की वर्णन शैली :– "गांधीचरितम्" दीक्षित जी की अलंकृत शैली की रचना है। इसमें पांडित्य प्रदर्शन की मान्यता है। हृदय एवं मस्तिष्क दोनों के उपयोग से यह काव्य लघु कलेवर का होते हुए भी उत्कृष्ट कोटि का बन गया है। गांधि चरितम् में वैदर्भी, और पांचाली रीतियों काव्य दर्शन होता है। दीक्षित जी के कुछ पद्यों के पदविन्यास लालित्य तथा अलंकृत शैली को देखकर उनके पांडित्य और अप्रतिमकाव्य प्रतिभा पर मुग्ध होना ही पड़ता है। अंग्रेज शासन काल के दमनचक्रा का वर्णन प्रत्यक्ष उदाहरण हैं

---

1. ततान यस्तिक्त तिलित्सवामपि।
   द्विवषा विधाताय विधातुमन्तरात्।।
   बभावसौ भूतिलको मनस्विनां।
   स्वबालगंगाधर नाम धारया।।

   कांग्रेस वैभवम् : 1–18
2. गांधिचरितम् : आचार्य ब्रहमानन्द शुक्ल . सा.प्र. मेरठ।

दमेन संसादित साम सामता।
शशामदूनेव दवीयसीयती।
अगौरगौरांग गिरांग गौरवात्
अगौरवे रौरव रौरवे रवे।।[1]

जब दीक्षित जी शब्दक्रीड़ा में अनुरक्ता हो जाते हैं, तब उनका कविकर्म देखते ही बनता है। शब्दालंकारों की झड़ी सी लग जाती है। अनुप्रास और यमक के सुन्दर प्रयोग से गांधिचरतिम् काव्य में पदललित्य की भव्य अभिव्यक्ति हो जाती है–

यथास्वरोऽपि स्वरतै स्वर स्वरैः
स्वरैरिवोद्गीत सरीति वाड्मये।
सजित्वरैस्तेपद पद्धतिस्वरैः,
तथा स्वरेयं सहजां स्वतंत्रताम्।।[2]

दीक्षित जी ने सूक्तियों एवं सुभाषित के माध्यम से अर्थ गौरव के साथ–साथ अर्थान्तरन्यास की भी रचना की है–

"सदण्डसाध्ये वितथैव सामता,
प्रतापकाराया विधौविधानतः।
यथामयं स्वेद्यमुपेत्य सामकं
मिषग्जनः सिंचति कोऽपि वारिणा।।"

गांधिचरितम् पाण्डित्य प्रदर्शनकारी ऐसी रचना है जिसमें शिशुपालवध की अनेक पदावलियों को अपने काव्य में प्रयुक्त करने का लोभ दीक्षित जी संवरण नहीं कर सके। कुछ स्थलों पर तो पद एवं पदार्थ की भावानुगतता एक हो उठी है।

मुगलों की बर्बरता दृष्टव्य है।

रसाभवस्कन्द कृपाणधारया,
सदैवदुर्गाणि मुषाण दस्युवत्।
य इत्यमस्वास्थ्यमकार्यहर्निशं
जिगीषया यावन यावनी हया।।[3]

ठीक रावण ने भी ऐसा कृत्य स्वर्ग में किया था –

पुरीमवस्कन्द लुनीहि नन्दनं
मुषाणरत्नानि हरा मराङ्गनाः।
विग्रहय चक्रे नमुचिदिवषा बली,
य इत्थमस्वास्थ्य महर्दिवं दिवः।।[4]

---

1 गांधिचरितम् आचार्य शारदाचरण दीक्षित : 1

2 वही :

3 गांधिचरितम् · आचार्य शारदाजी 23

4. शिशुपालवधम् : माधकवि श्लोक – 51

गांधि चरितम् में दीक्षित जी की अभिव्यक्ति और कल्पना की समृद्धि माघ और भारवि जैसी है। प्रायः अवतार से पूर्व देवगण परमात्मा से भूतल पर अवतरित होने की अभ्यर्थना करते हैं ठीक उसी प्रकार दीक्षित जी ने भी भारत भूमि का मानवीकरण कर अंग्रेजों एवं यवनों के शासन से मुक्ति दिलाने के लिये भारतवर्ष से स्तुति करायी है। इस काव्य का अवलोकन करने से स्पष्ट प्रतीत होता है कि दीक्षित जी का संस्कृत भाषा पर पूर्ण अधिकार है। नवीन शब्दों के प्रयोग में दीक्षित जी पूर्ण दक्ष हैं। भाषा और व्याकरण पर पूर्ण नियंत्रण होने के कारण वे व्याकरण सम्मत भाषा का प्रयोग करते हैं।

कांग्रेस वैभवम् के माध्यम से राजनीति एवं स्वातंत्र्य कार्यों के अतिरिक्त विभिन्न महापुरूषों की जीवनियों पर एवं उनके कार्यों पर सारगर्भित प्रकाश" आचार्य शारदाचरण जी ने कांग्रेस का यशोगान "कांग्रेसकथा" और "कांग्रेस वैभवम" इन दो शीर्षकों से किया है। "गांधिचरितम्" को भी आपने "कांगेसचरितम्" के नाम से अभिहित किया है। आचार्य जी विषय वस्तु के प्रति जितने सावधान थे उतने शीर्षक की ओर नहीं, कदाचित् उनका ध्यान इस ओर न गया हो। दीक्षित जी का काव्यलेखन, काव्यविनोद के लिये होता था–

रसारसक्षालन हेतुनाऽधुना,
वितन्यत यत्सुकथास्मृतास्मृता।
न्यषिच्य तद्दीक्षित दिव्यपाणिना,
विदाविनोदाय कवित्ववारिणा।।

आचार्य जी ने कांग्रेस चरितम् का शुभारम्भ भगवान शिव की स्तुति से किया है। भगवान शिव के सुन्दर नेत्र कमलों से प्रभावित एवं चलायमान कर्णकुंडलों की मणि प्रभा से सुन्दर लगने वाले कपोल विभ्रम को प्रमाण करते हुये कांगेस की कथा कवि द्वारा पद्यबद्ध करने का वर्णन है।[1]

स्वाधीनता का सर्वप्रथम उद्घोष लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक जी ने किया था, जो कि कांग्रेस के अनुगामी थे।

अभाविभूमौभरतस्य भारते, मुद्घोषयितुं महात्मनाम्।
पुरः स्वयं भूस्तिलकः प्रजाप्रभुः। प्रभूकांग्रेस पथेन पुण्यबान्।।[2]

तिलक जी ने भारतीय जनों में आंग्लशासन के दमन के विरूद्ध आक्रोश भर दिया।

---

1. शिवस्यराजीवदृशोदरस्यतात्
   विलोलताटंकतिथि प्रवीमणेः।
   चलतप्रमाद्यौत कपोलविभ्रमं
   प्रणम्य कांग्रेस कथामिपद्यते।। कांग्रेस वैभवम् : दीक्षित जी।।
2. कांग्रेस वैभवम् : दीक्षित जी

अपक्रियापात विशेषविक्रया, क्रियाभिरूत्पाटयितुं पटीयसा।
जनेषु मन्यु व्यवसायसायके, मिरानुभेजेतिलकेन धीमता।।[1]

तिलक के भाषणों को सुनकर भारतीयों में वैचारिक क्रान्ति आयी। दीक्षित जी ने राष्ट्र के इस पुरोधा को अपना प्रणाम इस प्रकार निवेदन किया है–

निशम्य यद्भाषणविक्रमक्रमं, क्रमेण चक्राममतिर्मनस्विनाम्।
नमामि तस्मै तिलकाय कायितम्, धराधरेज्याय कथमिव धुवाम्।।[2]

राष्ट्रीय विचारधाराओं के प्रचार प्रसार के लिये पं0 मदनमोहन मालवीय ने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना की–

यथोऽवतंसीकृत भूतिमिच्छतां, धुवाभिलोकाय विचीषतां सताम्।
सहिन्दहिन्दू हितरक्षणक्षणम्, निधाय विद्यालयमाससर्जयः।।[3]

कांग्रेस जनों को राष्ट्रभक्ति का दीपक सुभाष चन्द्र बोस ने दिखाया। उनके उत्तेजक भाषण भारतीयों में स्फूर्ति का संचार करने वाले थे।

तथोष्णमासेव सुभाषनाषया, दिभासयन्ती प्रतिकर्तु मन्तरात्।
जनेषु मन्यु व्यवसायदीपकात्, ददर्श कांग्रेस ककुत्कापिनाम्।।[4]

पंजाब में कांग्रेस विचारधारा के प्रमुख संवाहक लाला लाजपतराय ने कांग्रेस झण्डे के नीचे भारतीयों को नवीन प्रेरणा दी।

इलाजपद्यस्य लटं ललाटिकं, वधायपंचाम्बुधराविधातिनाम्।
शिलाजवल्लाजपतिः स्वयं वभो, असौवुपौद्धातयितुं तरस्विनाम्।।[5]

इसी समय पं0 जवाहर लाल नेहरू ने अंग्रेजों का मर्मच्छेद करने का वीणा उठाया। पूरे राष्ट्र में हलचल मच गयी। रावी नदी के किनारे पर स्वाधीनता प्राप्ति का प्रण किया गया–

असाधुयोगेन पथश्च्युतात्मना, मिवात्मनां कृत्यकृतव्यलीकताम्।
निवहर्य रावीतटशिष्टविष्टरम्, निषेदिवान् जोषयितुं जवाहरः।।[6]

भारतीयों का रक्त जवाहर लाल नेहरू के भाषणों से उबाल ले रहा था। चारों ओर भारतमाता की जय और वन्देमातरम के उद्घोष गुंजायमान थे। उसी समय इन राष्ट्रनायकों ने अंग्रेजों के विरूद्ध असहयोग आन्दोलन छेड़ दिया। इस आन्दोलन का दूरगामी परिणाम हुआ। इससे आंग्लशासक भयभीत हो गये।

"फूट डालो और राज करो" की नीति का अनुसरण करने वाले अंग्रेजों ने

---

1. कांग्रेस वैभवम् : दीक्षित जी
2. वही
3. वही
4. कांग्रेस वैभवम् : दीक्षित जी
5.. वही
6. वही

साम्प्रदायिक विषबीज बो दिये। तब राष्ट्रभक्तों ने साम्प्रदायिक उन्माद का मुकाबला किया।[1]

राष्ट्रव्यापी स्वाधीनता समर से प्रभावित होकर राजगुरु, सुखदेव और भगतसिंह कांग्रेस संचालित आन्दोलन में कूद पड़े और राष्ट्रद्रोहियों से प्रतीकार लेने के लिये जुट गये।

इन क्रान्तिकारियों की विचारसरणि एवं कार्यशैली का राष्ट्रव्यापी प्रचार हो चुका था। इन तीनों की राष्ट्रसेवी गतिविधियों में सहयोग करने तथा राष्ट्रभक्तों की रक्षा करने के लिये चन्द्रशेखर आजाद उपस्थित हुए।

भारत पाकिस्तान के युद्ध पर एकमात्र खण्डकाव्य पाकचरितम् की रचना :— कविगणपति आचार्य शारदाचरण दीक्षित जी ने सन् 1971 में हुये भारत पाक युद्ध का सजीव चित्रण पाकचरितम् नामक रचना में किया है। इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा आदि 103 श्लोकों में लिखित इस काव्य में पाकिस्तान पर भारत की विजय, बांग्लादेश का उदय एवं शेख मुजीबुर्रहमान द्वारा बांग्लादेश की सत्ता प्राप्ति का मनोरम चित्रण पाकचरितम् में हुआ है। पाकिस्तानी शासकों की कुटिल मनोवृत्ति का इस काव्य में सहज चित्रण हुआ है।

सम्पादन एवं सम्पादकीय टिप्पश्रियों के माध्यम से नवीन श्रृंखला का उद्घाटन

आस्थानी का संपादन :— आचार्य शारदाचरण दीक्षित संस्कृत भाषा के लिए समर्पित हस्ताक्षर थे। संस्कृत साहित्य को गति प्रदान करने, उसमें नूतन, सृष्टि का समावेश करने तथा विद्वानकवियों और लेखकों को एक मंत्र देने के लिये दीक्षित जी ने आस्थानी पत्रिका के सम्पादन का महनीय कार्य 1965 वीं ईसवी के जून मांस में प्रारम्भ किया।

पत्रिका का नाम आस्थानी सुनिश्चित किया गया। कविवर के घर पर प्रायः साप्ताहिक एवं पाक्षिक तो कभी कभी दैनिक गोष्ठियां होती रहती थीं उनका प्रतिपल, प्रतिक्षण, संस्कृतोन्नयन के लिए समर्पित था, अतः पत्रिका के नामकरण के लिए सभागोष्ठी का पर्याय "आस्थानी" शब्द उपुयक्त पाया गया।[2]

वस्तुतः आस्थानी ने अपने स्थूलरूप में सभाकर्म का निष्ठापूर्वक अनुसरण किया। पत्रिका में सस्कृत विचारविमर्श गद्य पद्य सबकुछ मूर्त रूप को प्राप्त करने लगा।

आचार्य जी ने अपने मुद्रणालय का नाम भी "आस्थानी मुद्रणालय" रख लिया था। जब आचार्य जी मुद्रणालय में बैठकर पूर्वरूप संशोधन (प्रूफरीडिंग) देखते, तब

---

1. रणार्णबौधव्यतिहारिणारिणा, घ्रणाड्घ्रिणोच्चुक्षुदिरे क्षितिप्रियाः।
   तदानिरीयुर्नयवर्त्मनात्मना, प्रतिक्रियां पातुमथ प्रमाथिनः।।
   कांग्रेस चरितम् : दीक्षित जी।

2. समज्यापरिषद्गोष्ठी सभासमिति संसदः।
   आस्थानी क्लीषमास्थानं स्त्रीनपुंसकयो सदः।।
   अमरकोष द्वितीय काण्ड 17

भी संस्कृत के विद्वानों का जमघट कम न होता। कभी कभी ही नहीं प्रायः अनेकथा विद्तगोष्ठियों का आयोजन भी प्रायः मुद्रणालय में ही होता और तब मुद्रणालय का आस्थानी नाम सार्थक हो उठता है। यह मुद्रणालय मोती कटरा नामक स्थान पर स्थापित था। अतएव पत्रिका के मुखपृष्ठ पर ''मोतीकटरास्थाने नैजे आस्थानी मुद्रणालये मुद्रायित्वा प्रकाशिता'' मुद्रित होता था।

<u>सम्पादक, मुद्रक एवं प्रकाशक :–</u> आचार्य शारदाचरण दीक्षित जी आस्थानी पत्रिका के स्वयं सम्पादक, मुद्रक तथा प्रकाशक थे। उनका पत्रिका पर स्वयं का स्वत्वाधिपतित्व था। अतः पत्रिका के मुखपृष्ठ पर एतद्विषयक विवरण निम्नलिखित प्रारूप में मुद्रित रहता था–

''सम्पादक मुद्रक प्रकाशकेन स्वत्वाधिपतिना कविगणपतिना श्री शारदाचरण दीक्षितेन, आगरा नगरे मोतीकटरास्थाने..................प्रकाशिता।''

<u>आस्थानी पत्रिका का उद्देश्य :–</u> आस्थानी मासिक पत्रिका के रूप में प्रकाशित हुई। पत्रिका में प्रायः विशिष्ट विद्वानों के सर्वदर्शन, मीमांसा, वेदान्तादि विषयक गम्भीर गवेषणात्मक लेख प्रकाशित होते थे। आस्थानी के अन्तिम पृष्ठ पर इस तथ्य का स्पष्ट उल्लेख रहता था–

''परमेतदप्यवगन्तव्यं यदत्र लेखाः प्रायो महतां विशिष्ट विदुषामेव सर्वदर्शनमीमांसा विषयका दार्शनिक विचारपरिपूर्णा गवेषणात्मका मननशीलाः प्रकाश्यन्ते। तदर्थं लेखक महोदयानाम् विदुषां महान्तमुपकारं विभुमस्तेभ्यौ धन्यवादानामपि भूयसो वितरामः।''

इसके साथ ही आस्थानी पत्रिका का प्रमुख उद्देश्य वैदिकवाङ्मय का इस आर्यधरा पर प्रचार प्रसार करना भी था। कविगणपतिदीक्षित रचित मुखपद्य में वेदों की महत्ता को स्वीकार करते हुए आस्थानी पत्रिका के द्वारा उनके सार्वदेशिक एवं सार्वभौमिक प्रस्फुरण को पत्रिका का लक्ष्य निर्धारित किया गया।[1] पत्रिका का वार्षिक मूल्य मात्र 20 रूपया था। आस्थानी नियमों में उल्लेख मिलता है कि प्रेषण व्यय ग्राहकों के द्वारा नहीं दिया जाता था– ''प्रेषणव्ययौ ग्राहकैः न देयः।'' आचार्य जी की अभिलाषा थी कि आस्थानी संस्कृत प्रेमियों के हाथों में अवश्य पहुंचे, भले ही इसका मुद्रण, प्रकाशन आर्थिक दृष्टि से अलाभकारी ही क्यों न हो जाए। दीक्षित जी का एकमात्र लक्ष्य आस्थानी के द्वारा संस्कृत की सेवा करना रहा। आस्थानी पत्रिका के प्रथम अंक में उन्होंने संस्कृतप्रेमियों से पत्रिका की सदस्यता हेतु निवेदन करते हुए यही विचार प्रस्तुत किए –

अयि संस्कृतानुरागिणो महाभागाः।

यदि काम्यते सुरभारत्याः समुन्नतिः, याऽस्माकं सर्वस्वम् यथावयमुपजीवाम्ः, ययैव च लोके प्रतिष्ठामधिगच्छामः, तस्याः संस्कृत भाषायाः कृतज्ञता प्रकाशनं यद्यस्ति

---

1. आम्नायायत्तिमावर्त्य लोकयन्त्यावलोकनम्।
   ऐलिलल्लोकमास्थानी लोलालीलावलीलया।।
   आस्थानी मुखपृष्ठ पद्य : कविगणपति दीक्षितः।

मनागप्युत्साहः, तर्हि अवलम्बितम् ''आस्थानी'' संस्कृत पत्रिकायाः सदस्यता स्वीक्रियताम्। येन सम्पन्नायां सदस्यताशक्तौ सर्वं सुकरं भवेत्। सदस्योचितं पत्रम् एतत् कार्यालयात् ''शारदाचरणदीक्षित मोतीकटरा आगरा'' इति संकेतन लभ्यते।

आस्थानी पत्रिका का प्रकाशन आचार्य जी के जीवन पर्यन्त चलता रहा। जिससे संस्कृत जगत की महती सेवा हुई।

<u>संस्कृतभाषा को जीवन्त जीवनी एवं मार्गदर्शिका के रूप में प्रस्थापित करना :–</u> आचार्य शारदाचरण दीक्षित जैसे प्रतिभासम्पन्न अनेक विधाओं के विशेषज्ञ, वेद विरोधी भी न होते हुए वेद के लोकसमर्थक, शास्त्र निष्णात होते हुए भी सामयिक, समस्याओं के प्रति सजग, सफल चिकित्सक के रूप में भवव्याधि निवारक और सफल काव्य प्रणेताओं के रूप में ब्रह्मानन्द सहोदरत्व के संसाधक वर्तमान को प्रतिष्ठित करते हुए भी, ज्योतिष शास्त्र के विशेषज्ञ और इन सबके सामंजस्य के रूप में सुधी सहृदय, सत्कवि के रूप में विख्यात थे। उन्होंने सुरभारती की सेवा की, प्रचार प्रसार किया।

आचार्य जी संस्कृत सेवाव्रती थे, निश्चय ही उन्होंने संस्कृत भाषा को जीवन्त जीवनी एवं मार्गदर्शिका के रूप में प्रस्थापित किया। उनके व्यक्तित्व में साहित्यिक, सांस्कृतिक एवं आयुर्वेदशास्त्र की त्रिवेणी प्रवाहित होती थी। इन परम्पराओं का यह संगम आचार्य जी को तीर्थराज प्रयाग के समान आराध्य एवं स्तुत्य बनाने में पर्याप्त था। आचार्य जी को छन्द, शास्त्र, संगीत, कला, अभिधामकोष नीति, लोकवृत्त आदि का पूरा अवगम था। उनका यही ज्ञान उनकी साहित्यिक रचनाओं में उद्भासित एवं प्रस्फुटित हुआ। ज्ञान का लघु अंकुर काव्य का विशाल वटवृक्ष बना।

आचार्य दीक्षित जी की साहित्यिक सृष्टि, शब्द और अर्थ का अद्भुद समन्वय है। उनकी काव्यरचना महनीय है। ''भारतीयचरितम्'', गान्धिचरितम्, कांग्रेसवैभवम्, इन्दिरोपाख्यानम् आचार्य जी की प्रमुख रचनायें हैं। उनका काव्य सौष्ठव, सर्वविध ापूर्ण हैं। शब्दगुम्पन, भावप्रवणता, छन्दविधान, रीति, अलंकार और रसविचार के निकर्ष पर वे कालिदास की पंक्ति में स्थान पाने के लिये अर्हतावान हैं। ''मेघदूतोत्तरार्धम्'' की रचना उन्हें महाकवि कालिदास की समकक्षता में सिद्ध करने में पर्याप्त प्रतीत होती है। ''अमरशतकम्'' आचार्य जी की उभयभाषी काव्यों में अमर रचना है। यह रचना उनकी हिन्दी संस्कृत कवित्व का परिचायक है।

शारदाचरण जी वेदविज्ञान एवं रमलशास्त्र के पारदृश्वा निष्णात विद्वान थे। कोष, अभियान, हितोपदेश, पुराण, उपपुराण, महाभारत, उपनिषद, ब्राह्मण और आरण्यक ग्रन्थ आचार्य जी को कंठस्थ थे।

संक्षेप में मैं निवेदन कर सकता हूँ कि आचार्य जी संस्कृत के लिए समर्पित थे, उन्होंने संस्कृत भाषा को जीवन्त और जीवनी के रूप में प्रस्थापित किया।

वेदिक ग्रन्थ

श्रृक सूक्त संग्रह : सम्पादक डा. हरिदत्त शास्त्री
साहित्य भण्डार, सुभाष बाजार, मेरठ।

श्रृगवेद संहिता : पं. सातवलेकर सम्पादित
आनन्द आश्रम सं. ग्रन्थागार, पूना।

यजुर्वेद संहिता : सं. पं. दामोदर सातवलेकर
चौखम्बा संस्कृत प्रकाशन, वाराणसी।

रामवेद संहिता : सं. पं. सातवलेकर, चोखम्बा प्रकाशन वाराणसी।

कठोपनिषद : शाकरभाष्य "प्रकाश" व्याख्या
व्याख्याकार सुरेन्द्रदेव शास्त्री।

अन्य संस्कृत ग्रन्थः

अभिज्ञान शाकुन्तलम् : कालिदास कृत, व्याख्याकार, कान्तानाथ शास्त्री तैलं
चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी 1968।

अवन्तिसुन्दरी कथा : दण्डीकृत, खिलाड़ीलाल संस्कृत पुस्तकालय, वाराणसी।

आर्यासप्तसती : गोवर्द्धनाचार्यकृत, व्याख्या रमाकान्त त्रिपाठी
मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी।

कथा सरित् सागर : सोमदेव कृत, व्याख्या के.एन. सारस्वत
निर्णय सागर प्रेस, बम्बई।

कादम्बरी पूर्वार्द्ध : महा. बाणभट्ट कृत सं. कृष्णमोहन शास्त्री
चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी।

कादम्बरी उत्तरार्द्ध : महाकवि पुलिनभट्ट कृत सं. पं. रामचन्द्र मिश्र
चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी।

काव्य प्रकाश : आचार्य मम्मटकृत, वानाचार्य टीका
साहित्य भण्डार, मेरठ।

काव्यमीमांसा : राजसेखरकृत सं. के.एन. सारस्वत
निर्णय सागर प्रेस, बम्बई।

काव्यादर्श : दण्डीकृत सं. धर्मेन्द्र कुमार गुप्ता
मोतीलाल बनारसीदास पुस्तकालय, पटना।

श्रीमद्‌भगवद् गीता : सं. हनुमान प्रसाद पोद्‌दार, गीता प्रेस, गोरखपुर।

नैषधीय चरितम् : श्री हर्ष कृत सं. वद्रीनाि मालवीय
संस्कृत साहित्य संस्थान, इलाहाबाद।

पन्चतन्त्रम् : विष्णु शर्मा कृत, सं. बाबूराम त्रिपाठी
महालक्ष्मी प्रकाशन, आगरा

रघुवंश महाकाव्यम् : कालीदासकृत, व्याख्या डॉ. कृष्ण कुमार साहित्य प्रकाशन, मेरठ।

वृहत्कथामंजरी : क्षेमेन्द्रकृत, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई।

शिशपालवध महाकाव्य : माघकृत, टीका डॉ. सत्यव्रत सिंह भारतीय विद्याभवन, वाराणसी।

साहित्य दर्पण : आचार्य विष्णुनाथकृत, टीका डॉ. सत्यव्रत सिंह भारतीय विद्याभवन, वाराणसी।

कुदलखानन्द : अध्यय दीक्षितकृत सं. भोला शंकर व्यास खिलाड़ीलाल संस्कृत पुस्तकालय, वाराणसी।

जातकमाला : सूर्यनारायण सं. मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली।

तिलकमंजरी : धनपाल कृत व्याख्या हरिनारायए दीक्षित चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी।

दशरूपकम् : धनंजयकृत, व्याख्या सुधाकर मालवीय चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी।

धूवन्यालोक : आनन्दवर्द्धनचार्यकृत, सं. कृष्ण कुमार साहित्य भण्डार, मेरठ।

राजतरंगिणी : कल्हणकृत, सं. रघुनाथ सिंह चौखम्बा ओरियन्टालिया वाराणसी।

वासवदत्ता : सुबन्धु कृत, मोतीलाल बनारसी दास पुस्तकालय, नई दिल्ली।

मेषदूत उत्तरार्द्धमू : लेखक कविगणित शारदाचरण दीक्षित कृत अप्रकाशित।

पाक्चरितम् : लेखक कविगणित शारदाचरण दीक्षित कृत अप्रकाशित।

अमरशतकम् : लेखक कविगणित शारदाचरण दीक्षित कृत अप्रकाशित।

श्रीराम कृष्ण काव्य (विलोम) : श्री हृषीकेश चतुर्वेदी, चन्द्रादित्य प्रकाशन किनारी बाजार, आगरा।

हृषीकेश रचनावली : श्री हृषीकेश चतुर्वेदी, चन्द्रादित्य प्रकाशन किनारी बाजार, आगरा।

हरिदत्त शस्त्री स्मृति विशेषांक : गुरूकुल महाविद्यालय, ज्वालापुर।

स्मृति-ग्रन्थ

याज्ञवल्क्य स्मृति : सं. डा. उमेश चन्द पाण्डेय मिताक्षरा टीका, चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी।

मनुस्मृति : कुल्लूक भट्ट कृत, मन्वर्थमुक्तावली टीका, चौखम्बा ओरियन्टालिया, वाराणसी।

वेदांग-ग्रन्थ

निरुक्तम् : यास्वमुनिकृतः सं. छज्जूराम शास्त्री
आनन्द आश्रम संस्कृत ग्रन्थागार, पूना।

अष्टाध्यायी : पाणिनिकृत सं. ब्रह्मदत्त जिज्ञासू
छन्नूलाल गुलाब चन्द पुस्तकालय, काशी।

विशिष्ट हिन्दी ग्रन्थ

भारत का वृहत् इतिहास : लेखक– प्रो. नेत्र पाण्डेय, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली।

भारतीय इतिहास की रूपरेखा : लेखक – डॉ. बलराम श्रीवास्तव
राजकमल प्रकाशन, दिल्ली

रामचरितमानस : तुलसीकृत सं. रामनिवास गोयनका,
गीताप्रेस प्रकाशन, गोरखपुर।

संस्कृत साहित्य का इतिहास : आचार्य बलदेव उपाध्याय, सम सं. वि. वि. वारणसी।

संस्कृत साहित्य का इतिहास : वाचस्पति गैरोला, चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी।

विश्व के विविधं धर्म : सं. जी.पी. गौरी, दयालबाग शिक्षण संस्थान,
आगरा।

संस्कृत साहित्य का इतिहास : सं. डॉ. रणजीत शर्मा, ज्ञान प्रकाशन, वाराणसी।

संस्कृत काव्यकार : ले. डॉ. हरिदत्त शास्त्री।

कोष-ग्रन्थः

अमरकोष : पं. रामतेज पाण्डेयकृत राधाटीका युक्त
चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी सन् 1990।

भाषा शब्दकोष : सं रामशंकर रसाल, रामनारायण लाल प्रकाशन इलाहाबाद।

अन्य संस्कृत ग्रन्थ

स्वराजविजयमहाकाव्यम् : द्विजेन्द्रनाथ कृत

श्री गांधिगोरवमहाकाव्यम् : शिवगोविन्द त्रिपाठी

पुरुसिकन्दरीयम् : पं. लक्ष्मीनारायण द्विवेदी

शिवराज्योदयम् : डॉ. वर्णेकर कृत

प्रतापविजयानाटकम् : मूलशंकर याज्ञिक

क्षत्रपति साम्राज्यम् : मूलशंकर याज्ञिक कृत

योग वाशिष्ट्य : निर्वाणरा प्रकरण 119वाँ तर्ग।





लेखक परिचय

डॉ० जगदीश प्रसाद शर्मा

जन्म — उ०प्र० के अलीगढ़ जनपद के अतरौली क्षेत्रीय चकाथल गांव में दिनांक 25.01.1969 को डॉ० बनवारी लाल शर्मा के घर में जन्म लिया।

विवाह — पिताश्री बनवारी लाल शर्मा ने किशोरावस्था में ही इनका विवाह राया निवासी पं० सूरजभान शर्मा की पुत्री विजय लक्ष्मी के साथ 12 जून 1993 को सम्पन्न करा दिया।

शिक्षा — काशी के सुविख्यात सम्पूर्णानन्द संस्कृत वि० विद्यालय से हुई। इन्होंने आचार्य की परीक्षा साहित्य, नव्य व्याकरण, पुराण इतिहास, धर्मशास्त्र विषयों में प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की।

आगरा वि० वि० आगरा से एम.एड., पी.एच.डी. तथा डी.लिट् की महनीय एवं गरिमामयी उपाधि प्राप्त की।

शिक्षा गुरु — डा. अमियचन्द शास्त्री, डा. वासुदेव कृष्ण चतुर्वेदी

संपर्क — रुकमणि बिहार, मथुरा दूरवाणी — 09358705666

सम्प्रति — मथुरा जनपद स्थित ग्राम स्वावलम्बी कालेज में प्राचार्य पद पर कार्यरत।

प्रकाशित ग्रन्थ— उपनिषद् वाङ्मय में "वर्णित विविध विधाओं का स्वरूप विकास" ग्रन्थ का प्रणयन एवं प्रकाशन।

संस्कृत/हिन्दी पत्रकारिता — संस्कृतामृतम्, ब्रजगन्धा, परिजातम् त्रैमासिकी ब्रजनन्दिनी में सह सम्पादक के नाते अद्यावधि कर्तव्यरत।

पुरस्कार प्राप्ति — हरियाणा संस्कृत अकादमी से द्विसहश्र मुद्रात्मक पुरस्कार पटौदी में सचिव के द्वारा प्रदत्त।

आकाशवाणी वार्ताए — आकाशवाणी मथुरा में निम्न विषयों पर वार्ता प्रसारित।

1. उपनिषदीय विद्याओं में ब्रह्म की अवधारणा।
2. पर्यावरण शुद्धि कैसे हो।
3. श्रीमद्भगवतगीता में कर्मवाद।
4. संस्कृत की व्यावसायिक उपयोगिता।

शोध पत्र — अद्यावधि 20 आलेख I.S.S.N. नम्बर प्राप्त शोध पत्रिकाओं में प्रकाशित है।

सम्मेलन सहभागिता — अध्यावधि 50, इण्टरनेशनल/नेशनल सेमीनार में सहभागिता की गयी है।

विदेश यात्रा — विश्व हिन्दी मंच द्वारा आयोजित शिल्पाकार्न विश्वविद्यालय बैंकाक (थाईलैंड) में सहभागिता एवं उपस्थिति।

आचार्य शारदाचरण दीक्षित
व्यक्तित्व एवं कृतित्व

ISBN 978-81-928340-1-6